निक
जक

वैज्ञानिक परिब्राजक

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती अभिनन्दन ग्रंथ

'विज्ञान' मासिक तथा 'विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका'
का संयुक्त विशेषांक १९७६
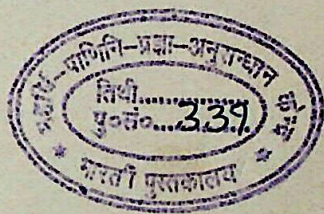
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
१९७६

प्रकाशक : विज्ञान परिषद्,
इलाहाबाद

मुद्रक : प्रसाद मुद्रणालय,
7 बेली ऐवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पादकीय ••

एक वर्ष पूर्व परिषद ने स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती (डा० सत्य प्रकाश) की अथक वैज्ञानिक सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की योजना बनाई। इसका सम्पादन भार मुझ पर डाला गया।

मैंने स्वामी जी के शिष्यों, मित्रों, भक्तों, प्रशंसकों सभी को इस महान यज्ञ में अपनी अपनी हवि छोड़ने को लिखा। मुझे प्रसन्नता है कि अधिकांश ने अपना योगदान देकर अनुग्रहीत किया है। कुछेक लोग जिनका योग अपेक्षित था, वे जानबूझकर अथवा व्यस्तता के कारण अथवा अन्य कारणों से अपना सहयोग नहीं दे सके जिसका हमें खेद है। कुछ भक्तों ने आर्थिक सहयोग भी दिया जिसको हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं।

अभिनन्दन ग्रन्थ की रूपरेखा बनाते समय स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सर्वोपरि रखा गया है किन्तु यह भी ध्यान रखा गया है कि उन अनेक संस्थाओं का जिन्होंने हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य के सृजन एवं प्रकाशन में प्रभूत योगदान दिया है, विवरण दिया जाय।

स्वामी जी का जीवन हिन्दी के प्रति समग्रतः समर्पित रहा है। वे भारतीयता के जीवन्त प्रतीक रहे हैं। उनका सम्पर्क मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों, साहित्यिकों, उद्योगपतियों एवं विज्ञान लेखकों से समान भाव से रहा है। छात्र जीवन से लेकर आज तक उन्होंने एक सा जीवन जिया है। सन्यास लेने के बाद आर्य समाज के आदर्शों का पालन किसी वैज्ञानिक के लिए गौरव की बात है।

यह लघु प्रयास इसका संसूचक होगा कि हम अपने वैज्ञानिकों को किस गहराई तक उतर कर परखने का यत्न कर सकते हैं और किस प्रकार पात्रानुसार उनका अभिनन्दन-वन्दन कर सकते हैं। इसमें हम कहाँ तक सफल हुए हैं यह तो पाठक ही बतावेंगे।
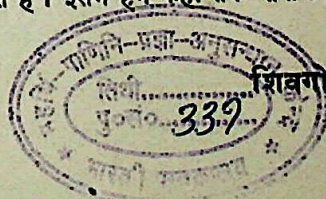
शिवगोपाल मिश्र

विषय सूची

व्यक्तित्व एवं कृतित्व खण्ड

विज्ञान परिषद तथा अन्य संस्थायें

वैज्ञानिक साहित्य खण्ड (निबन्ध)

डा० ज्ञान प्रकाश शास्त्री, आर्य समाज सीसामऊ कानपुर की अनुकृति : शब्दांकित चित्र

संदेश

नई देहली
दिसम्बर 10, 1975

प्रिय महोदय,

आपका पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के 70 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष मे विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद की ओर से एक अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने जा रहे हैं। मैं आपके इस प्रयास की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभ कामनायें भेजता हूँ।

आपका,
(ब० दा० जत्ती)
उपराष्ट्रपति, भारत

डा० शिवगोपाल मिश्र,
प्रधान सम्पादक, अभिनन्दन ग्रंथ,
विज्ञान परिषद्, दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-2 (उ० प्र०)

11-12-75

प्रिय मिश्र जी

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण और उन्नयन में बड़ा योगदान किया है। उन्होंने स्वयं तो अनेक ग्रंथों की रचनाएं की ही हैं पर दूसरों के द्वारा ग्रंथों की रचना करवा कर और हिंदी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करा कर अमूल्य सेवा की है। यह उचित ही है कि उनके 70 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष में आप अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन कर रहे हैं। मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

ईश्वर से मैं प्रार्थना करता हूं कि अनेक वर्षों तक जीवित रह कर हिन्दी की सेवा कर भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार और प्रसार में वे योग-दान करते रहेंगे। आपके प्रयत्न को मैं सराहना करता हूँ और उसकी सफलता की पूरी आशा करता हूं।

फूलदेव सहाय वर्मा

53 खुर्शेद बाग
लखनऊ–5
3-10-74

प्रिय डा० मिश्र,

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती अभिनन्दन ग्रंथ के प्रकाशन के आयोजन का समाचार आपके परिपत्र से प्राप्त कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। हिन्दी के सर्जनात्मक साहित्यकारों के अभिनंदन बहुत होते हैं किंतु उसके वाङ्मय को ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थों से समृद्ध करने वालों की ओर कम ही लोगों का ध्यान जाता है। इसलिए मुझे इस आयोजन के समाचार से विशेष प्रसन्नता हुई।

स्वामी जी उन हिन्दी प्रेमियों में प्रमुख हैं जिन्होंने अपनी शक्तिशाली लेखनी से हिन्दी को मूल्यवान और महत्वपूर्ण पुस्तकें भेंट कीं। यही नहीं, उन्होंने विज्ञान परिषद् का बहुत दिनों संचालन कर उसके द्वारा हिन्दी में विज्ञान साहित्य का निर्माण करने के लिए असंख्य विज्ञान विशारदों को प्रेरित किया। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय स्तर पर उन्होंने हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की शिक्षा देकर दूसरे विज्ञानाचार्यों के सम्मुख एक अनुकरणीय उदाहरण रखा। इस प्रकार एक ओर जहाँ उन्होंने हिन्दी में विज्ञान-साहित्य को समृद्ध किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने विज्ञान-क्षेत्र में विविध प्रकार से हिन्दी का प्रवेश कराया और इसका प्रचार किया। वास्तव में उन्होंने इस क्षेत्र में हिन्दी की इतनी ठोस और बहुमूल्य सेवा की है कि हिन्दी के इतिहास में उनका नाम सदैव आदर से याद किया जायगा। वे सर्वथा अभिनन्दनीय हैं, और मैं उस अभिनंदन के साथ संबद्ध होना अपने लिए गौरव समझता हूं।

विज्ञान मेरा विषय नहीं है। अतएव मैं ऐसे महान वैज्ञानिक के अभिनन्दन ग्रंथ में उपयुक्त विषयों पर लेख लिखने का न तो अधिकारी हूँ, और न उसकी योग्यता रखता हूं, किन्तु इस आयोजन से मेरा पूरा सहयोग है। मेरे योग्य जो सेवा हो वह कृपया लिखें। मैं इस आयोजन की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

भवदीय
श्रीनारायण चतुर्वेदी

अयोध्या
दि० 27-11-75

प्रिय मिश्र जी,

सप्रेम हरिस्मरण। स्वामी सत्य प्रकाश 'अभिनंदन ग्रंथ' के विषय में आपका दूसरा परिपत्र मिला। धन्यवाद। लगभग दो मास पूर्व भी आपको एक पत्र लिख चुका हूं, न जाने वह आपको मिला या नहीं। बड़े आनंद की बात है कि स्वामी जी के सम्मान के लिये परिषद् यह सुन्दर तथा सर्वथा योग्य आयोजन कर रही है। मैं पिछले सात वर्षों से घरबार छोड़कर अपनी आध्यात्मिक भूख शान्त करने के लिये तीर्थवास करते हुए एकान्त तथा एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा हूं। अब मेरी आँखों में मोतियाबिन्द बड़े जोर से हो गया है अतः लिखने में बड़ी कठिनाई हो रही है। रेफरेन्स के लिये थोड़ा पढ़ना विवर्धकताल की सहायता से कभी कभी कर लेता हूं। इन सर्दियों में आपरेशन के लिये देहरादून जा रहा हूं।

भवदीय
ओंकार नाथ शर्मा

PO. Box 40
192/4, PRINSLOO STREET
PRETORIA
South Africa.

Dear Sir,

I thank you for your letter of the 21st November, 1975, and I must apologise for the delay in replying owing to my absence from home.

However, I am pleased to learn that you are bringing out a commemorative volume to mark the birthday of revered Swami Satya Prakash which is a very fitting gesture to this noble personality.

I have pleasure in enclosing herewith a draft of £ 10. as my donation towards this worthy cause.

Yours faithfully
H. E. Joosub

INDIAN INSTITUTE OF SCIENCE
BANGALORE-560012

Date 10th December, 1975

Dear Mr. Misra,

I am in receipt of your letter of 2nd December 1975.
I am glad to learn about the celebration of the 70th birthday of Swami Satya Prakash Saraswati and you are bringing about a Commemoration Volume on this occasion. The contributions from the Acharya to the intellectual activity of our country will be remembered by the scholars interested in a variety of discipline like history of science, literature and linguistics and science in general and Chemistry in particular. He has inspired generations of young aspirants of knowledge who have entered all walks of life and they are grateful to him. His knowledge of sanskrit and his efforts to bring home the achievements of our ancestors to the younger generation is laudable indeed. I am personally obliged to him for his discussions on several topics on ancient Indian culture, contribution to Indian science, present status of science and its role in our society.

I am sorry I cannot contribute to this Commemoration Volume in view of the short notice. I look forward for its publication.

We all pay respects on this occasion and wish him long and active life till he attains 100 years. शत शरदाय

With kind respects,

Yours sincerely
A. R. Vasudeva Murthy

गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट
इलाहाबाद
6-12-1975

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद् दयानन्द मार्ग इलाहाबाद–2 के द्वारा स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती का अभिनन्दन, अभिनन्दन ग्रंथ-प्रकाशन के द्वारा किया जा रहा है। स्वामी जी इस युग के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। उन्होंने विज्ञान और संस्कृति विशेषत: वेद के क्षेत्र में जो महान् कार्य किया है वह युग-युग तक विद्वानों के लिए प्रेरणा-स्रोत और सामान्य जन के लिए अमूल्य देन सिद्ध होगा। भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिक और आधुनिकतम व्याख्या, समन्वय के क्षेत्र में चिरस्मरणीय रहेगी।

मुझे आशा है कि यह अभिनन्दन ग्रन्थ उनके स्वरूप के अनुरूप होगा और हम श्रद्धालु जनों की श्रद्धा का प्रतीक होगा।

आयोजकों को मेरी ओर से बधाई।

माया मालवीय
कार्यालय प्राचार्य

श्रद्धा पुष्प

● दीनानाथ शुक्ल 'दीन'
शोध-छात्र, वनस्पति विज्ञान विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

सत्य-ज्योति के अनुपम प्रहरी,
जिनकी है नव कीर्ति महान।
भारत नहीं विश्व में भी,
मुखरित जिनके मधुरिम गान।

जो तज बुद्ध सरिस गृह-वैभव,
वैज्ञानिक जीवन, सुख-साज।
बल्कल वसन पहन निज तन पर,
निकल पड़े ले कंटक राज।

जिसने हिन्दी सा लतान्त,
विज्ञान भाल पर किया समर्पित।
ऐसे मानवता के रबि को,
श्रद्धा सुमन कर रहे अर्पित।

जी
व
न
प थ

१

विज्ञान के क्षेत्र में मैक्स प्लांक, आइन्स्टीन, रैमसे, क्यूरी जैसे वैज्ञानिकों की संकल्पनाओं का युग। देश में गांधी, टैगोर तथा दयानन्द की विचारधाराओं का युग। स्वदेशी आन्दोलन का वर्ष। सचमुच ही अत्यन्त रोमांचकारी वर्ष था 1905 का। इसी वर्ष 24 अगस्त को एटा जिले में बिजनौर में पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय के पुत्र हुआ जिसका नाम सत्य प्रकाश रखा गया। इनकी माता कला देवी इन्हें उत्पन्न कर धन्य हुईं।

बालक सत्य प्रकाश की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बाराबंकी में हुई। 1918 में वह प्रयाग आ गये और मैट्रिकुलेशन से लेकर उच्चतम शोध-डिग्री तक यहीं अध्ययन किया। प्रयाग ही इनका कार्य-क्षेत्र बना।

1927 में रसायन शास्त्र में एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करने के बाद डॉ० नील रत्न धर के निर्देशन में शोध कार्य प्रारम्भ किया। शोध का विषय था "Physico-chemical studies of inorganic jellies." आपको 1932 में डी० एस-सी० की डिग्री प्राप्त हुई। सत्य प्रकाश जी अब डॉ० सत्य प्रकाश हो गये।

स्वामी जी ने अपनी लेखनी से अपने विषय में 'सरस्वती' में बहुत पहले लिखा था। लेकिन शायद तब लोगों का उस पर ध्यान नहीं गया। जब उन्होंने सन्यास लेकर धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया तो प्रशंसकों को उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक जानने की उत्सुकता हुई। शायद बाध्य होकर ही स्वामी जी को अबोहर के दयानन्द वैदिक कालेज की पत्रिका के लिये अपने सम्बन्ध में कुछ लिखकर देना पड़ा। उसमें महत्व पूर्ण सूचनायें हैं।

सम्पादक

जब शोध-कार्य चल रहा था तभी 1930 में रसायन विभाग में डिमांस्ट्रेटर के पद पर नियुक्ति हो गई। यद्यपि कार्बनिक रसायन में उच्चतम डिग्री प्राप्त की थी किन्तु अध्यापन के लिये भौतिक रसायन मिला। वे इसी क्षेत्र में अपना समस्त शोध-कार्य सम्पन्न कराने लगे। 1962 में विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुये और 5 वर्षों तक इस पद पर सुशोभित रहे। 1967 में अवकाश प्राप्त करने के बाद 1972 ई० तक रिसर्च प्रोफेसर रहे।

डॉ० सत्यप्रकाश के निर्देशन में लगभग 22 विद्यार्थियों ने शोध कार्य सम्पन्न किया। कोलाइड, गतिकी, संकुलन, पराश्रव्यिकी, बहुलीकरण, ऊष्मागतिकी, पुरातत्व, रसायन—ये विभिन्न शीर्षक हैं जिन पर विविध छात्रों ने शोध किया है। उन्हें कुल मिला कर 150 शोध-पत्र प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है। डॉ० साहब के छात्रों में कई प्रतिभा सम्पन्न रहे हैं और वे ऊँचे पदों पर कार्य कर रहे हैं।

२

डॉ० साहब जन्मजात आर्य समाजी हैं। बचपन से ही उनके मन में सन्यासी बनने की तरंगें हिलारें लेती रहीं। उन पर स्वामी दयानन्द की छाप अदृश्य रूप से पड़ी थी। अपने योग्य पिता की योग्य सन्तान के रूप में उन्होंने बचपन से ही अपना ध्यान वेदों के अध्ययन की ओर लगाया। यद्यपि उन्होंने संस्कृत का शास्त्रीय अध्ययन नहीं किया किन्तु संस्कृत ग्रंथों के प्रति उनका लगाव प्रारम्भ से रहा है। यही कारण है कि अन्त में जब वे सन्यासी हो गये तो वेदों की व्याख्या, टीका आदि के कार्य में जुट सके।

> संस्कृत की व्यापकता को देखकर मेरा हृदय गद्गद् हो जाया करता है और कभी-कभी मेरी तो यह इच्छा होती है कि क्यों न संस्कृत को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वही स्थान दे दिया जाय तो अब तक दिया जाता रहा है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा यह स्वप्न संभव नहीं।… जिस प्रकार संस्कृत को ज्ञान का माध्यम बनाने में हमारे आचार्य अपनी प्रान्तीय भाषा को भूल गये और जिस प्रकार अंग्रेजी का आश्रय लेते समय भी सब प्रान्त अपनी-अपनी प्रान्तीयता विस्मृत कर देते हैं उसी प्रकार उच्च कोटि के साहित्य के लिये हिन्दी अपनाते समय प्रान्तीय भावनाओं को आने नहीं देना चाहिये।

……..(१९४१)

हिन्दी में लेखन की ओर इनका ध्यान 1928 से ही गया। प्रयाग स्थित 'विज्ञान परिषद्' से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका में लगातार लिखने लगे। शोध-कार्य के

दौरान इन्होंने 4 पुस्तकें लिखीं (कार्बनिक रसायन, साधारण रसायन, बीज ज्यामिति तथा वैज्ञानिक परिमाण) कारण कि इन्हें इम्प्रेस विक्टोरिया छात्रवृति मिली थी, जिसकी शर्तों में यह भी था कि हिन्दी में लिखकर कुछ वैज्ञानिक सामग्री देनी होगी। उसी की पूर्ति में डा० साहब ने वैज्ञानिक पाठ्य सामग्री प्रस्तुत की।

आपने 'विज्ञान' का सम्पादन कार्य 10 वर्षों तक (1927-1933 तथा 1937-1941 तक) बड़ी योग्यता से किया। डा० गोरख प्रसाद जी इनके अन्यतम सहयोगी रहे। एक समय तो भारत भर में 'विज्ञान' की धूम मच गई थी।

1935 में आप रत्न कुमारी जी के साथ परिणय सूत्र में बँधे। इन्हें 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में जेल की यात्रा करनी पड़ी। जेल में लाल बहादुर शास्त्री तथा पं० कमलापति त्रिपाठी के सम्पर्क में आये।

आपने 1941 से लेकर 1970 तक हिन्दी में वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन के हेतु सम्यक् सामग्री तैयार करने-कराने तथा अपने विचारों द्वारा उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने में नाना प्रकार के प्रयास किये। इनमें लेख लिखना, रेडियो से वार्तायें प्रसारित करना, पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विज्ञान परिषद् के अध्यक्ष पद से भाषण देना (दो बार 1941, 1944), विज्ञान परिषद के सभापति पद को सँभालना (1969-70), 'हिन्दी विश्वकोश' के निर्माण में योगदान, 'भारत की सम्पदा' का सम्पादन भार (1970), विविध पाठ्य पुस्तकों का लेखन, भारतीय वैज्ञानिक परम्परा पर आधारित मौलिक ग्रन्थों की रचना—ये उन अनेक कार्यों में से कुछ हैं जिनके लिये डा० साहब प्राणपत्र से जुटे रहे।

डा० साहब के दो पुत्र हुए किन्तु कन्या नहीं हुई फलस्वरूप आजीवन कन्याओं को अपना वात्सल्य प्रदान करते रहे हैं, महिलाओं के प्रति विशेष सम्मान दिखाया है; उनकी क्षमताओं में उनको पूरा विश्वास रहा है।

1964 में आपको पत्नी की अचानक मृत्यु से सबसे बड़ा धक्का लगा। आपकी समस्त भौतिकता ने पलटा खाया। बचपन का संस्कार इन्हें सन्यासी बनने के लिए पुनः प्रेरित करने लगा। अन्त में 10 मई 1971 को विज्ञान परिषद् के प्रांगण में इष्टमित्रों के बीच सन्यास ग्रहण कर लिया—अपने घर का त्याग, समस्त सम्पदा का त्याग कर दिया और आर्य समाज भवन में या अन्यत्र रहने लगे, भिक्षावृत्ति पर जीवन बिताने लगे—सन्यासियों का सा कठोर जीवन। शायद ही किसी वैज्ञानिक ने आश्रम-परम्परा का ऐसा निर्वाह किया हो।

डॉ० सत्यप्रकाश अब स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती बन गये। उन्होंने अपना सारा समय आर्य समाज की उन्नति, वेद-प्रचार, व्याख्यान तथा भ्रमण में लगाना प्रारम्भ कर दिया। धर्म प्रचार हेतु अफ्रीका की यात्रायें कीं। वैदिक साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। जब देश में आर्य समाज शती मनाई जाने लगी तो आपने भारत भर का भ्रमण करके अनेक अध्यक्षीय भाषण दिये जो पाठनीय एवं अनुकरणीय हैं।

स्वामी जी प्रारम्भ से धर्म पुरोहित का कार्य करते रहे हैं। वैदिक संस्कारों में विश्वास रखने के कारण नामकरण से लेकर विवाह कराने और मृत्यु के बाद हवन आदि कराने का कार्य करते रहे हैं। उन्होंने आर्य समाजी ढंग से न जाने कितने अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न कराये होंगे। इसका उन्हें गर्व है।

३

डॉ० साहब अत्यन्त विविधतापूर्ण रुचि के व्यक्ति रहे हैं—क्या जीवन की पद्धति में, क्या लेखन में। उन्हें सादा जीवन पसन्द रहा है। जाड़ों में भी कम से कम कपड़े पहनना, सन्यासी होने के बाद ही एक अंचले से शीत बिताना, खादी का प्रयोग, कम से कम आवश्यकतायें। हँसी तो मानों उन्हें प्रकृति से उपहार में मिली हो। शायद ही कभी विषाद की रेखा दिखी हो। बोलने में शिष्ट एवं मिष्ठभाषी। परम विनोदी। बात-बात में हँसी के फौव्वारे। समानता का व्यवहार। प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा के समर्थक। सन्यासी होकर भी अतिथि सत्कार के लिए उद्यत। कर्मठ। विशुद्ध शाकाहारी।

ज्ञान के तो मानों अपार समुद्र हों। क्या साहित्य, क्या धर्म और विज्ञान—सभी उत्वों में परम कुशल। उनकी शब्द-साधना अनूठी है।

इसी ज्ञान के प्राकट्य हेतु आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की और कर रहे हैं। विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी को मान्यता दिलाने के लिये प्रचुर साहित्य रचा। विज्ञान जगत उनके इस अभूतपूर्व योगदान के लिये चिरऋणी रहेगा।

वे चिन्तक भी रहे हैं। भारतीयता उनमें कूट-कूट कर भरी है। वेदों का उन्होंने आकण्ठ आस्वाद किया है। भारत की वैज्ञानिक परम्परा की उन्होंने विशद् व्याख्या की है। वेदों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया है। आजकल उनकी सर्वग्राह्य अँग्रेजी टीका में व्यस्त हैं।

आपने बचपन में कविता भी की। अब भी उनका कवि हृदय देखा जा सकता है। प्रारम्भ में ईश तथा श्वेताश्वेतर उपनिषद का हिन्दी काव्यानुवाद, फिर अपनी कविताओं का 'प्रतिबिम्ब' नाम से संग्रह प्रकाशित किया।

⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗

मंगलाचरण

जग की मिटे अशान्ति शान्ति सबको सुखकर हो
चिर निर्धनता मिटे सम्पदा प्रिय घर घर हो
होकर प्रबल समर्थ न होवें अत्याचारी
छलित तज व्यवहार बनें हम स्नेह पुजारी
मेरे प्रभु विज्ञानमय हमको यह वरदान हो
सबके ही कल्याण हित अति उन्नत विज्ञान हो।

—विज्ञान, दिसम्बर १९३६

⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗ ⊗

४

डॉ० साहब को उनके कृतित्व के अनुकूल सम्मान मिला। उनकी विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रदेश तथा केन्द्र सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई हैं। वे विज्ञान परिष, केमिकल सोसाइटी, इंडियन एकेडमी आफ साइंसेज के आजीवन सदस्य तथा राष्ट्रीयद् अकादमी के फेलो हैं। अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के कार्यकलापों में आपका सहयोग रहा है। वे State C. S. I. R. के सचिव (1947 से 1969), हिन्दी समिति, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, नेशनल बुक ट्रस्ट जैसी रचनात्मक संस्थाओं के सलाहकार रहे हैं।

प्रयाग स्थित विज्ञान परिषद् के तो वे कर्णधार रहे हैं। अनुसन्धान पत्रिका के प्रकाशन का श्रेय उन्हीं को है।

आपको 1960 में विदेश जाने का भी सुयोग प्राप्त हुआ। वहाँ उन्होंने विभिन्न प्रयोगशालाओं का निरीक्षण किया और व्याख्यान दिये। वहाँ भी वे अपनी भारतीय वेशभूष में ही रहे।

५

सन्यास ग्रहण करने के पश्चात गेरुवे वस्त्र में, आर्य समाज कटरा या चौक के प्रांगण में वेद शिक्षा पर व्याख्यान करते, एकांत में बैठकर वेदों की व्याख्या में व्यस्त अथवा देश भर में आर्य-समाज की शती समारोहों में भाग लेते, कोटि-कोटि जन आपके दर्शनों से कृतार्थ हुये हैं। आपने विदेशों में विशेषकर अफ्रीका के विकासशील राष्ट्रों की यात्रा करते हुये वेदों का प्रचार किया है। आप में अँग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में भाषण देने की अपूर्व क्षमता है।

उनके तर्क विज्ञान पर आधारित होने के कारण ग्राह्य हैं, उनकी व्याख्यायें सरस हैं। वे योग पर भी चर्चा करते हैं। उनके सन्यासिन-कार्यकलापों के पृथक से आकलन करने की आवश्यकता है। उनका जीवन दर्शन वैज्ञानिक दर्शन है। उन्हें गाँधी और दयानन्द की विचारधारा में प्रचुर साम्य दिखता है। वे लिखते हैं, "मैं जितना ही स्वामी दयानन्द को समझने का यत्न करता उतना विज्ञान के प्रति प्रेम जगता गया और जितना ही विज्ञान की ओर झुका उतना ही ईश्वर के प्रति प्रेमाभिभूत होता गया··· मैं यह कह सकता हूँ कि विज्ञान के द्वारा मैं उत्तमतर आस्तिक बन सका हूँ। स्वामी दयानन्द को विज्ञान के माध्यम से ही अच्छी प्रकार समझा जा सकता है।···मैंने गाँधी का जितना ही अध्ययन किया, मुझे लगा कि उनके भीतर से दयानन्द बोल रहे हैं···मुझे वे दूसरे दयानन्द लगे। मैंने यद्यपि दयानन्द को कभी नहीं छोड़ा किन्तुमैं धीरे-धीरे गाँधी के आदर्शों की ओर खिंचता रहा···दोनों ने मानवता तथा ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट किया।"
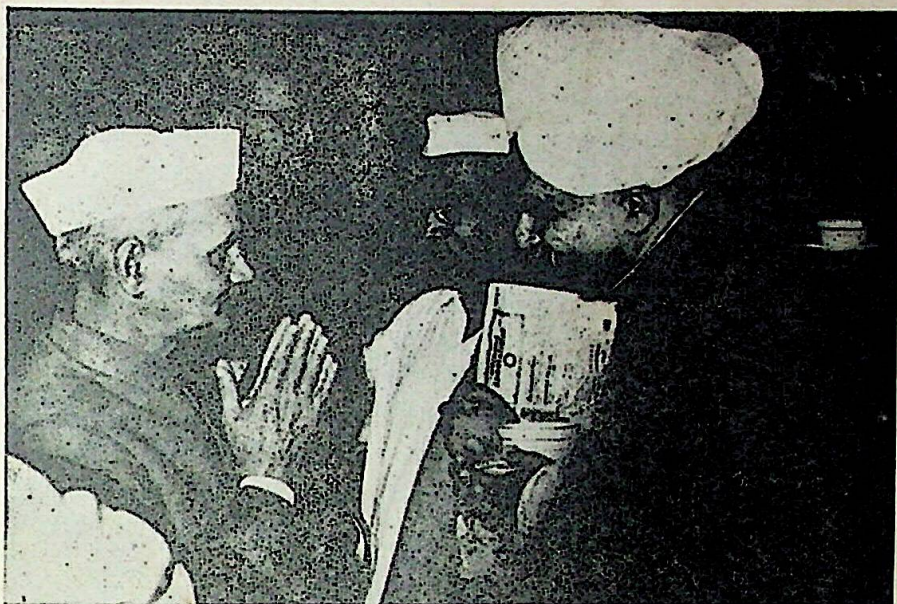
प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री द्वारा पुस्तक विमोचन
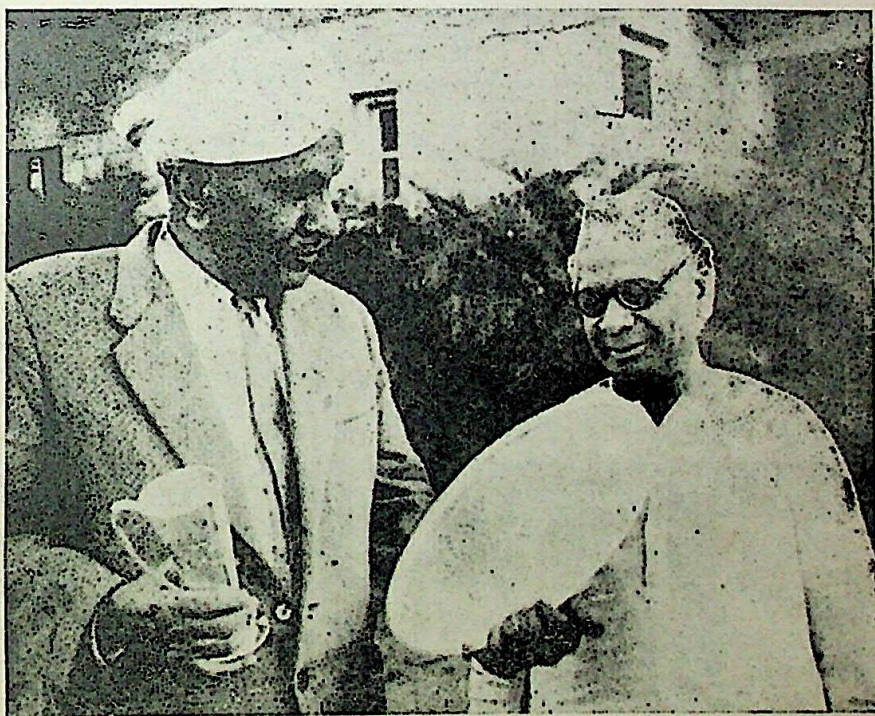
डा० चन्द्र शेखर वेंकटरामन को उनकी ८० वीं वर्ष गाँठ पर
उपहार देते हुये डा० सत्य प्रकाश

स्वामी जी को स्व की अकिंचनता का भान रहा है। वे अपने को न तो पूर्ण मानते हैं, न ही असफल। मानवीय दुर्बलताओं से भला कौन अछूता रहा है। यदि कहीं पक्षपात दिखाया तो वह सुस्पष्ट रहा है। उनका कथन है कि "ईश्वर ने मेरी योग्यता से अधिक ही मुझे दिया है अतः मैं हताश नहीं हुआ। मैंने जीवन-पथ में कोई जल्दबाजी भी नहीं की। ईश्वर मुझ पर सदैव दयालु रहा है। मुझमें हीन भावना ने कभी घर नहीं किया। यदि ईश्वर ने मुझसे कुछ छीना है तो उसकी पूर्ति अन्य प्रकार से हुई है।"

जीविकोपार्जन के लिये जो व्यवसाय किया जाता है वह सदैव उतना उपयोगी नहीं सिद्ध होता जितना कि किसी की अभिरुचियाँ, इनसे जो सन्तोष प्राप्त होता है वह अकथनीय होता है। स्वामी जी के सम्बन्ध में यह पूर्णतया चरितार्थ है। जहाँ उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में कार्य किया वहीं दर्शन तथा धर्म के प्रति सदैव समर्पित रहे। शायद ही कोई विज्ञानी ऐसा दुस्साहस करेगा।

६

स्वामी जी ने 1928 से लेकर आजतक जो भी लिखा वह स्फुट लेखों, रेडियो वार्ताओं, अध्यक्षपदीय भाषणों, पाठ्य-पुस्तकों एवं मौलिक ग्रन्थों के रूप में हिन्दी तथा अँग्रेजी दोनों भाषाओं में उपलब्ध है। वार्ताओं एवं लेखों के संकलन एवं प्रकाशन की आवश्यकता है। आवश्यकता है उनके मौलिक ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी विशद् विवेचन की।

स्वामी जी भारत की ऋषियों-मुनियों की परम्परा के मनस्वी हैं। उनके बौद्धिक योगदान की न तो उपेक्षा की जा सकती है न उनके जीवन दर्शन को झुठलाया जा सकता है। वे अनुकरणीय, महनीय एवं आदरणीय हैं।

डॉ० कृष्णन से मेरा सबसे पहला परिचय 1933 के ग्रीष्मावकाश में कलकत्ते में हुआ…मैंने 1932 में डी०-एससी० की उपाधि ली और फिर मेरी आकांक्षा सर सी० वी० रामन की प्रयोगशाला में काम करने की थी। डा० रामन ने स्नेहपूर्वक मुझे अपनी प्रयोगशाला में कार्य करने की सुविधा दी। जब मैं वहाँ पहुँचा, वहीं पहली बार मुझे कृष्णन का साक्षात्कार हुआ …… यह परिचय घनिष्ठता में परिणत हो गया। …… कृष्णन की प्रतिभा का शीघ्र ही मेरे ऊपर आतंक जम गया।

जब रसायन विभाग के अध्यक्ष का स्थान रिक्त हुआ मैंने डा० कृष्णन के सामने प्रस्ताव रखा था कि वे यहाँ आ जावें …… मेरे परिवार

के साथ लगभग एक मास रहे। मेरी जन्म तिथि पर उन्होंने वाल्मीकि रामायण का सुन्दर संस्करण भेंट किया ...... हम इस रामायण की सुन्दर पंक्तियों के सम्बन्ध में वार्तालाप करते थे। ...... वे कहते थे कि मैं उपनिषदों की भक्ति पर ऋचाओं का संकलन करूँ। दिल्ली में वे मेरे साथ उपनिषदों की चर्चा करते। ...... मैंने उनकी 60 वीं वर्षगाँठ पर चारों वेदों का एक सेट भेंट किया था। ......

—डॉ० कृष्णन की मृत्यु पर विज्ञान में
प्रकाशित लेख से

स्वामी जी के जीवन की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

• संकलित

1905 जन्म

1923 आर्य समाज के सदस्य

1927 एम० एससी० परीक्षा उत्तीर्ण, 'विज्ञान' के सहायक सम्पादक के रूप में नियुक्त

1929 3 दिसम्बर को विज्ञान की सेवाओं के उपलक्ष में मानद आजीवन सदस्य

1930 इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्ति

1932 डी० एससी० डिग्री से विभूषित

1933 31 मार्च को विज्ञान के सम्पादक पद से त्याग पत्र

1935 रत्नकुमारी जी के साथ विवाह

1936 कविता (मंगलाचरण)

1941 हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विज्ञान परिषद के अध्यक्ष

1942 6 मास तक 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में जेल में बन्दी

1945 भारतीय हिन्दी परिषद द्वारा "वैज्ञानिक शब्द कोश" के लिये सम्पादक नियुक्त

1949 पहली रेडियो वार्ता

1956 उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 400 रु० से पुरस्कृत

1957 विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका का प्रकाशन एवं उसके सम्पादक

1959 केन्द्र सरकार द्वारा 2000 रु० से पुरस्कृत

1960 यूरप की यात्रा

1962 रसायन विभाग के अध्यक्ष नियुक्त

1964 पत्नी की मृत्यु

1967 अध्यक्ष पद से मुक्त

1969 "भारत की सम्पदा" के सम्पादक नियुक्त

1969-70 विज्ञान परिषद के सभापति पद पर

1969-72 रिसर्च प्रोफेसर के रूप में

1970 दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा

1971 10 मई को सन्यास ग्रहण

1971-74 दक्षिणी तथा पूर्वी अफ्रीका में धर्म प्रचार हेतु यात्रा

1975-76 आर्य समाज शती में अनेक स्थानों पर भाषण, वेदों का अनुवाद कार्य

1976 पुनः अफ्रीका की यात्रा

छपते छपते –अमेरिका की सद्भाव यात्रा सम्पन्न
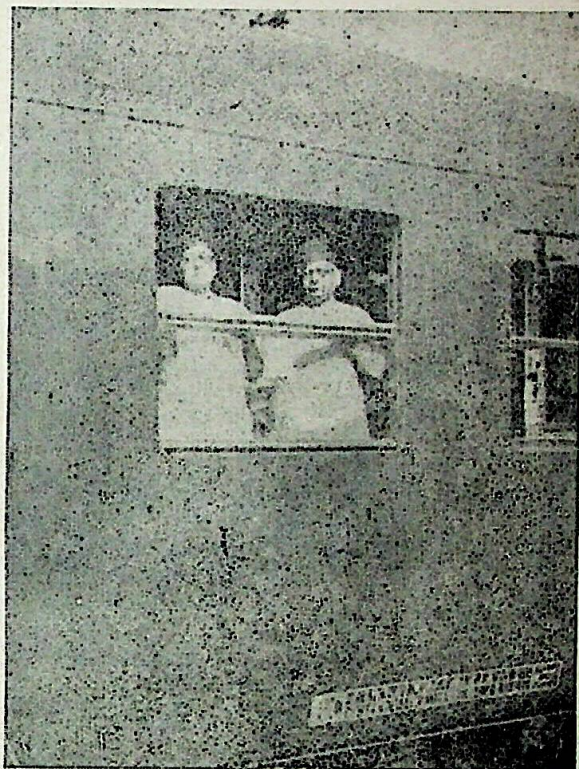
विदेश यात्रा : डा० सत्य प्रकाश अपनी पत्नी के साथ बार्सीलोना एक्सप्रेस में (पेरिस)

डा० सत्य प्रकाश विदेश में

हँसमुख व्यक्तित्व

□ □

क्या गार्हस्थ्य जीवन में और क्या सन्यासी होने पर—डॉ० सत्यप्रकाश के मुख पर सदैव हँसी विराजती रही है। किसी के यहाँ आमन्त्रित होने पर पहुँचते ही पूँछेंगे—क्या खिला रहे हैं ?

बात यह कि उन्हें कुछ चीजें अत्यन्त प्रिय हैं। विशेषकर मिठाइयाँ।

किसी से कहीं भी भेंट होगी तो शुद्ध भारतीयता के स्वर में अपनी ओर से बोल उठेंगे—कहिये......कैसे हैं ? दूसरे के पूछने पर स्वयं हँसते हुये कहेंगे—ठीक ही हूँ, देख नहीं रहे !

फोन पर बात कीजिये। वही हँसी मिश्रित स्वर—कहिये ...... कैसे हैं ...... मैं सत्यप्रकाश बोल रहा हूँ "...... से मेरा नमस्ते कहियेगा।"

कोई भी सिफारिश लेकर पहुँचे तो उसे यह नहीं अनुभव होने देंगे कि काम नहीं होगा।

उनके घर पर कोई आया तो पूछेंगे—क्या खिलाऊँ, क्या खावोगे, बोलो और कुछ ......। सन्यासी होने पर भी यही क्रम चल रहा है।

चाहे किसी भी समय कोई क्यों न पहुँचे वे जिस वेश में होंगे उसी में आगन्तुक से मिल लेंगे। न चिट की आवश्यकता, न औपचारिकता की।

उनकी तारीफ कीजिये, अनसुनी करेंगे। अन्यमनस्क रहेंगे, हँस देंगे।

सन्यासी होने के पूर्व उन्हें (उनके साथ काम करने वाले अध्यापक) प्रायः दादा जी कह कर सम्बोधित करते। वे हँसते रहते और हँसी की मुद्रा में जवाब देते।

बातचीत में हँसी के फोव्वारे, ठहाके, भोजन के बीच हँसी के स्रोत ...... न जाने जीवन में कितनी हँसी मिली है इन्हें। शायद इसी कारण इनका जीवन-मार्ग सरल होता गया। वे जीवन को परम सरल व्यापार मानते भी हैं।

शायद ही किसी ने स्वामी जी को खिन्न देखा हो—सर पर हाथ धरे या निःश्वास छोड़ते। केवल अध्ययनरत रहते समय वे हँसी से परहेज करते हैं। सचमुच ही

बिसरत नाहिं नैकु मो मन ते
मन्द मन्द मुसकानि
वसुधा की बस करी मधुरता
सुधा पगी बतरानि

विनोद की पराकाष्ठा तो तब पहुँच जाती है जब वे कहते हैं—अभी से मेरी मृत्यु के लिये लेख तैयार रखो ········· कैसा रहेगा यदि मैं लिखूं कि मरने के बाद क्या क्या हो······।

अपने इस नैसर्गिक गुण के कारण उन्हें सफलता ही सफलता मिली है। विदेशों में वे इसी के सहारे पूज्य हैं।

अर्द्धांगिनी डा० रत्नकुमारी जी

डॉ० रत्नकुमारी जी डॉ० सत्यप्रकाश के परिणय-सूत्र में1935 में बंधीं। ससुराल में ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रकाश प्रारम्भ किया। गृहस्थी का भार सँभालते हुये डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में हिन्दी में डॉक्टरेट की उपाधि ली (1955) और फिर आजीवन कन्याओं को शिक्षा देने के कार्य के प्रति समर्पित रहीं। वे आर्य समाज द्वारा संचालित कन्याओं के इण्टर कालेज की प्रिंसिपल रहीं।

उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं स्वभाव अत्यन्त सरल था। डॉ० सत्यप्रकाश जी की सफलता में उनका पूरा-पूरा योग था। उन्हें घर की कोई फिक्र नहीं करनी पड़ी जिसके कारण वे अधिकाधिक समय लेखन-चिंतन में लगा पाये। अतिथियों की आवभगत में डॉ० रत्नकुमारी पटु थीं। उनके परिचितों एवं हितचिन्तकों की संख्या काफी बड़ी थी।

उन्होंने अपने दो पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा के लिये सर्वोत्तम प्रबन्ध किया। 1960 में विदेश में अध्ययन कर रहे अपने पुत्रों से भेंट करने के लिए डॉ० साहब के साथ विदेश-यात्रा भी की—3 मास तक (20 मई से 21 अगस्त)। जब बड़े पुत्र ने विदेशी लड़की से शादी की तो वे कुछ खिन्न अवश्य हुईं यद्यपि इनका परिवार आर्य समाजी होने के कारण ऐसे अन्तर्जातीय या अन्तर्देशीय विवाहों का समर्थक रहा है। अपने दूसरे पुत्र की शादी भी अन्तर्जातीय ही की।

किन्तु वे भरे-पूरे परिवार का सुख अधिक नहीं भोग पाईं। 1 दिसम्बर 1964 को ईश्वर ने उन्हें इस संसार से उठा लिया। कानपुर गर्ल्स रैली में गई थीं। वहीं अचानक हृदय गति रुक जाने से मृत्यु हो गई।

डॉ० सत्यप्रकाश जी ने पत्नी-शोक प्रकट तो नहीं होने दिया किन्तु उनके मन में अवश्य ही वैराग्य भावना घर कर गई। फलस्वरूप 1971 में उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। वे पत्नी के नाम लिये जाने पर करुणार्द्र हो उठते हैं। उनकी स्मृति बनाये रखने के उद्देश्य से अपने घर को डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान के रूप में परिणत कर

दिया, गृह त्याग कर दिया, उनके नाम पर कई पुरस्कार स्थापित किये, विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशित सर्वोत्तम शोध-निबन्ध पर पदक प्रदान किये जाने की व्यवस्था की। न जाने अभी भी उनके मन में क्या-क्या अरमान हों।

डॉ० रत्नकुमारी बहुपठित महिला थीं। वे भारतीयता की जागृत प्रतिमूर्ति थीं—अत्यन्त उदार एवं सरल। उनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं।

1. डी० फिल्० शोध-प्रबन्ध (हिन्दी और बंगला के वैष्णव कवि)
2. व्यंग्य परिचय-ज्ञान डाउस्ट कृत (1938)
3. प्राची और प्रतीची

व्यंग्य परिचय विज्ञान परिषद् से प्रकाशित है। यह अनुवाद है। प्राची-प्रतीची में अपनी विदेश यात्रा के संस्मरण लिखे हैं—दुर्दैव से यह उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई।

ऐसी अप्रतिम आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि है।
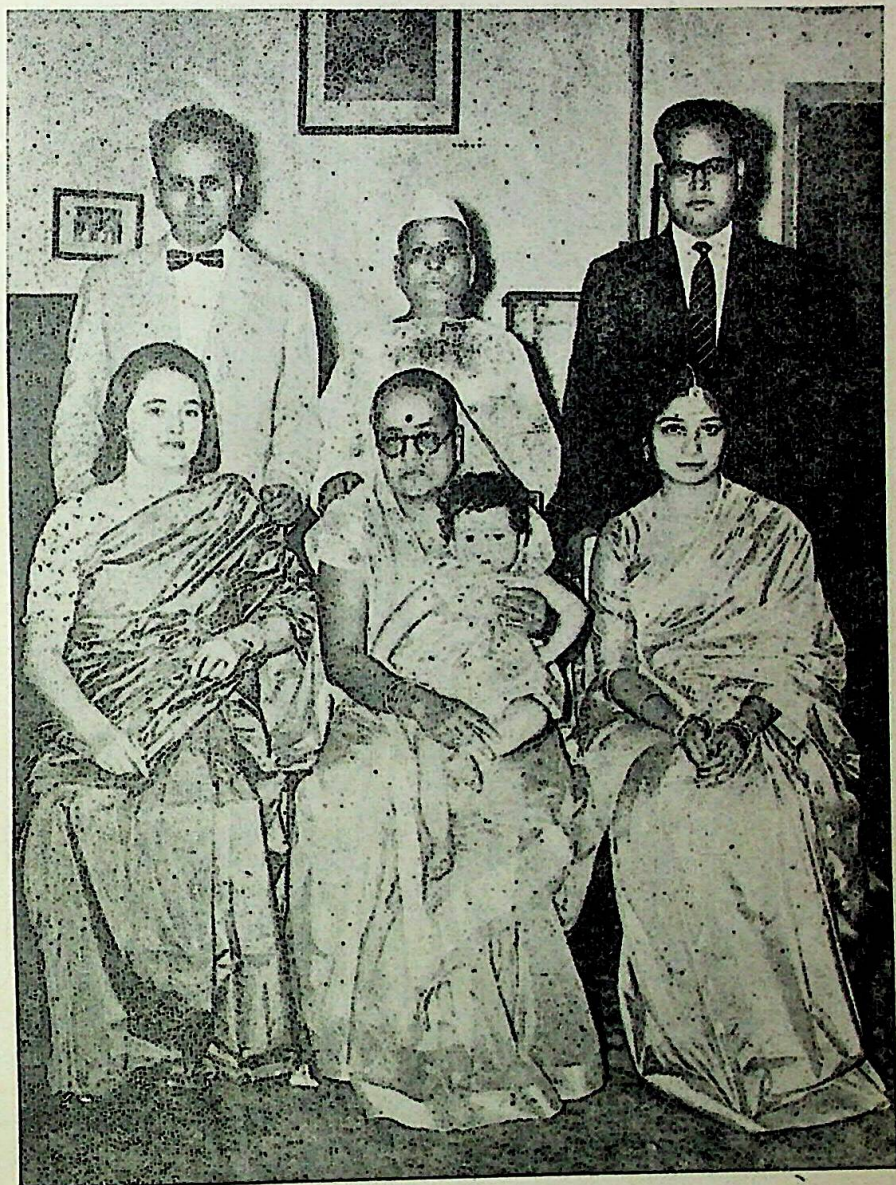
डा० सत्य प्रकाश अपने परिवार के साथ

खड़े—श्री अरविंद (ज्येष्ठ पुत्र), डा० सत्य प्रकाश तथा श्री आनन्द (छोटे पुत्र)

बैठे—अरविन्द की पत्नी, डा० रत्न कुमारी (अपनी पौत्री के साथ) तथा आनन्द की पत्नी

अध्यापक के रूप में

पहले डिमांस्ट्रेटर, फिर प्राध्यापक और अन्त में विभागाध्यक्ष—यह है डॉ० साहब के अध्यापक जीवन का क्रमिक विकास। वे 1930 में पहले पहल रसायन विभाग में नियुक्त हुये और 32 वर्ष अध्यापन कर चुकने के बाद अध्यक्ष हुये। यह उनकी जीवन के प्रति निष्ठा तथा जीवन में सहिष्णुता का प्रतीक नहीं तो क्या है ?

वे इस परिवर्तनशील संसार की प्रकृति के समर्थक रहे हैं। उन्होंने कार्बनिक रसायन में विशिष्ट अध्ययन किया किन्तु अध्यापन और शोधकार्य भौतिक रसायन के क्षेत्र में। वे गणित, प्राचीन संस्कृति, इतिहास आदि के प्रति भी समान रूप से रुचि रखने वाले हैं।

रुचि वैचित्र्य का एक उदाहरण है हिन्दी तथा अंग्रेजी में समान रूप से लेखन। उनकी अध्ययनशीलता उन्हें आज भी शान्त रहने नहीं देती। वे कुछ न कुछ लिखते रहते हैं—हल्का फुल्का नहीं वरन् गम्भीर चिन्तन एवं मनन से युक्त। भाषा सीखने में परम प्रवीण—संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, उर्दू के अतिरिक्त अफ्रीका की कुछ भाषाओं के प्रति भी उनका अनुराग है ! उन्होंने परिभाषिक शब्दों के मूल (root) पर काफी मनन किया है। वेदों के प्रति प्रारम्भ से झुकाव होने के कारण उनका भाषा ज्ञान पुष्ट रहा है। हिन्दी की वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण, कोश निर्माण तथा वेदों के भाष्य आदि इसके उदाहरण हैं।

लेकिन अधिकांश लोगों को उनकी सादगी एवं सहजता से वह प्रखर पांडित्य नही प्रकट हो पाता जो उनमें भरा हुआ है।

सफल अध्यापक के लिये कई बातें आवश्यक हैं। डा० साहब में इनमें से अधिकांश रही हैं--वे मृदुभाषी, मिलनसार, ज्ञान के भण्डार एवं विषय के ज्ञाता रहे हैं। वे भाषण (लेक्चर) देने में परम पटु रहें हैं—हिन्दी तथा अंग्रेजी में समान रूप से। विद्यार्थियों से घुल-मिल कर बातें करना, हँसना-हँसाना—इसे वे प्राथमिकता देते। वे ऐसी शिक्षा के कभी भी पक्षधर नहीं रहे जिसमें छात्र साहित्यक अभिरुचि का परित्याग कर दें—आखिर जीवन

में पढ़ने के अतिरिक्त भी तो और कुछ है। शायद इसीलिये कक्षा के उत्तम विद्यार्थी उनके भाषणों में अधिक नम्बर पाने लायक कम सामग्री पाकर निराश होते। प्रायः जब अपने साथ कोई पुस्तक लाकर उसमें से कुछ अंश लिखाकर अपना भाषण पूरा करते होते तो छात्रों को निराशा होती थी—कारण वे अविच्छिन्न प्रवाहयुत भाषण के अभ्यस्त होते। उनका हिन्दी बोलना, 'बेटा' कहकर शिष्यों को सम्बोधित करना और घिसे-पिटे विषय के अतिरिक्त अन्य जीवन सम्बन्धी बातें करना—ये मध्यम कोटि के छात्रों के लिये जहाँ अविस्मरणीय प्रसंग बनते, वहीं कुछेक छात्रों में ये ही उनकी निन्दा के विषय बनते। किन्तु डा० साहब प्राचीन ऋषियों की परम्परा के अनुगामी रहे। 'सादा जीवन, उच्च विचार' इस मूलमन्त्र से वे अपने शिष्यों को अनुप्राणित करना चाहते थे।

छात्रों को डा० साहब भले ही उच्च कोटि के व्याख्याता न जँचे हों किन्तु वे उन्हें सर्वोपरि लेखक प्रतीत होते। डा० साहब ने छात्रों के हित को ध्यान में रखकर अनुपम पाठ्य पुस्तकें तैयार कीं। बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० के लिये रसायन की जो जो भी पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं, उनकी भूरि भूरि प्रशंसा हुई है और छात्रों का कल्याण हुआ है। शायद उत्तर भारत में डा० साहब ही पहले प्रतिष्ठित लेखक हैं। इन कृतियों से यश के साथ ही उन्होंने धन भी अर्जित किया। आज भी उनकी लिखी हुई बी० एस-सी० की रसायन प्रयोगात्मक पुस्तक छात्रों की प्रिय पुस्तक है। डा० साहब भले ही कक्षा में परिश्रम का परिचय न दे पाये हों किन्तु उनकी पुस्तकें उनके गम्भीर अध्ययन, कठिन परिश्रम एवं शतत जागरूकता की परिचायक रही हैं। पुस्तक लेखन में वे आज भी श्रम करते हैं—पुरानी कृतियों के संशोधन में काफी मेहनत करते हैं। उन्हें अपने पाठकों की सुरुचि का सदैव ध्यान रहा है। यही कारण है कि डा० साहब प्राइमरी पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक समान रूप से पढ़े जाते हैं।

डा० साहब सदैव प्रगतिशील रहे हैं। आर्य समाजी होने के कारण अन्ध विश्वासों के समर्थक नहीं रहे। किन्तु उन्हें भारतीयता और भारतीय संस्कृति के प्रति सदैव अनुराग रहा है। वह शिष्यों के लिये अनुकरणीय रहे हैं। अपने छोटे से छोटे अनुभव को अपने शिष्यों के बीच प्रकट करने में कभी हिचके नहीं। अपनी मितव्ययिता, अपनी पूर्वस्थिति—इनसे सम्बन्धित संस्मरण सुनाते रहे हैं। उनका जीवन खुली पुस्तक के रूप मे रहा है। अनेक छात्रों ने उनकी भक्ति करके लाभ उठाया है। तथाकथित मुँहलगे छात्रों को उन्होंने हिन्दी की ओर उन्मुख करके उन्हें जीवन में ऊँचे उठाया है।

डा० साहब अध्यापन के साथ साथ छात्र-कल्याण की ओर भी उन्मुख रहे हैं। विश्वविद्यालय में पुरवासी छात्रों के लिये भवन निर्माण, फोटोग्राफी संघ के सदस्य तथा विज्ञान परिषद भवन की स्थापना में उनका अभूतपूर्व सहयोग रहा है।

अध्यापक होकर भी उन्होंने विद्यार्थी के लक्षणों का अतिक्रमण नहीं किया—प्रातः उठना और नित्य प्रति पढ़ना और लिखना—यह कभी नहीं छूटा। अन्यथा सामाजिक व्यस्तता के बावजूद इतना कर पाना दुष्कर था।

डा० साहब ने अध्यापक जीवन में अपनी सारी साधनायें कीं। इसके सदुपयोग का यही तरीका उन्हें भाया। वाद विवाद से परे ज्ञान की खोज में रत रहना और जो भी जानने योग्य है उसे ग्रहण करके लोक कल्याण के लिये उसको प्रकट करना—यही उनके कृतित्व का रहस्य रहा है।

बचपन में जिन वेदों ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया था, उन्हें वे अध्यापन कार्य काल में भूले तो न थे, उनका मन छटपटाता रहता था अतः अवकाश प्राप्त होते ही उन्होंने अपना ध्यान उधर फेरा। प्राचीन वैज्ञानिकों की जीवनी, भारत में रसायन सम्बन्धी विचार धारा के स्रोत तथा वेदों की सरल व्याख्या—ये उनके लेखन के विषय बने।

अब तो सन्यास ग्रहण कर लेने के बाद व्याख्याता रूप पुनः प्रबल हो उठा है—दूसरे रूप में। वे आर्य समाज के परम समर्थ व्याख्याता के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द के बाद स्वामी सत्यप्रकाश की वाणी से देश तथा विदेश के लोग आनन्दित हो रहे हैं। यह अध्यापक का लोक कल्याणकारी रूप है। वे इसके पात्र बनें, इसके लिये वे युवावस्था के हठयोग को 'योग' में और गृहस्थी में निर्लिप्तता को सन्यास में परिणत कर चुके हैं। वे आज भी बालकों-से कर्मठ एवं जिज्ञासु हैं। ईश्वर पर उनकी आस्था है और जीवन की सार्थकता पर भी।

डा० धर की शुभशंसा

Phone—52986

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
Sheila Dhar Institute of Soil Science
(*Established in* 1935)

Long Live my Pupil

Dr. N. R. Dhar
Director, Sheila Dhar Institute, Allahabad

Over 45 years ago Satya Prakash came to me for research work leading to the D. Sc. degree of this University. He specialised in Organic Chemistry for his M. Sc. course and then joined for research work under Dr. Sikhi Bhusan Dutt, Reader in Chemistry, Allahabad University but could not do so longer.

I worked hard with Satya Prakash and made him acquainted with our research problems on Surface and Colloid Chemistry including living matter. His problem was to find out the applicability of the Laws of Colloid Chemistry to blood, serum, milk etc. He worked well and steadily on coagulation of goat's blood and other bio-colloids frequently both in the day and evening when animal blood was available and obtained important results and presented an extensive thesis dealing with Colloid Chemistry for the D. Sc. degree of this University.

As I knew well his father, I appointed him as a demonstrator in the Chemistry Department in which he rose to be the Head in course of time by his work.

His important contributions are in the realm of scientific publications in Hindi in which he has made a signal mark.

I join with the Vijyan Parishad wholeheartedly as the seniormost past President in wishing my ex-pupil Dr. Satya Prakash well for long years to come on the occasion of his 70th birthday.

डा० जयकृष्ण का सन्देश

University of Roorkee
Roorkee, U. P.

Dated December 16, 1975

Dear Dr. Misra,

Thank you for your letter of 2. 12. 1975. I give below few remarks for your use :

Swami Satya Prakash Ji has been associated with the University of Roorkee as a member of the Syndicate from 1969 to 1975. Our Syndicate benefitted from his long experience of teaching and academic administration. It is always a pleasure to have him amongst us.

It was our good future that Swami Ji continued his interest in the University even after taking "Sanyas". I have great pleasure in felicitating Swami Satya Prakash Ji on the occasion of his 70th anniversary.

Yours sincerely
Jai Krishna
Vice Chancellor

डा० जगदीश शंकर का श्रद्धा पुष्प

तार : यूनीग्रान्ट्स
Grams : Unigrants
December 16, 1975

Dear Shri Misra,

Many thanks for your letter of 2nd December, 1975. It was redirected from Bombay to my present address.

I have known Professor Satya Prakash for more years than I can remember. Apart from being an outstanding Physical Chemist who has contributed to the Chemistry of Colloids, he is a gentleman in every sense of the word. Professor Satya Prakash has been almost like a father to many young students of the Allahabad University. Although he retired 8 years ago, I know that he still takes keen interest in the welfare of young men and women interested in higher studies. I wish him long life, good health and further opportunities in the service of education.

Yours sincerely,
(Jagdish Shankar)
Director (Science Research)

डा० ए० बोस की भावभीनी बधाई

Akshayanand Bose, D. Sc., F.N.A.
Professor of Physics.
Department of Magnetism.
Indian Association for the Cultivation of Science
Jadavpur.

December 11, 1975.

Dear Sir,

I am very glad to know that you are undertaking the publication of Commemoration volume on 70th birthday anniversary of Dr. Satya Prakash. I became acquainted with Dr. Satya Prakash as early as 1933 when I started my research career under Late Prof. K. S. Krishnan at the Indian Association for the Cultivation of Science, 210, Bowbazar Street, Calcutta, already famous for the discovery of the Raman Effect and as the poineer Research Institute of India, a place of pilgrimage of the scientists of the country. I was an unsophisticated, introvert, moffusil youth at the time and this drew me strongly to the saintly youngman, Dr. Satya Prakash from Allahabad who was five years my senior. He used to come to Indian Association during vacations to do research work on Magnetochemistry with Prof. Krishnan. His work on magnetic behaviour of colloidal solutions has thrown considerable light on their properties and nature. His everpleasant cheerful face and mood endeared himself to all the research students at the association and particularly his hearty friendly approach to a much junior student like me helped me considerably in overcoming my intrinsic diffidence in my new surroundings of Calcutta.

Actually, I had set up a magnetic balance and a thermostat for measuring variation of magnetic susceptibility with temperature and whenever Dr. Satya Prakash came to Association he used to do his own work with this balance. So, we had become quite close associates and spent much time in discussing problems and future plans as also a lot of personal talks to pass some very pleasant days. His simplicity in dress, food and manners, and pious behaviours, even in those days marked him out as a devotee of the Eternal Spirit, while on the other hand his stolid persistence on difficult problems and keen intellect in solving them showed him none-the-less as a scientist of rare acumen.

I have met him off and on during many years and particularly during my stay at Allahabad University as a Research Assistant to Late Profeesor Krishnan, from 1942 to 1945, when I already found him on his way to

renouncement of worldly pursuits and mostly devoted to the enrichment of scientific vocabulary and literature in Hindi language. His stupendous work in this direction has made him one of the greatest benefactors of the language as well as of students of science. His whole hearted devotion to the cause and his pious life has few equals in the modern humdrum life and is worthy of emulation, as leading to peace of mind, the ultimate goal of human life.

I pray to God for his long, healthy, and fruitful life devoted to the betterment of humanity, and add personal cordial greetings on the completion of his 70th birthday.

Yours sincerely
A. Bose

डॉ० सद्गोपाल का पत्र

ई-13, "कालिन्दी"
नई-देहली, 110014.
18, फरवरी, 1976

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती,

प्रिय-स्व-स्वामी, शान्ति-स्वरूरि प्रभु, आर्य-राष्ट्र-भाषा, उपास्य देवी, योगी गिराकार, ब्रह्म ज्ञान, पूर्ण-सफलता, 'वेद माता', हिरण्य-गर्भ गुरु-मन्त्र, संस्कृत, जन्म-मरण के बन्धन, परमात्म-देव सौभाग्य-मरी इच्छा और मङ्गलमयी, 'उत्तम ज्योतिः प्रभात-सूर्य-प्रभा, मुमुक्ष मोक्ष-धाम, सूर्य ज्योति'-आग्रेय का पुंज, अभय-प्रदान, और सन्यास—

(1) ? ? ?

(2) "विज्ञान ब्रह्मेति व्याजनात् विज्ञानाद्ध्येवखल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञान प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।" तै० उ० ।3।5.

(3) शान्तिमय पितः ! नमस्ते !! हमारी बार-बार नमस्ते !!
हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करो ।

(4) फूलों में तेरी शोभा,
कांटों में तेरा दर्शन ।
बगिया में तुझको ढूंढू,
या बन में खोजूं ? भगवन् !

आपका शुभ चिन्तक
सद्गोपाल
व कमला सद्गोपाल

स्वामी जी से मेरा परिचय

● डॉ० शिवगोपाल मिश्र

मैं दो ही हिन्दी लेखकों के सम्पर्क में आया—डा० गोरखप्रसाद तथा डा० सत्यप्रकाश। डा० गोरखप्रसाद की आकस्मिक मृत्यु से वह सम्पर्क उतना अन्तरंग नहीं हो पाया किन्तु डा० सत्यप्रकाश जी से मेरा सम्पर्क एवं सम्बन्ध निकट से निकटतर तथा निकटतम हो सका है।

मैंने डा० सत्यप्रकाश को सर्वप्रथम 1947 में देखा जब के० पी० कालेज में वे भाषण देने आये थे। 1948 में मैं उनका शिष्य हुआ। 1950 में उन्होंने मुझे भौतिक रसायन पढ़ाया। इस काल में मैं उनकी भारतीय लिबास एवं सरलता पर मुग्ध था।

किन्तु डा० साहब से मेरा प्रथम सान्निध्य 1957 में 'अनुसन्धान पत्रिका' निकालने के प्रसंग में हुआ। फिर तो मैं प्राय: उनके घर पर भी जाने लगा। पहले तो पत्रिका के प्रूफ वे स्वयं देखते और मुझे बताते किन्तु बाद में यह सारा कार्य मैं ही करने लगा। अनुवाद कार्य का कुछ अंश वे करते, शेष मैं। आज भी यही क्रम चल रहा है।

1958 में 'सरस्वती प्रकाशन' मथुरा वालों ने हाई स्कूल के लिये एक रसायन विज्ञान पर पुस्तक लिखने का आग्रह किया तो डा० साहब ने मुझे बुलाकर इस कार्य को मिलकर सम्पन्न करने के लिये कहा। हम दोनों ने यह कार्य पूरा कर दिया—तभी मैंने समझा कि पाठ्य पुस्तक किस प्रकार तैयार की जाती है। तभी डा० साहब की पत्नी डा० रत्नकुमारी जी से मेरा परिचय हुआ। जब पुस्तक की रायल्टी का प्रश्न आया तो डा० साहब ने मुझे ही पहली किस्त ग्रहण करने का आदेश दिया। मैं उनकी इस सहयोगी-भावना से अत्यन्त अभिभूत हुआ।

एक बार पुन: मध्य प्रदेश के लिये हाई स्कूल रसायन की पाठ्य पुस्तक लिखने के लिए प्रयाग के मुन्नू बाबू ने उनसे आग्रह किया तो उन्होंने उन्हें मेरे पास भेजा। पुस्तक तैयार हुई किन्तु वह स्वीकृत नहीं हो पाई।

1970 में "कौंसिल ग्राफ साइंटिफिक एंड इण्डस्ट्रियल रिसर्च (C.S.I.R.) नई दिल्ली' की ओर से डा० सत्यप्रकाश के प्रधान सम्पादकत्व में "भारत की सम्पदा" नामक हिन्दी अनुवाद की योजना बनी। उसके लिये हिन्दी विशेषाधिकारी का चुनाव होना था। मैं इंटरव्यू में गया। डा० साहब विशेषज्ञों में थे। मेरा चुनाव हो गया। उन्होंने मुझसे 6 मास में कम से कम एक खण्ड तैयार कराने का लक्ष्य बनवाया। जब भी मैं दिल्ली से प्रयाग आता वे कार्य को जल्दी से सम्पन्न कराने का निर्देश देते। उन्हें मेरे कार्य करने की प्रणाली पर विश्वास था और वे मुझसे सदैव सन्तुष्ट रहे।

जब मैं दिल्ली में था, तभी डा० साहब ने सन्यास ग्रहण किया। डा० आत्माराम उनके अभिन्न मित्र हैं। उन्होंने इस अवसर पर प्रयाग आने का विचार किया था और साथ में मुझसे भी चलने को कहा था किन्तु किन्हीं कारणों से आना सम्भव न हो सका, अतः मैं उसमें सम्मिलित न हो पाया। किन्तु जब सन्यास ग्रहण करने के बाद वे दिल्ली गये तो मेरा आतिथ्य ग्रहण किया।

'अनुसन्धान पत्रिका' के साथ साथ मैं 12 वर्षों तक 'विज्ञान' का भी सम्पादक रहा। विज्ञान परिषद में मुझे लाने का श्रेय डा० साहब ही को है। जब भी मैं उनसे लेख माँगता, वे सहर्ष प्रदान करते। कहते कि इस पत्रिका को 'नेचर' सदृश बनाना है। स्फुट लेखों के बजाय लेखमाला छापने का यत्न करो। किन्तु जब मैं उनसे पत्रिका को प्राप्त होने वाले सरकारी अनुदान को बढ़वाने के लिये कहता तो उनका प्रत्युत्तर होता--इतनी सी पतली पत्रिका के लिये अधिक अनुदान की क्या आवश्यकता ?

इधर कई वर्षों से स्वामी जी 'अनुसन्धान पत्रिका' के सम्पादक पद से विलग होने की बात करते रहे हैं किन्तु मेरे आग्रह को उन्होंने नहीं ठुकराया।

मेरे ऊपर डा० साहब का अत्यन्त स्नेह रहा है। मैं उनके परिवार का सदस्य हो चुका था। जब भी उनके घर पहुँचता, मेरे लिये मिठाई अवश्य मंगाते। उनकी पत्नी मुझे कम नहीं चाहती थीं। मेरे हिन्दी प्रेम से वे अतीव प्रसन्न रहती थीं।

सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी जी ने अपने बेली रोड के निवास स्थान का परित्याग करके कटरा में आर्य समाज को अपना अड्डा बनाया। वहां भी मैं प्रायः उनसे मिलता रहता। शायद ही कोई अवसर रहा हो जब उन्होंने मुझे कुछ न खिलाया हो। वे मेरे कार्य से इतने तुष्ट तथा मेरे ऊपर इतना विश्वास करते रहे हैं कि मैं कहीं भी हस्ताक्षर कर दूं तो वह उन्हें मान्य है।

मैं जानता रहा हूँ कि स्वामी जी अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहते। जब भी मैं उनके अभिनन्दन की बात करता, वे टालते रहते किन्तु पिछले अगस्त में जब मैं बरबस उनके यहाँ पहुँचा और कहा कि स्वीकृति दें तो उन्होंने स्वीकृति दे दी। यह मेरे लिये परम प्रसन्नता की बात थी क्योंकि मैं प्रयोग करके देखना चाहता था कि स्वामी जी जैसे

मान्य हिन्दी के वैज्ञानिक लेखक के सम्बन्ध में कौन कैसी धारणा रखता है ? विज्ञान वाले अपने गुरुजन का किस प्रकार से अभिनन्दन करते हैं ?

2

स्वामी जी के साथ मेरी विविध विषयों पर चर्चायें चलती रही हैं । मैं 1957 से लगातार उनसे विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियों पर विचार-विमर्श करता रहा हूँ । जब मैं वाष्प लिखता तो वे काटकर बाष्प बनाते । मैं कहता—मुझे ऐल्कोहाल, फॉस्फोरस आदि लिखने में न जाने क्यों हिचक होती है . . . और मैंने देखा कि स्वामी जी ने अंग्रेजी-हिन्दी कोश की भूमिका (1970) में मेरे तर्कों को स्वीकार किया ।

जब मैंने पॉलिंग की पुस्तक (College chemistry) का अनुवाद किया तो उसका पुनरीक्षण स्वामी जी ने ही किया । अनुवाद को कई मास तक रोक कर मुझे बुलाकर वाक्य विन्यास तथा अनुवाद के सम्बन्ध में आलोचना करते रहे । वे कहते "तुम साहित्यिक अनुवाद करते हो, भले ही वाक्य योजना हिन्दी की है ।' मैं उनके इस कथन का कायल रहा हूँ और मैंने यथासम्भव अपने को सुधारने का यत्न किया है ।

मैंने एक गोष्ठी का आयोजन किया जिसका विषय था "हिन्दी माध्यम से रसायन का पठन पाठन"। इसमें कई विद्वानों ने भाग लिया । स्वामी जी भी आये ।

स्वामी जी प्रायः अपने जीवन-संस्मरण सुनाते—मैंने कविता भी की है, चलो अब फिर कविता लिखें . . . . मैं प्रातः उठता रहा हूँ . . . . मैंने डिमांस्ट्रेटर के रूप में नौकरी प्रारम्भ की, अब अध्यक्ष हूँ . . . . मैंने मोटर खरीदी, बेच दी, अब पैदल आने जाने का प्रयोग कर रहा हूँ ··· मैंने रामन तथा कृष्णन के साथ कार्य किया ··· जेल में शास्त्री जी के साथ रहा, मैंने हिन्दी में कम अंग्रेजी में ज्यादा लिखा है, मैंने विज्ञान के सम्पादन के साथ साथ उसके पते चिपकाने, भेजने आदि का भी कार्य किया है, ..."

आज भी जब किसी से मेरा परिचय कराते हैं तो हँसते हुये कहेंगे "मेरी सबसे बड़ी खोज है—डा० मिश्र ।" मैं शर्म से गड़ जाता हूँ । उनका निश्च्छल प्रेम तथा आत्मीय व्यवहार सबों के हृदय को हरने वाला है ।

अपने अफ्रीकावास से स्वामी जी लगातार मुझे पत्र देते रहे हैं । मैं उनकी किस प्रकार प्रशंसा करूँ ।

मैं श्रद्धावनत हूँ ।

डा० माताप्रसाद की शुभ कामनायें

Swami Dr. Satya Prakash Saraswati

An Appreciation

● Dr. Mata Prasad,
Agra

I am indeed very happy to know that Vijyan Parishad is publishing a special issue to honour my dear old friend Dr. Satya Prakash now known as Swami Satya Prakash Saraswati.

I met Satya Prakash for the first time at Allahabad in 1932 when he was preparing his thesis for the D.Sc. degree of Allahabad University and might have submitted it. The subject of his research was the study of gels, in the domain of Colloids. By coincidence my D. Sc. thesis which was submitted to the Banaras Hindu University in 1924 also dealt partly with the study of gels; thus gels were the agents of contact between myself and Satya Prakash. Subsequently both of us continued our studies on gels for sufficient time; Dr. Prakash concentrated his attention on the preparation of gels of good many inorganic substances and the study of some of their properties while my work was devoted to the study of some of the characteristic properties of gels, mainly the elastic and optical properties and their thixotropic behaviour, with a view to elucidate the mechanism of their mode of formation and their structure. One of the gels prepared by Dr. Prakash was found by me to exhibit the phenomenon of reversible sol-gel transformation, an attribute which was considered to be an exclusive character of organic gels only. It is worthy of mention that not only we referred to each other's work in our publications of research papers, but references to the work of both of us were simultaneously made in all publications by other workers in the field of gels and textbooks published on Colloids.

Somehow Dr. Prakash developed great affection for me, and we used to meet each other often at Allahabad as this was the home-town of my

in-laws. Several times he invited me to dinner at his old residence in the town when we used to talk on the common topic of research, besides other subjects. Later, when his house was built on Beli Road, I not only used to visit him in his new residence, but stayed with him, sometimes along with my wife, and he always entertained us very affectionately. We used to meet each other in scientific meetings also, particularly of the session of Indian Science Congress, but such meetings were few and far between, due to long distances between the place of our work and residence. Dr. Prakash lived at Allahabad as his place of work was the Muir Central College and then the residential University of Allahabad, and I lived in Banaras where I was employed, first as the Professor of Inorganic and Physical Chemistry and later as the Principal of the then Royal Institute of Science, for 28 years during 1925-53.

Dr. Satya Prakash directed his later researches in many other fields such as, ultra-sonics, archaeological chemistry.

When I returned to Agra, my home-town, after completing my term of the office of the Vice-Chancellor of the Vikram University at Ujjain in Madhya Pradesh, I was often appointed on the committees held at Allahabad by the University of Allahabad and the Colleges affiliated to it, for interviewing candidates for appointments to the staff of the Chemistry Department, and the frequency of my meetings with Dr. Prakash were thereby increased. I was highly distressed to find that Dr. Satya Prakash was till then working as a (temporary) Reader in the Chemistry Department of Allahahabad University. It was a matter of immense gratification to me to see that he was very soon appointed as the Professor of Chemistry and the Head of the Chemistry Department of Allahabad University the positions which he richly deserved and should have got them much earlier. I now feel over-joyed when I see the photograph of my revered friend, Dr. Satya Prakash, in the Department amongst the galaxy of Chemists who functioned as Heads of the Chemistry Department of Muir Central College and then of Allahabad University, since their foundation; these were the premier educational institutions in United provices, now called as the State of Uttar Pradesh.

Dr. Satya Prakash is a prolific writer, both in English and Hindi. He has written several books in Chemistry and other subjects, both in English and in Hindi. Most of the books in Chemistry are read as text-books by the undergraduate and post-graduate students in Chemistry, and other are used as books of reference. Dr. Prakash's faculty for writing is highly

advanced, and he is fully utilising it even now in writing his thoughts on religious topics, treated in scientific manner and expressed in scientific language, and in translating some scientific and religious books from English into Hindi.

Dr. Satya Prakash is a devout nationist, and had been attempting all along his life to render scientific knowledge available to our countrymen through the medium of Hindi. He therefore laid the foundation of Vijyan Parishad to provide an agency for the popularisation of science amongst lay people and arranged for a publication of a Scientific Journal under its auspices in which Indian scientists could publish their original papers on the researches conducted by them, in Hindi language. To make the writing of research papers in Hindi easily possible Dr. Prakash invented Hindi equivalents of good many scientific terms corrently used in English. Later this work of finding suitable terminology of scientific terms was taken up by the Government of India which has established several committees and a separate organisation for the translation of scientific terms in Indian languages, particularly in Hindi, and has published several books on Hindi equivalents of scientific terms used in different branches of science. I am happy to find that Dr. Prakash's contribution in this regard is highly and aptly appreciated by the State and Central Governments, and he is kept honourably associated with the linguistic activities designed for framing scientific terminology in Hindi.

Dr. Satya Prakash is mainly responsible for the foundation and the advancement of the State Council of Scientific and Industrial Research in Uttar Pradesh. Dr. Prakash desired that this organisation should spread advanced scientific knowledge amongst scientific workers in the State, by giving them financial aids, and promote plans for the development of industries and the utilisation of the raw materials available in the State, to make the people of the State prosperous and happy.

Dr. Satya Prakash has now renounced the earthly way of life and is devoting all of his time and attention whole-heartely in creating an awakening in the minds of people for spiritualism to enable them to march along the Godly way and personally see the 'LIGHT WITHIN'. This does not mean that he has given up his interest in the advancement of science in India, and his faith in the usefulness, in the employment of scientific discoveries and scientific principles in their day to day life by Indians. He still continues to be a Fellow of several scientific Associations, attends

scientific meetings, listens keenly to the advanced deliberations of young scientists, visits Universities and centres of advanced scientific research in our country and abroad, and participates in scientific discussions held on subjects in which he had been interested.

My contacts with Swami Satya Prakash are getting closer with the advancement of age (he is seven years younger than me) and has activities in fields in which I do not publicly specialise. I am thankful to him for his graciousness and munificence towards me, and pray for his long life to serve humanity by protecting people from evil deeds, guiding them to the righteous path and leading their spirits towards the right goal and elevating them to the glorious place in Heaven.

डा० ग्रार० एम० सिनहा की लेखनी से श्रद्धा सुमन

Swami Satya Prakash Sarswati

An Appreciation

● R. M. Sinha
1968/7 Wright Town
Jabalpur, M. P.

I came in touch with Swami Satya Prakash Sarswati (Dr. Satya Prakash as then called) in 1938 when I entered his family circle by marriage. Since then our relations have been intimate and very cordial, much more than those existing between even two very close relations.

The human qualities of Swamiji at once mark him out as a man of great charm and affection—one to whom one would feel instinctively drawn. He was a teacher of chemistry in Allahabad University where he rose to be Professor and Head of Department. [I had occasions to see how he used to put the students and others younger to him at their ease so that in time all barriers of age and position between them vanished and they became friends. He and his wife, Smt. Dr. Ratnakumari of revered memory, maintained an open house brimming with welcome and hospitality for whoever came to them and one who once came in contact with them became their lifelong admirer.

Not being a student of science myselt I am unable to speak at first hand about his attainments in the field of chemistry. But the impressive array of books written by him have established his fame as an author of repute. He wrote his books with meticulous care and brought his vast erudition to bear up on them. A couple of them, it is well known, were released with due ceremony by scholars and statesmen familiar with the quality of work.

Swamiji's contribution to the work of Arya Samaj is great and vulua-ble. He has always been greatly in demand to speak to distinguished audiences who looked forward to his learned and erudite discourses. This

activity, it is gratifying to note, Swamiji has kept up on a much wider scale and now since his renunciation of conventional wordly ties, he has been preaching the message of Vedas to large audiences of Indians settled abroad. Hence though Swamiji has his nominal seat at the Allahabad Katra Arya Samaj, it is no more than a temporary perch of a bird flying around and coming to it for a brief rest after long stretches of time. In fact, the stay of Swamiji in Allahabad is something of an event and when he is there he is constantly besieged by admirers who flock around him for words of advise and instruction.

Swamiji is a man of rounded personality. Before the assumption of *Sanyas* he was a model house holder—a dutiful son, a good father, a devoted husband and one ever ready to fulfil his obligations to society. Those who know him at close quarters even now remember his racy jokes and converstaion and other characteristics. His weakness for sweets and good food, his puritanic allergy to cinemas and theatres, his indifference to cold even in the shivering Allahabad winter, his pronounced reformist zeal in social matters which some people might have regarded excessive, if not obsessive are common topics when those close to him talk about good old days.

I hope he will pardon my throwing some light on his wordly connections. The one single formative influence upon him was that of his father, the famous Pandit Ganga Prasad Upadhyaya, a scholar in his own right. When he became a married man the softening influence of his wife entered his life of puritan abstinence. Her death in 1964 was a major tragedy in Swamiji's life. After the event he was never the same again. He began to lose interest in wordly matters and was, as if, awaiting the hour when he would renounce the mundane ties of a householder. So after the death of his mother and father, perhaps he saw the arrival of the time, when he could embark on a new life and against the protests of his sons and other close relatives he renounced wordly ties and was initiated a *Sanyasin* on 10 May 1971. I was present on the occasion. His sons and brothers were all in tears but Swamiji's resolve was unshaken. He left the comfortable house which he and his wife had built with such care and personal attention and has never gone back to it.

The house is now utilised for social work, meetings, lectures etc. which are held there from time to time under the auspices of the institution established to perpetuate the memory of his late wife to whom he was so devoted. Swamiji's elder son Arvind, an Engineer in England, married a

beautiful European wife and has two children. His younger son Anand also an Engineer married a charming girl of Vaishya community and is working with the Tatas.* They have two children. So the reformist ideal of Swamiji has been realised in the life of sons also.

No account of Swamiji's life would be complete without the mention of his devoted Jagdish who grew as a member of the family and remains so to this day, worthy of Swamiji's affection and care. He maintains the house in a proper condition even now. It is he who welcomes visitors to the programmes organised by the Institute and is a willing and ready host to the occasional traveller or guest who might take a temporary shelter in the house.

The life of Swami Satya Prakash has always been one of dedication and service. May God grant him a long life of useful activity,

---

*Shri Anand died of heart failure on 13th Dec., 1976. May his soul rest in peace.

Editor.

रसायन की हिंदी तकनीकी शब्दावली के निर्माण में

डा० सत्य प्रकाश जी का सहयोग

● फूलदेव सहाय वर्मा

जब भारत स्वतन्त्र हुआ और भारतीय लोक सभा ने हिंदी को भारत की राष्ट्र-भाषा होने की स्वीकृति दे दी तब अनेक हिंदी शिक्षकों ने हिंदी में वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकें लिखनी शुरू कीं। अनेक पुस्तकें लिखी गयीं और प्रकाशित हुयीं। इन पुस्तकों का अध्ययन स्कूलों में शुरू हुआ। भारत के शिक्षा मंत्रालय ने देखा कि इन प्रकाशित पुस्तकों की वैज्ञानिक शब्दावली में एकरूपता नहीं है। पुस्तक लेखक अपनी इच्छानुसार वैज्ञानिक शब्दावली प्रयुक्त करने लगे। एक ही अंग्रेजी तकनीकी शब्द के लिए भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न हिंदी तकनीकी शब्दों का प्रयोग करने लगे। इससे छात्रों की कठिनता बहुत बढ़ गयी। विभिन्न स्कूलों के छात्र जब कॉलेजों में पढ़ने आए तो देखा कि जो शब्दावली वे स्कूलों में पढ़े थे वे सबके सब कॉलेजों के अध्यापकों द्वारा प्रयुक्त नहीं होते थे। इस कठिनता को दूर करने के लिए भारत के शिक्षा मंत्रालय ने निश्चय किया कि एक ही अंग्रेजी, फ्रेंच या जर्मन तकनीकी शब्द के लिए हिंदी में एक ही शब्द होना चाहिए, इसके लिए शिक्षा मंत्रालय ने अनेक दक्ष समितियाँ (expert committee) बनाने का निश्चय किया जो विभिन्न विज्ञानों के तकनीकी शब्दों के एक ही हिंदी तकनीकी शब्द निश्चय करें और उसी शब्द का प्रयोग हिंदी लेखक अपनी पुस्तकों में करें। मंत्रालय ने विभिन्न विज्ञान शाखाओं के लिए विभिन्न समितियाँ बनायीं। प्रत्येक दक्ष समिति के संयोजक नियुक्त किए और उनसे समितियों के अन्य सदस्यों के नाम के सिफारिश करने का आदेश दिया।

रसायन विज्ञान के लिए जो दक्ष समिति बनी उसका संयोजक मैं नियुक्त हुआ। मुझसे कहा गया कि अन्य सदस्यों को समिति में लेने के लिए नामों की सिफारिश करें। मैंने सोचा कि इस समिति में कम से कम एक ऐसा सदस्य होना चाहिए जो रसायन का बहुत अच्छा विद्वान होने के साथ-साथ संस्कृत साहित्य, विशेषत: प्राचीन और अर्वाचीन आयुर्वेदिक साहित्य से पूरा परिचित हो। मैं जानता हूँ कि भारत के प्राय: सब ही अध्यापक संस्कृत साहित्य से बिलकुल अनभिज्ञ होते हैं। बंगाल के डा० प्रफुल्ल चंद्र राय (Dr. P.C. Ray) ही एक ऐसे रसायनज्ञ थे जिन्होंने संस्कृत साहित्य का पूरा अध्ययन कर 'हिंदू रसायन का इतिहास' नामक पुस्तक लिख कर प्राचीन भारत के गौरव को सारे संसार में बढ़ाया था। मैंने देखा कि डा० राय के बाद कोई दूसरा भारतीय रसायनज्ञ है जो संस्कृत साहित्य

की पूरी जानकारी रखता है तो वह डा० सत्य प्रकाश जी हैं। अब मैंने सबसे पहले डा० सत्य प्रकाश जी का नाम दिया और लिखा कि उन्हें दक्ष समिति में अवश्य लेना चाहिए। मेरी बात को शिक्षा मंत्रालय ने मान ली और डा० सत्य प्रकाश जी को उसका एक सदस्य नियुक्त किया। अन्य सदस्यों के लिए मैंने कई नामों का सुझाव दिया जिनमें राँची कॉलेज के अध्यापक डा० जदुनन्दन सहाय नियुक्त हुए। अनेक वर्षों तक तीनों हम लोगों ने ही तकनीकी शब्दों के चयन और निर्माण का कार्य शुरू किया। हर दूसरे तीसरे महीने में दक्ष समिति की बैठक दिल्ली में होती थी और प्रायः सब ही बैठक में डा० सत्य प्रकाश सम्मिलित होते थे। पीछे इस समिति में कुछ और नाम भी जोड़े गए।

रसायन के हजारों तकनीकी शब्दों का चयन और निर्माण हम लोगों ने किया। उसमें संस्कृत के साहित्य से पूरा परिचित होने के कारण डा० सत्य प्रकाश से बड़ी सहायता मिली, मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यदि सत्य प्रकाश जी समिति न होते तो कार्य करने में बड़ी कठिनता होती। करीब दस वर्षों तक हम लोग यह कार्य करते रहे जिसके फल-स्वरूप भारत का शिक्षा मंत्रालय 'तकनीकी वैज्ञानिक कोश' प्रकाशित कर सका। रसायन के तकनीकी शब्दों के चयन और निर्माण में डा० सत्य प्रकाश जी का बहुत बड़ा हाथ था।

डा० सत्य प्रकाश जी के संपर्क में मैं कब आया इसका मुझे स्मरण नहीं है पर मेरे नाम से जब वे छात्र थे तभी से परिचित थे। उन्होंने स्वयं कहा था कि जब वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में बैठे थे तब प्रश्न पत्र पर मेरा नाम देखकर तभी से मेरे नाम से परिचित हो गए थे। पीछे तो जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए तबसे घनिष्ठता बढ़ती गयी। जब कभी मैं इलाहाबाद जाता था उन्हीं के साथ ठहरता था और वे भी जब वाराणसी आते थे मेरे साथ ही ठहरते थे। एक समय तो जब मैं पटना गया था तब वे अपनी पूज्यमाता और पत्नी के साथ आकर मेरे घर शक्ति निवास में कई दिन ठहरे थे। उनकी माता बड़ी ही धार्मिक विचार की महिला थीं। आचार-विचार में बड़ी पक्की थीं। हमारी पत्नी, पुत्री और बहुओं ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया था। जहाँ तक मुझे मालूम है वह बहुत संतुष्ट होकर हमारे घर से गयी थीं।

प्रतिभासम्पन्न

• डा० नन्दलाल सिंह
B 30/67, नन्द निवास, नगवा रोड, वाराणसी-5

सर्वप्रथम मैं उन मित्रों को बधाई देता हूँ जिन्होंने डॉ० सत्य प्रकाश जी की सत्तरवीं वर्षगाँठ मनाने का विचार किया और इस पुनीत अवसर पर एक 'अभिनन्दन ग्रन्थ' उपहार के रूप में भेंट करने का संकल्प किया है। गुरु-शिष्य की परम्परा हमारे यहाँ बहुत पुरानी है। माता-पिता के बाद तीसरा स्थान गुरु ही का रहा है किन्तु, आजकल इनकी मान्यताओं में काफी शिथिलता आ गई है विशेषकर गुरुओं की। मेरे विचार से गुरु की मान्यता उसके आचार, व्यवहार, सत्परायणता एवं कर्तव्यनिष्ठा पर निर्भर है। आज जब कि शिष्यों में अपने शिक्षकों के प्रति उतनी श्रद्धा-भक्ति नहीं पायी जाती जितनी कि विद्यार्थियों में परम्परानुसार होनी चाहिए और आज जब कि विद्यार्थी गुरु का मखौल उड़ाने में अपना गौरव समझते हैं, डॉ० सत्य प्रकाश जी के शिष्य उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता और श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये उनकी सत्तरवीं वर्षगांठ मनाने में प्रयत्नशील हैं। यह सत्य प्रकाश जी के व्यक्तित्व और विद्यार्थियों के प्रति उनके स्नेह का द्योतक है। निःसन्देह इन मित्रों के विचार सराहनीय हैं और वे स्वयं नन्दनीय हैं।

सत्य प्रकाश जी का मुझ पर स्नेह रहा उसी के सहारे कुछ टूटे शब्दों में अपने विचार व्यक्त करना अपना धर्म समझ रहा हूँ। प्रथमतः मैं डॉ० सत्य प्रकाश जी की जो अब परिव्राजक स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती नाम धारी हैं इस सत्तरवीं वर्षगाँठ पर उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूँ। ईश्वर ऐसे सत्यनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ, व्यवहारकुशल, आदर्श चरित्र वाले स्वामी जी को शतायु करें, ताकि हम अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के सम्मुख त्याग-तपस्या-अध्यवसाय तथा शिक्षा प्रणेता का एक ज्वलन्त उदाहरण दीर्घकाल तक बना रहे।

मेरी श्रद्धा डा० सत्य प्रकाश के प्रति इस सदी के चौथे दशक में जागृत हुई। मैं भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक सामान्य व्याख्याता और डॉ० सत्य प्रकाश जी, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रख्यात प्राध्यापक थे। रसायन विज्ञान के पंडित, डा० सत्य प्रकाश जी ने तब तक न केवल शैक्षणिक क्षेत्र में

ख्याति प्राप्ति कर ली थी, वरन् आर्य-संस्कृति के पोषण तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी में विज्ञान साहित्य के सृजन में कीर्ति स्थापित कर चुके थे। किन्तु अपनी आन्तरिक संकुचित भावना के कारण उनके सम्पर्क में मुझे आने का अवसर इसके पहले नहीं प्राप्त हो सका था। मेरी इच्छा कुछ पहले से हिन्दी में भौतिकी विषय की पुस्तकों के अनुवाद एवं मौलिक लेखन की उमड़ चुकी थी। इस पुनीत कार्य में मुझे प्रेरणा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अपने प्राध्यापकों से मिलती थी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1930 ई० में महामना मालवीय जी ने हिन्दी प्रकाशन समिति की स्थापना कर दी थी और नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में विभिन्न विषयों के लिये हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावलियों के निर्माण हेतु एक समिति बनायी गयी थी। समिति के सदस्य स्वर्गीय डॉ० कृष्ण कुमार माथुर, प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, प्रो० सुखदेव पाँडे, स्वर्गीय डा० निहालकरण सेठी, डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा आदि प्रायः सभी विज्ञान संकाय के प्रमुख प्राध्यापक ही थे जो सभी हिन्दी के प्रेमी तथा अपने विषय के दिग्गज थे। विद्यार्थी जीवन में ही शब्दों की सूची उतारने का कुछ काम मैंने प्रो० माथुर की देखरेख में किया था। फिर मुझे अपने गुरुदेव डा० सेठी तथा प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा के निकट सम्पर्क में आने पर और उनकी पुस्तकों को पढ़ने से हिन्दी में काम करने की प्रेरणा मिली। बाद में मुझे हिन्दी में लिखने और पढ़ाने के लिये मेरे एक अन्य गुरुदेव प्रो० यू० ए० आसरानी ने प्रोत्साहित किया। डा० सत्य प्रकाश जी की पुस्तकों को देखने का अवसर तब तक मुझे नहीं मिला था, यद्यपि विज्ञान-साहित्य के उत्थान में पुस्तक निर्माण के अतिरिक्त वे अनेक अप्रतिम योगदान दे चुके थे। डा० सत्य प्रकाश जी ने यहीं विज्ञान संकाय में विज्ञान परिषद् की बैठक का आयोजन किया। हिन्दी प्रेमियों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने में स्व० डा० रघुवीर के भाषण बड़े प्रभावकारी होते थे। उग्र राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर विद्वान लेखक विज्ञान के तकनीकी शब्दों का उलथा हिन्दी में करने पर तुले हुए थे। रोमन अंकों के हिन्दी अंक तो थे ही; तत्वों का हिन्दीकरण तथा उनके अन्तर्राष्ट्रीय सांकेतिक अक्षरों के स्थान पर हिन्दी वर्णमाला का उपयोग बेहिचक करने लगे थे। यहाँ तक कि रसायन विज्ञान के समीकरणों को देवनागरी के अक्षरों में व्यक्त करने की परिपाटी भी चल निकली थी। प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा की बी० एससी० की पुस्तक इसी प्रथा के अनुसार लगभग एक तिहाई छप चुकी थी। मैंने डा० सत्य प्रकाश जी का ध्यान समीकरणों की जटिलता एवं गूढ़ता की ओर दबी जबान से आकर्षित करने की चेष्टा की। मैंने कहा "डा० साहब, इन समीकरणों को देखकर मेरी बी० एससी० तक रसायन की पढ़ाई हवा हो रही है। हमें अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति अपनाना चाहिए"। बड़े मीठे शब्दों में सत्य प्रकाश जी ने सान्त्वना दी कि घबड़ाओ नहीं, ऐसा ही होगा। मुझे पता नहीं था कि अन्तर्राष्ट्रीय संकेतों का उपयोग करने की संस्तुति केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली से हो चुकी थी। फिर तो प्रो० फूलदेव वर्मा जी ने स्वयं अपनी रसायन की पुस्तकें अन्तर्राष्ट्रीय

प्रणाली में बदल कर छपवाई। सामान्य सहयोगी के सुझाव पर प्यार के सरस शब्दों में सान्त्वना देना सत्य प्रकाश जी के उदार व्यक्तित्व की महान् झलक रही।

डा० सत्य प्रकाश जी कितने विद्यानुरागी हैं और विद्या के कितने बड़े अध्यवसायी हैं इसका बोध मुझे तब तक नहीं हुआ हुआ था। मैंने उनकी रसायन विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों को देखा और पढ़ा था। उनके मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश के लगभग 1600 पृष्ठों से भी परिचित था। उनके द्वारा स्थापित 'विज्ञान परिषद्' की 'अनुसंधान पत्रिका' से अवगत था। उनके वार्तालाप से और कभी कभी उनके भाषण सुनकर मुझे उनकी राष्ट्रीय भावना का भी अनुमान हो गया था। वे अपनी कार्य संस्कृति के प्रति कितनी निष्ठा रखते हैं इसका भी मुझे कुछ परिज्ञान था; किन्तु वे वैदिक साहित्य के भी पूर्ण ज्ञाता हैं इसकी जानकारी मुझे नहीं थी।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली में निदेशकों की संचालन समिति की बैठक 11 नवम्बर 1968 ई० को आयोजित हुई थी। भौतिकी कक्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निदेशक की हैसियत से मैं भी आमंत्रित था। समय से पूर्व निदेशालय में पहुंचकर मैं तत्कालीन निदेशक के कक्ष में बैठा उन्हीं से बातें कर रहा था तब तक वहीं 'प्राचीन वैज्ञानिक साहित्य अनुसंधान संस्थान' के डाइरेक्टर, पं० रामस्वरूप शर्मा अकस्मात घुस आये। हम लोगों का परिचय हुआ हीं था कि शर्मा जी तुरन्त बाहर निकल गये। मैं चकित हुआ किन्तु क्षण भर बाद डॉ० सत्य प्रकाश द्वारा लिखित एक मोटी पुस्तक लगभग सात सौ पृष्ठ की लाकर मुझे भेंट की। उन्हें आभार प्रकट करते ज्योंही मैंने मुखपृष्ठ देखा और भीतर के 13 अध्यायों का सिंहावलोकन किया मैं स्तब्ध रह गया। अंग्रेजी में लिखित ग्रन्थ "Founders of Sciences in Ancient India" में वेद, उपनिषद की ऋचाओं, मंत्रों का यथास्थान उद्धरण और उनकी व्याख्या देकर सत्य प्रकाश जी ने अपने अनुसंधानों का समर्थन किया है। इन प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन एवं मंथन डा० साहब ने कब और कैसे किया? मेरा माथा घूमने लगा। मुझे समझने में तनिक देर न लगी कि डॉ० साहब संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के भी प्रकांड विद्वान हैं किन्तु इन सबके अध्ययन एवं अभ्यास के लिये कैसे समय निकालते हैं: यह मेरे कयास के बाहर था।

अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में आयोजित हुआ था। हम दोनों के कुछ परिचित मित्रों ने 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र' बम्बई में एक गोष्ठी का कार्यक्रम बना रखा था। हम दोनों आमंत्रित थे। मुझे मुख्य अतिथि के रूप में अपने विचार व्यक्त करने थे। डा० साहब को अध्यक्ष पद सुशोभित करना था। मैं बोलने में, विशेषकर कक्षाओं के बाहर, सदा कच्चा रहा हूँ। अतः कुछ लिखकर ले गया था। संयोग ऐसा आ पड़ा कि पानी-हवा की तबदीली से मुझे खाँसी-सर्दी के साथ कुछ बुखार भी हो गया, मेरा लेख एक मित्र ने पढ़कर सुनाया। उस पर डा० साहब का अध्यक्षीय भाषण ऐसा ललित एवं

पांडित्यपूर्ण हुआ कि मेरे लेख का महत्व बढ़ गया। अपने मीठे शब्दों में मेरी प्रशंसा करते जाते और लेख की कड़ियों को लेकर पूरी शृंखला पिरोते जाते थे। मुझे ऐसा महसूस नहीं होने दिया कि हमारा लेख किसी भी प्रकार से हीन अथवा अपूर्ण है। यही संतों का लक्षण है : "सबहिं मानप्रद आपु अमानी"।

वे हिन्दू विश्वविद्यालय में अनेकों बार परीक्षा लेने आते रहे। उनके स्वभाव से मैं कुछ परिचित हो गया था। अब तक उनके सरल सादे पहनावा, मृदुल हास और मीठी-मीठी बातों से मैं आकृष्ट हो गया था। पता लगा कि डा० सत्य प्रकाश जी आये हैं। डा० सहदेव प्रसाद पाठक के यहाँ आकर टिके हैं। मेरे मन में आया कि सत्य प्रकाश जी से अपने यहाँ जूठन गिराने का अनुरोध करूँ। कुछ सशंकित मन से उनके पास पहुँचा। मैं ज्योंही वहाँ पहुँचा सत्य प्रकाश जी सहज मुद्रा में बोल उठे "कहो भाई नन्दलाल, क्या हाल हैं ? कुछ खिलाते-पिलाते नहीं ?"। उनकी आत्मीयता से मेरी शंका रफूचक्कर हो उठी। मैंने कहा "डाक्टर साहब, मैं तो यही प्रार्थना करने आया हूँ"। "तो फिर क्या बाती है, चलो अभी चलो"। मैंने सोचा था कि शाम को ऐसे अतिथि के लिये कुछ विशेष सामग्र तैयार कराऊँगा। मेरी खामोशी देखकर समझ गये कि कोई उचित तैयारी नहीं है। बोले-मधुकरी में कोई विशेषता नहीं होती। जो तैयार हो वही प्रिय होता है। फिर मैं तो पूड़ी मिठाई खाता नही। रोटी सब्जी-दही खाता हूँ।" साहस बढ़ा। समीप ही मेरा निवास स्थान था। बड़े प्रेम से हँसते और चुटकुले छोड़ते घर पर पहुंचे। सामान्य रूप से भोजन परसा गया। सत्य प्रकाश जी चाव से खाने लगे। प्रत्येक व्यजंन की तारीफ करते जाते "वाह, कैसी नरम रोटियाँ हैं, बडी मीठी हैं। कुछ मोटी होतीं तो अति उत्तम होता। तुम्हारी पत्नी ने तरकारी ऐसी बनायी है जैसे कि उन्हें मेरे स्वाद का पूरः पता हो"। उनके मीठे शब्दों में सराहना सुनकर मुझे विशेष आन्तरिक सुख एवं प्रसन्नता का अनुभव हुआ। मैंने गद्‌गद स्वर में कहा "शाक विदुर घर खाये"। ऐसे गुण महामानव में उदार चरित्र वालों में ही पाये जाते हैं।

"मधुकरी" की नयी व्याख्या मुझे उन्होने बम्बई में उसी अखिल भारतीय विज्ञान कांग्रेस में ही सुनाई। अधिवेशन में प्रायः सभी कार्यक्रम सुनियोजित ढंग से होते हैं किन्तु जब सांयकाल के जलपान का समय आता है तो सारे वैज्ञानिकों का ध्यान वितरित निमंत्रण कार्ड पर रहता है। समय से कुछ पूर्व ही लोग निश्चित स्थान की ओर चल पड़ते हैं और समय होते स्थान-स्थान पर एकत्र की हुई सामग्रियों पर इस प्रकार झपटते हैं जैसे कौवे अपने अभीष्ट खाद्यान्न पर टूटते तथा कौवारोर करते हैं। ऐसा ही दृश्य सायंकाल पांच बजे उस अधिवेशन में भी एक दिन हुआ। ढीला ढाला व्यक्ति मैं एक साथी के साथ दो मिनट बाद पहुंचा। स्थान अधिवेशन पंडाल से कुछ दूर बाहर था। सामग्री सुसज्जित सभी छोलदारियाँ वैज्ञानिकों के आपसी धक्कम-धुक्के को सम्हाल रही थीं किन्तु कहाँ तक सम्हालें। सामने की छोलदारी गिर पड़ी। मिठाई नमकीन सम्हालते चाय के प्याले कई सदस्यों के सूट पर उलट पड़े। मैं निहत्था लौटा तो देखा डा० सत्य प्रकाश जी दो प्लेट लिये सानन्द बैठे हैं, एक प्लेट की मिठाई

उड़ा रहे हैं और कई शिष्य मिठाई की प्लेट लिये उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, एक खाली हो तो दूसरी दी जाय । शिष्यों में होड़ थी किसके हाथ से गुरू को चढ़ावा पड़े । नजर मुझ पर पड़ी, 'कहो भाई नन्दलाल, तुम यों ही टहल रहे हो ? आओ एक प्लेट लो ।' आदेशानुसार एक शिष्य ने कुछ हिचकते मुझे एक प्लेट दिया । वह मुझे पहचानता नहीं था । मैंने थोड़ी धृष्टता की, औपचारिकता तो मुझे आती नहीं । प्लेट लिया किन्तु धन्यवाद तो किसी को दिया ही नहीं । पूछ बैठा "डा० साहब आप तो मिठाई खाते नहीं । क्या इसी को मधुकरी कहते हैं ?" सौम्यमूर्ति सत्य प्रकाश जी हँस पड़े । तुम्हें 'मधुकरी' का अर्थ भी नहीं मालूम । देखो ! मैंने कोई प्रयास तो किया नहीं, मित्र लोग जो कुछ लाकर दे रहे हैं खा रहा हूं । यदि कोई विषैला लड्डू भी डाल दे तो मैं खा लूंगा । अनायास जो कुछ खाद्यान्न समय पर मिल जाय उसे ही मधुकरी कहते हैं । मिठाई न खाऊं तो क्या इन बर्फियों तथा लड्डुओं का अनादर करूं । तुम निरा भोलेनाथ रह गये । लोग हंस पड़े । मैंने कहा "डाक्टर साहब आप तो त्रिकालदर्शी हैं । आपको मेरा यह पुराना नाम भी मालूम हो गया, लड़कपन में मेरा यही नाम था" । हँसे, 'मैं यंत्र मंत्र तंत्र सब जानता हूं ।'

डा० सत्य प्रकाश जी का ऐसा ही स्वाभाविक रूप मुझे सदा देखने में आया । स्वयं चिर प्रसन्न रहना और दूसरों को प्रसन्न रखना 'सदा सुप्रसन्नम' ।

शुद्ध स्वदेशी वस्त्र, सिर पर स्वच्छ टोपी, शुद्ध आहार, और शुद्ध हृदय । सत्य प्रकाश जी की विशेषतायें गोस्वामी तुलसीदास की अर्धाली

सूधो मन, सूधो वचन, सूधो सब करतूति

की तरह सदा भीतर, बाहर से चरितार्थ करती रही हैं । अब तो आर्य संस्कृति के अनुकूल चौथेपन में रँगीले गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी हो गये हैं और हमारे लिये एक आदर्श कायम कर दिया है । उनका सम्पूर्ण जीवन ही अनुकरणीय है । भगवान से भूयोभूयः प्रार्थना है कि उन्हें दीर्घायु, सुखी और स्वस्थ रखें ।

सत्य प्रकाश
से
डा० सत्य प्रकाश

● डॉ० बलभद्र प्रसाद
पटना (बिहार)

1930 के लगभग शोध-कार्य में बहुत कम लोग रत रहते थे। रसायनशास्त्र में शोध-कार्य प्राय: कलकत्ता और इलाहाबाद में हुआ करता था। मैं रसायन शास्त्र की पत्रिकाओं को देखा करता था। कुछ समझता था, कुछ नहीं समझता था। सत्य प्रकाश और एन० आर० धर के लेख द्वारा मुझे सत्य प्रकाश से पहले-पहल परिचय हुआ। पीछे सत्य प्रकाश जी को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय सत्य प्रकाश जी डा० सत्यप्रकाश हो चुके थे।

इतने सीधे सादे होंगे मैं नहीं समझता था। धोती और कुरता पहनते थे उस जमाने में जब डी० एस-सी० बहुत कम होते थे और जो होते थे सो ठाट से रहते थे।

1961 में मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय का वाइसचांसलर हुआ। जितनी उनसे जान-पहचान बढ़ती गयी उतनी ही उनके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी। मैं इलाहाबाद में था उसी समय उनके लड़के की शादी विदेश में हुई। डॉ० सत्य प्रकाश और उनकी पत्नी दोनों ही मनुष्यमात्र को एक जाति समझने वालों में से थे इसलिये दोनों में किसी को दुःख नहीं हुआ। डॉ० सत्य प्रकाश के दूसरे लड़के का विवाह अन्तरजातीय विवाह हुआ। जब मैं इलाहाबाद में था उसी समय उनकी पत्नी का देहान्त हुआ। जिस धैर्य के साथ डॉ० सत्य प्रकाश ने इस दुःख को बर्दाश्त किया वह सराहनीय था। मेरी पत्नी के देहान्त के बाद जब भी मुझे दुःख होता था तो डॉ० सत्य प्रकाश का धीरज मुझे याद आ जाता था।

देश-प्रेम भी डॉ० सत्य प्रकाश में कूट-कूट कर भरा है। विद्वता की तो कोई बात ही कहना व्यर्थ है। अच्छे शिक्षक और अच्छे शोध-कार्य करने वाले हैं। डॉ० सत्य प्रकाश बहुत नेक देशभक्त, विद्वान्, सरल पुरुष हैं। इतने गुण बहुत कम लोगों में एकसाथ मिलते हैं। अब तो उन्होंने सन्यास धारण कर लिया है। मुझे सन्यासी स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती के साथ रहने का अवसर नहीं मिला है इसलिये मैं सन्यासी होने के बाद के समय की कुछ चर्चा नहीं करता।

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती सत्तर वर्ष के हुए। भगवान उन्हें और भी दीर्घायु बनावे जिससे वे समाज की सेवा कर सकें।

• 'हमार दादा' •

डा० वा० वि० भागवत
8A वासुदेव नगर, इन्दौर

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती का मेरा प्रथम परिचय जब मैं 1928 मे एम० एस-सी० उत्तरार्ध में था तब हुआ। उसी समय से कल तक मैंने एकही खद्दरधारी वेष में उन्हें देखा। उस समय वे कट्टर देशभक्त थे और समयानुसार कांग्रेस समर्थक रहे। ऐसा दिखता था कि वे आचार्य पी० सी० रे के मार्ग पर चल रहे हैं। मैं भी भावना प्रधान होने के कारण डॉ० सत्य प्रकाश की ओर आकर्षित हुआ। वह जमाना राष्ट्रभक्ति का था। इसीलिये नवयुवक राष्ट्र के लिये कुछ भी करने के लिये प्रेरित थे। श्री मुकर्जी जो भगतसिंह प्रकरण में पकड़ा गया वह हमारा वर्ग बंधु था।

श्री सत्य प्रकाश जी शास्त्रीय विषय हिन्दी में या मातृभाषा में पढ़ाने के समर्थक थे। उनके सान्निध्य से मैं भी प्रभावित हुआ और मैंने मराठी में यह कार्य उनकी प्रेरणा से ही चालू किया। उन्होंने मुझे हिंदी में भी कार्य करने को प्रेरित किया। परिणाम-स्वरूप 'प्रकाश रसायन' पर हिंदी पुस्तक विज्ञान परिषद् द्वारा प्रसिद्ध हुई। उनकी प्रेरणा से ही मैं अभी भी हिन्दी में कार्य करता हूँ। उस समय यदि जनता हमारा साथ देती तो आज हिन्दीकरण की जो समस्याएँ भिन्न प्रांतों में खड़ी हुई हैं, पैदा न होतीं। जनता हर एक कार्य रु०-आने में नापती है। उस समय हिन्दीकरण के पीछे कोई स्वार्थ न था। अब स्वार्थ के कारण कई व्यक्ति हिन्दीकरण में आगे आए हैं। व्यक्तिगत महत्व उसके पीछे होने से यह महत्व का कार्य असफल हो रहा है, खासकर अन्य भाषिक प्रान्तों में। यदि डॉ० सत्य प्रकाश सरीखे निःस्वार्थी लोग आज आगे आयें तो उन्हें भी अन्य प्रान्तों में सफलता तथा सम्मान मिलेगा।

जब 'नमक सत्याग्रह' 1931 में चालू हुआ, तो सरकार ने जनता द्वारा बनाया हुआ नमक खाने लायक नहीं है, ऐसा कहकर जनता में संदेह उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने इस नमक का पृथक्करण इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के रसायन विभाग से करवाया। उस समय डॉ० नीलरत्न धर विभागाध्यक्ष थे। यह पृथक्करण डॉ० सत्य प्रकाश जी करते थे और उन्होंने यह बतलाया कि जनता द्वारा बनाया हुआ नमक रोज के काम के लिये उपयोगी है। इतना सरकार का विरोध होते हुए भी ऐसे कार्य विश्वविद्यालय में उस समय चलते थे। श्री चन्द्रशेखर आजाद की पुलिस

से जो लड़ाई म्योर कॉलेज के सामने के आजाद पार्क में हुई उस समय मैं वहाँ उपस्थित था। दस बजे का समय था। मैंने विभाग में आते ही यह बात सबसे कही क्योंकि सामने क्या हुआ यह बात अभी तक फैली नहीं थी। श्री चन्द्रशेखर आजाद मारा गया यह सुनते ही 'दादा' (डॉ० सत्य प्रकाश) रो पड़े।

डॉ० सत्य प्रकाश का सबसे अत्यन्त स्नेह था और हम उन्हें 'दादा' कहकर संबोधित करते थे। कुछ भी समस्या होती तो हम दादा से ही पूछते थे। मुझे याद है कि जब डॉ० आत्माराम, जो आगे चलकर ग्लास रिचर्स के अध्यक्ष बने, और शास्त्रीय अनुसंधान आयोग के भी अध्यक्ष रहे और जो पद्मश्री से भूषित हुए वे जब प्रथम कलकत्ता में अनुसंधान संस्था में नियुक्त हुए तो वे दादा से ही अपनी समस्याओं का हल पूछते थे। डॉ० सत्य प्रकाश की सहृदयता के कारण ही वे सबके केवल प्रिय नहीं आदरणीय भी रहे।

दादा केवल शास्त्रज्ञ ही नहीं है वे साहित्यिक भी हैं। उन्होने कविताएँ भी की हैं। उन्होंने मुझसे मराठी के कवि सम्राट श्री भास्कर राव तांबे की रचनाएँ ली थीं और उस पर अपने विचार प्रकट किये थे। आर्य समाजी होने के कारण वेद, उपनिषदों से पहिले से ही परिचित थे और उसी समय से वे प्रवचन भी करते थे। उनकी आज के उत्तरायुष्य के कार्य की नींव शैक्षणिक काल में ही पड़ी थी।

दादा सहृदय हैं, लेकिन वे उतने नरम नहीं दिखते हैं। प्रसंग पर वे कठोर भी हो सकते हैं। कर्तव्यनिष्ठा यह उनकी विशेषता है। हम एक साथ एक जगह एम० एससी० के परीक्षक थे। वहाँ का रसायनाध्यक्ष दादा का और मेरा घनिष्ठ मित्र था। लेकिन अंक देने के समय उन्होंने रसायनाध्यक्ष की सुनी नहीं। जो योग्य था वही किया।

मुझे दुःख है कि दादा से मैं कुछ सीख न सका। वे सुबह चार बजे उठकर लिखना शुरू करते थे। आज का उनका दिखने वाला कार्य अविश्रांत श्रम का परिणाम है। यदि मैं उनके मार्ग पर कुछ अंश में चलता तो भी काफी आगे बढ़ता। दादा में उनके साथियों से कुछ अधिक बुद्धिमत्ता थी ऐसा नहीं। किन्तु अविश्रांत श्रम के कारण वे सभी से सभी दृष्टि में कई गुना आगे निकल गये हैं। सभी के लिये उनकी जीवन प्रणाली आदर्श है।

निष्ठा और आत्मविश्वास, उनके दो गुण हैं जिनसे वे आयुष्य में सफल हुए हैं। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' यह भगवान का वचन उन्होंने शिरोधार्य किया है। वे अपने सन्याश्रम के कार्य में सफल होंगे यह कहने की आवश्यकता नहीं है। यह कार्य पूरा करने के लिये दीर्घायुष्य की प्रार्थना करता हूँ।

स्वामीजी : मेरे प्रेरणा-स्रोत

मुकुल चंद पांडेय

53, छोटा चाँदगंज, लखनऊ-126007
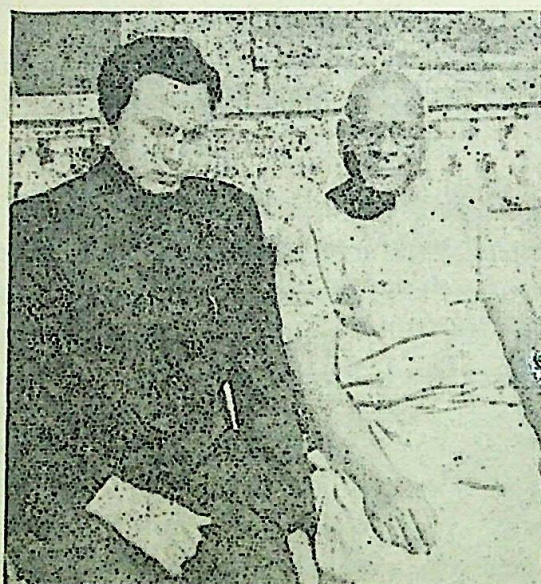
स्वामी जी के साथ श्री मुकुलचन्द पाण्डेय

जन्म : जुलाई 1945

स्थान : वलिया के ग्राम लखौलिया

शिक्षा : वनस्पति विज्ञान में एम. एस-सी, एम. ए. भी

शिक्षण : अधुना शिया कालेज लखनऊ में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक

लेखन : अनेक स्फुट लेख; उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी से पुस्तकें प्रकाशित

विशेष : आर्य समाज से संबंध, सामाजिक कार्यकर्ता, पूर्वोत्तर रेलवे की राज भाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य।

मनुष्य के जीवन में कोई न कोई ऐसी घटना घटित हो जाती है, जो समूचे जीवन दर्शन को ही बदल डालती है। ऐसा ही कुछ मेरे साथ भी हुआ। आप शायद विश्वास नहीं मानेंगे।

बात बहुत पहले की है। मैं इंटर विज्ञान का छात्र था बांदा जिले के एक मशहूर कस्बे अतर्रा के हिंदू इंटरमीडिएट कालेज में। मेरी उम्र यही कोई 16-17 वर्ष की होगी। मैं दरअसल राजकीय इंटर कालेज, बांदा से उस कालेज में आया था, अपने पूर्ववर्ती छात्रों से मेरा कोई परिचय न था। उस कालेज का एक छात्र सूबेदार सिंह प्रयाग विश्वविद्यालय में बी० एससी० (प्रथम वर्ष) में पढ़ता था। वह छुट्टियों में अतर्रा आया था और छात्रावास के एक कमरे में किसी व्यवहार कुशल, स्वभाव के उदार तथा धोती-कुर्ता व टोपी वेशभूषा वाले प्राध्यापक की चर्चा कर रहा था। वह सारे विद्यार्थियों को मंत्रमुग्ध हुए था। उन श्रोताओं में मैं भी एक था और मैंने रसायन-विज्ञान विभाग के इस अनदेखे किये शिक्षक के प्रति श्रद्धानत होकर उनके छात्र होने का मन-ही-मन संकल्प कर लिया। मनुष्य की इच्छाएं कभी-कभार पूरी होती ही चली जाती हैं। मेरा दाखिला मेरे घर वाले गोरखपुर विश्वविद्यालय में करा रहे थे क्योंकि वह मेरे बलिया जिले स्थित गांव के अति निकट था, बनारस भी करीब था, किंतु मैं अड़ गया कि मेरा अध्ययनक्रम प्रयाग में ही चालू रहेगा। यह मात्र डॉ० सत्य प्रकाश का छात्र होने का लोभ न संवरण कर पाने के कारण ही था।

सदाचार व शालीनता की प्रतिमूर्ति

खादी का लिबास एक जमाने में नेतागिरी का पर्याय बन गया था, किंतु स्वदेशी भावना व सदाचार की चरम सीमा पर पहुँच कर मानवता की सेवा का व्रत लेने वाले गांधीवादी खद्दरपोशों की भी कमी नहीं है। डॉ० सत्य प्रकाश जी उन्हीं राष्ट्रप्रेमियों में से एक रहे। वे स्वतंत्रता संग्राम में जेल गए, विदेशी वस्त्रों का परित्याग किया तो जीवन पर्यन्त स्वदेशी वस्त्र धारण करने का व्रत ही ले लिया। स्वयं ही चरखा कातकर उससे प्राप्त सूत से बुने वस्त्र का ही अपने तन ढकने में इस्तेमाल करना अपने में एक स्वदेश प्रेम का पक्का सबूत है। उन्हें किसी को दिखलाना नहीं था कि मैं कांग्रेसी या शुद्ध अहिंसावादी होने के नाते ही खादी पहनता हूँ, अपितु उनकी राष्ट्रीयता की भावना अंतःकरण से उद्भूत थी। वे जहां एक अच्छे शिक्षक, विद्वान, रसायन-शास्त्री व सहृदय पुरुष रहे हैं वहीं पर शालीनता का एक जीवंत उदाहरण भी। उनकी इस सदाशयता से ही प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग में ही नहीं, अपितु सारे विज्ञान संकाय में स्वदेशी, भारतीयता व राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति एक अटूट स्नेह उमड़ पड़ा। उनकी हिंदी माध्यम से अध्यापन की रुचिकर शैली से भौतिक रसायन (फिजिकल केमेस्ट्री) जैसे गूढ़ विषय को भी छात्रों को हृदयंगम कराने में सफलता प्राप्त कर लेना बांऐं हाथ का खेल था। छात्रगण सप्ताह में एक-दो दिन जब उनके पढ़ाने की बारी आती थी उसका बेसब्री से इंतजार करत रहते थे।

कभी-कभी ऐसे रोचक उदाहरणों व उपमानों से विषयवस्तु को समझाने की चेष्टा करते थे कि वे चीजें जीवन पर्यंत दिलो-दिमाग से उतरतीं ही नहीं, बातें इतनी सुमधुर तथा सौम्य शैली में करते कि हर विद्यार्थी नतमस्तक होकर उसे अंगीकार कर लेता। यह वस्तुत: सफल शिक्षक के लक्षण हैं। नीरस, गूढ़ तथा समझ के परे फार्मूलों को भी ऐसी जादूई शैली में समझाते कि वे बातें कक्षा में ही नहीं परीक्षा भवन में भी गुदगुदी पैदा कर ज्यों की त्यों याद रह जातीं। ये विशेषताएं प्रायः दुर्लभ ही हैं।

सत्कार का अनूठापन

स्थूलकाय शरीर व निरंतर मुस्कराता चेहरा बरबस ही विज्ञान ही नहीं आर्ट्स, कामर्स व अन्य छात्रों को उनकी ओर आकर्षित करने में सफलता पाते। सबसे रोचक तो होली के दिनों मे ढेरों पकवान से भरे 'होली मिलन' के कार्यक्रम होते थे। गले मिलने में शरीर की स्थूलता से एक विचित्र आनंद का अनुभव होता था तो भर पेट खाए बगैर वे किसी को अपने यहां से जाने ही नहीं देते। उनकी संगति सुयोग्य सहधर्मिणी स्व० डा० रत्न कुमारी जी भी देतीं और आर्य जगत के लब्धप्रतिष्ठित विद्वान स्व० पं० गंगाप्रसाद 'उपाध्याय' जी (आपके पूज्य पिताजी) भी अतिथियों को अतिशय स्नेहसिक्त करने में पीछे नहीं रहते।

यही नहीं आमतौर पर मुलाकात करने के लिए आए हुए मेहमानों की भी खातिर में कोई कोर कसर नहीं छूटती। यही बात डिपार्टमेंट में भी लागू थी। मेहमान बिना "काफी पिये" छुटकारा नहीं पाते। ऐसी विभूतियाँ इक्की दुक्की ही देखने को मिलीं जिनमें सही माने में महर्षि दयानंद द्वारा विहित "व्यवहार भानु" के व्यावहारिक गुण इतनी बहुलता में पाये जाते हों।

हिंदी में विज्ञान लेखन के अग्रणी

स्वदेशी भावना से ओत-प्रोत जहाँ एक ओर विदेशी रहन-सहन, रीति-रिवाज और पोशाक का परित्याग किया वहीं पर स्वामीजी ने राष्ट्र की भावात्मक एकता का सशक्त स्रोत हिंदी को स्वीकार कर हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर जुट गए। न केवल समाचार पत्रों में लेख व छिट-पुट सामग्री ही तैयार की वरन् उच्चस्तरीय वैज्ञानिक ग्रंथ भी हिंदी में लिखे। जिस जमाने में अंग्रेजियत का बोलबाला था उस समय डॉ० सत्यप्रकाश जी विज्ञान परिषद् के मंच से हिंदी माध्यम से शिक्षण की ओर तन्मयता से जुटे थे। विज्ञान परिषद् के कर्णधारों में स्वामीजी का स्मरणीय स्थान है जिन्होंने उसे गति प्रदान की। 'विज्ञान' व "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" जैसी उत्कृष्ट वैज्ञानिक पत्रिकाओं ने वैज्ञानिक पत्रकारिता के क्षेत्र में तहलका मचा दिया। उसी से प्रेरित होकर प्रयाग ही नहीं बल्कि अन्य अनेक विश्वविद्यालयों के विज्ञान शिक्षकों ने हिंदी में शिक्षण तथा वैज्ञानिक साहित्य का नियमित लेखन आरंभ किया। आज वह परंपरा उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

हिंदी में लेखन के दौरान सबसे विशेष बात यह रही कि लेखन दुरूह नहीं होने पाया और जगह-जगह पर व्यावहारिक पक्ष को उजागर करते हुए सरल, सुबोध भाषा में ही साहित्य लिखा गया। यद्यपि संस्कृत का आधार यथेष्ठ मात्रा में लिया गया किंतु देशज शब्दों को भी इस्तेमाल में लाने की ओर प्रवृत्त रहे। आज का प्रबुद्ध वैज्ञानिक पत्रकार स्वामीजी के आदेशों व निर्देशनों से लाभ उठाकर न केवल अपनी जिज्ञासा शांत कर रहा है बल्कि हिंदी में विज्ञान साहित्य को भरपूर बनाने में प्राणपण से जुटा हुआ है।

चाहे कोई भी क्षेत्र हो स्वामीजी ने केवल व्यवहार पक्ष को ही देखा; कोई सैद्धान्तिक बातों पर उन्होंने विश्वास नहीं किया। वे स्वयं विज्ञान के अध्येता रहे; शिक्षक रहे, विचारक रहे अतः अपनी कथनी-करनी में कभी भेदभाव नहीं आने दिया। यही कारण है कि हिंदी समिति, हिंदुस्तानी अकादमी, प्रदेश तथा केंद्रीय वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद के तत्वावधान में गठित समितियों में अपनी सही भूमिका अदा की और हिंदी तथा विज्ञान—दोनों ही को समान रूप से उपकृत किया।

आर्य सन्यासी के रूप में निरंतर सेवा

पिछले कुछ वर्ष पहले जब स्वामीजी ने सन्यास लिया तो ऐसा अनुमान रहा कि कदाचित् वे केवल धार्मिक कार्यों में ही जुटे रहेंगे किंतु हुआ इसका उल्टा। वे वैज्ञानिक व धार्मिक दोनों कार्यों को एकसाथ समायोजित करते हुए इस खूबी के साथ दोनों की समान सेवा कर रहे हैं जो अपने में एक अपूर्व मिसाल है। आर्य समाज की स्थापना का महर्षि दयानंद ने जिन मूलभूत सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक पहलुओं पर सुधार का बीड़ा उठाया था उसे पूरा करने का आजीवन व्रत लेकर स्वामी सत्यप्रकाश जी ने एक कीर्तमान स्थापित किया है।

वसुधैवी व्योम का एक विस्पन्दी विहंग

• कृष्ण कुमार गुप्त
केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो
नई दिल्ली

अपनी बिसात और एक दायरे रहते, जब-जब मैंने अपने भीतर की, बाहर की, आसपास की दुनिया को दयानतदारी से देखने की कोशिश की है, तब-तब गलत और सही मैं जिस एक ही नतीजे पर पहुंच पाया हूँ, वह यह है कि हमारी दुनिया के अधिकांश लोगों की जिन्दगी के वैचारिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष, नदी के उन दो किनारों की तरह हैं, जो आपस में कभी मिलना नहीं जानते। लूट-खसोट कर, छीन-झपट कर, तोड़-जोड़ करके या परिस्थिति अथवा व्यवस्थावश जिसने कोई कुर्सी हथिया ली है या कुछ पैसे बटोर लिये हैं, वह हमारे समाज का 'बड़ा आदमी' है। मैं अपने चारों ओर इन बड़े आदमियों की बेशुमार भीड़ के बीच अपने को दबा-दबा सा, भिचा-भिचा सा, उखड़ा-उखड़ा सा महसूस करता हूँ और सच कहूँ, अपने चारों ओर के उस परिवेश के बीच, जिसमें मुझे जीना है, मरना है, कभी-कभी मैं इतना अजनबी और एकाकी बन जाता हूं, कि गहरे खामोश सन्नाटे की एक दहशत मुझ पर सवार हो जाती है। आप चाहें तो इसे मेरी दृष्टि का दोष, मन का विकार या जाती कमजोरी कह सकते हैं, मुझे कोई उज्र अथवा ऐतराज नहीं। मेरा खयाल है, मुझ जैसे किसी औसत इंसान के निर्माण में इन चीजों का कम-ओ-वेश हाथ जरूर है।

ऊपर की बात मैंने इस लेख की भूमिका बाँधने के लिए नहीं, उस पृष्ठभूमि और नजरिए को सामने रखने के लिये कही है, जिसके जरिये मैं अपनी जिन्दगी और उसके दायरे में आने वाले व्यक्तियों को देखने के लिए मजबूर हूं। स्वामी सत्य प्रकाश जी भी इसके अपवाद नहीं थे। उनसे मेरा पहला साक्षात्कार आज से पन्द्रह-सोलह वर्ष पूर्व उस समय हुआ, जब वे केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा गठित रसायन शब्दावली

विशेषज्ञ समिति के एक सदस्य थे और मैं विश्वविद्यालय से शिक्षा पूरी कर एक शब्दावली कार्यकर्त्ता की हैसियत से दिल्ली पहुंचा था। जहां तक मुझे याद है, उनकी जिन दो-तीन बातों से मैं उस समय उनकी ओर आकृष्ट हुआ, उनमें उनका सादा पहनावा, विज्ञान और भाषा पर उनका समान अधिकार और बैठकों के दौरान बीच-बीच में मीठी चुटकी लेने की उनकी आदत को गिनाया जा सकता है। वे विज्ञान के स्थापित विख्यात लेखक थे और मैं उन दिनों विज्ञान लेखन में धीरे-धीरे प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा था, सो हो सकता है, कुछ सीखने-जानने का लोभ और स्वार्थ भी मन की किसी गहरी तह में छिपा रहा हो। इनके अलावा और भी जो कोई वजह रही हो, बहरहाल मैंने उन्हें बड़े लोगों की उस भीड़ से अलग पाया, जिससे मुझे दहशत होती रही है, और जिसके बीच में अपने आपको एकाकी अनुभव करता रहा हूं।

एक रोज की बात है। नई दिल्ली के वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के मुख्यालय के सभाकक्ष में विज्ञान लेखकों की कोई मीटिंग थी। ठीक समय और अवसर आज याद नहीं है। मीटिंग के बाद किसी युवा विज्ञान लेखक ने सत्य प्रकाश जी से पूछा—विज्ञान में आज क्या और कैसा लिखा जाना चाहिये ? सत्य प्रकाश जी का तपाक से उत्त था—'जो छपे और जिससे पैसा मिले।' हम उपस्थित लोगों को लगा कि यह उत्तर व्यंग्य या मजाक में दिया गया है, सही उत्तर अभी वे देंगे। पर नहीं जनाब ! वही उनका सही उत्तर था और वही आखिरी भी। कोई उपदेश देने, आदर्श बखानने या आसमान में उड़ान भरने जैसी बात शायद वे कहना पसन्द नहीं करते। बाद के अनुभव ने सिद्ध कर दिया कि उनका वह कथन शत-प्रति-शत खरा था।

ऐसी ही और एक घटना इस समय मेरे जहन में उभर आई है। विशेषज्ञ समिति की एक बैठक में एक बड़े सरकारी अफसर पधारे और उन्होंने विशेषज्ञों को सम्बोधित करते हुए कहा—'अब समय आ गया है कि विज्ञान की शैक्षणिक पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद-कार्य गंभीरता से हाथ में लिया जाए, क्योंकि जितनी न्यूनतम वैज्ञानिक शब्दावली की इसके लिए जरूरत होगी, मैं समझता हूं, उतनी अब तक तैयार हो चुकी है। हमें अनुवाद में यह खयाल रखना है कि यह सरल हो कि हमारे शिक्षक और विद्यार्थी इसे कुबूल कर सकें ··· ऐसा हो ··· ऐसा हो ····। भाषण 'चाहिये यों' से लबालब भरा था। जब यह उपदेश समाप्त हुआ तो सभी लोग खामोश रहे मगर एक कोने से सत्य प्रकाश की आवाज ने अचानक उस खामोशी को झकझोर कर रख दिया—"महाशय, जिस आदर्श अनुवाद की बात कही है, मैं चाहूंगा कि उसका एक पृष्ठ आप हमें करके दिखा दें, बाकी पूरी पुस्तक का अनुवाद मैं अकेला करके आपको दे दूंगा।" क्या इससे ज्यादा किसी और माकूल जबाब की उम्मीद किसी से की जा सकती है।

स्वामी सत्य प्रकाश जी का चिन्तन, उनका नजरिया और काम करने का तरीका, शायद जिन्दगी के साथ साथ इसी जमीन से उपजे हैं, वे जब आसमान को छूने के लिए उछलते भी हैं, तो जमीन को छोड़ना पसंद नहीं करते, उनकी हर बात से यह सच्चाई

जाहिर हो जाती है। जब वे योरोप का अपना पहला दौरा करके स्वदेश लौटे थे हममें से किसी ने पूछा—कैसा अनुभव रहा ? "मैं तो वहाँ बुढ़ापे में गया था, पश्चिम को जीना हो तो वहाँ जवानी में जाना चाहिये।" इस संक्षिप्त उत्तर के अतिरिक्त, धुंआधार तारीफ या हाथ धोकर वहां की खामियां गिनाने की न उन्होंने कोई जरूरत ही समझी और न ही किया भी।

मीठी चुटकी लेने में उन्हें खासी महारत हासिल है। एक बार किसी विदेशी ने उनसे पूछा—आपने 'साइंस' के लिये हिन्दी शब्द 'विज्ञान' कैसे चुना। सत्य प्रकाश जी ने उनसे कहा—हमारे लिए तो वेद वर्णित ज्ञान ही बस ज्ञान है, उनके बाहर बाकी तो अज्ञान ही है। 'वि—' माने 'विहीन' के हैं, 'विज्ञान' यानी ज्ञान विहीन। पर वास्तविकता यह है कि 'वि—' उपसर्ग 'विशेष' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और 'विज्ञान' में उसका प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। 'विज्ञान' यानी 'विशेष ज्ञान'।

यह सच है कि वे मानवता के पक्षधर हैं, परन्तु राष्ट्रवादिता के भी वे कम हामी नहीं। एक बार प्रसिद्ध भारतीय रसायनज्ञ स्वर्गीय डा० पी० सी० रे ने अपने आपको किसी लेख में एक 'बंगाली रसायनज्ञ' की संज्ञा दी तो डा० सत्य प्रकाश को यह बात सहन न हो सकी, उन्होंने लिखा कि हम तो उन्हें अब तक 'भारतीय रसायनज्ञ' समझते रहे हैं, मगर अब मालूम हुआ कि वे मात्र 'बंगाली रसायनज्ञ' हैं। बाद में अपनी इस स्पष्टोक्ति के लिये उन्हें डा० रे का कोप भाजन भी बनना पड़ा, परन्तु उन्हें इसका तनिक भी दुःख नहीं रहा।

सच्चाई को लाग-लपेट की जरूरत यों होती भी नहीं है। एक बार शिमला में शब्दावली संगोष्ठी के सिलसिले में उनके साथ पूरे एक महीने रहने का मौका मिला। उसी दौरान एक रोज पिकनिक के लिए 'खाने' का प्रोगाम बना। पैदल चल कर एक काफी बड़ा दल रास्ते भर गप्पें लड़ाते, हंसी मजाक करते वहां पहुँचा। लोग थक गए थे, अतः आराम के लिए बैठ गए, बाद में जलपान का प्रबन्ध भी था। परन्तु सत्य प्रकाश जी दो क्षण खड़े रहे और फिर लौटने के लिए तैयार हो गए। उनसे बैठने के लिए कहा तो बोले— बैठने में मेरा कोई यकीन नहीं है। चलते रहना और थक जाने पर विश्राम करना मुझे पसंद है। और 'चलते रहना' में उनका यकीन आज भी वैसे का वैसा बना हुआ है। सन्यास वेश धारण कर लेने पर भी उसमें कोई अन्तर नहीं आ पाया है। 'चलते रहना' ही शायद उनकी जिंदगी और उनका जीवन दर्शन है।

उनकी विद्वत्ता और उपलब्धियों को न मैंने कभी आँका है, न उतनी औकात ही मुझमें है। मैंने तो सदैव उन्हें उस मस्त विहंग की तरह देखा है, जिसका व्योम नीचे की वसुधा से बंधा है और जिसकी हर उड़ान में एक ऐसा विस्पन्दन है, मानव मन के स्पन्दन को छू जाता है, उसपर छा जाता है। जब जब मुझे उनके सम्पर्क में आने का अवसर मिला है, स्पंदन के इस स्फुरण को मैंने अनुभव किया है।

वैज्ञानिक संन्यासी स्वामी सत्यप्रकाशानन्द सरस्वती

श्री बेंकटलाल ओझा,
मंत्री, हिन्दी समाचारपत्र संग्रहालय,
कसारट्टा रोड, हैदराबाद

अब तक आर्य सन्यासी वेदों के विद्वान् आदि ही देखे गए हैं। वैज्ञानिक होकर सन्यासी होने वाले तो प्रथम डॉ० सत्य प्रकाश ही हैं। इनके पिता स्व० गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्य-समाज, चौक, प्रयाग के वर्षों मंत्री रहे और छोटे-छोटे और सस्ते ट्रैक्ट छाप कर इस समाज को देश-विदेश में प्रसिद्ध कर दिया। तब एक व दो पैसे वाले ट्रैक्ट थे। उनका प्रचार भी लाखों की संख्या में हुआ। इस तरह सत्य प्रकाश जी भले ही वैज्ञानिक बन गये, पर बालपन से जो आर्य संस्कार उनके हृदय में अंकुरित हो गये थे वे बुढ़ापे में फिर जोर से उमड़ पड़े और उनके अन्तर्मन ने उन्हें सन्यास आश्रम में दीक्षित होने के लिए विवश कर दिया। जबकि अक्सर यह देखा जाता है कि अधिकांश सन्यासी इसलिए बनते हैं कि :—

मूंड मुडाया तीन गुण, मिटे टाट की खाज।
बाबा बाज्या जगत में, मिले पेट भर नाज।।

पर ऐसी कोई समस्या सत्य प्रकाश जी के सम्मुख नहीं थी। फिर भी शास्त्रानुसार चौथा आश्रम उन्होंने इसलिए ग्रहण किया कि आर्य-समाज को उनकी आवश्यकता है और वे अपने अनुभवों से उसकी सांगोपांग सेवा कर सकते हैं।

मेरा उनका परिचय तो अक्तूबर 1934 से ही है जब मेरे पूज्य पिता जी स्व० आत्मारामजी ओझा ने हिन्दी के एकमात्र वैज्ञानिक मासिक 'विज्ञान' के ग्राहक

बन उसे मंगाना चालू किया। तव उसके प्रधान संपादक प्रो० रामदास गौड़ थे और उसके संपादक मंडल में सत्य प्रकाश जी रसायन विज्ञान के संपादक। मैंने सबसे पहले उनकी लेखमाला विज्ञान का स्वर्णमय सदुपयोग, घरेलू धंधे, भांति-भांति की रोशनाइयाँ अर्थात् स्याहियां बनाने पर थी, पढ़ीं बाद में तो इनके कई लेख नियमित मुझे पढ़ने का अवसर मिलता रहा। जहाँ तक मैं जानता हूँ सत्य प्रकाश जी 'विज्ञान' के संपादक मंडल में 1927 से 1937 तक रहे और गौड़ जी के स्वर्गवास के बाद नवंबर 1937 से उसके प्रधान संपादक बने। तब डॉ० गोरख प्रसाद जी की और इन दोनों की जोड़ी 'विज्ञान' के संपादन में लगी हुयी थी। वह 'विज्ञान' का स्वर्णमय युग कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। 'विज्ञान' और 'विज्ञान परिषद्' की रजत जयंती दिसम्बर 1938 में मनाई गई और रजत जयंती अंक फरवरी 1939 में प्रकाशित हुआ जिसके प्रधान संपादक तो सत्य प्रकाश जी थे ही, पर उस अंक के विशेष संपादक प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव थे। फिर भी उस विशेषांक में उन्होंने परिषद् का इतिहास, सूर्य-सिद्धांत के वैज्ञानिक भाष्यकार श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव की जीवनी और लगभग एक शताब्दी में हिन्दी में प्रकाशित साहित्य पर खोजपूर्ण निबंध लिखा जो आज भी हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की आधारशिला है। उसके बिना हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य को लिखा नहीं जा सकता।

वे केवल 'विज्ञान' के संपादक ही नहीं रहे कई महत्वपूर्ण ग्रंथ भी लिखे। जैसे:

1. वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली,
2. वैज्ञानिक परिमाण, डॉ० निहालकरण सेठी के साथ,
3. कार्बनिक रसायन,
4. साधारण रसायन,
5. सृष्टि कथा आदि आदि।

इनके अतिरिक्त असंख्य लेख 'विज्ञान' के पृष्ठों में छपे पड़े हैं, जिनको पुस्तकाकार छपाया जा सकता है। जो भी इन्होंने लिखा वह स्थायी साहित्य की चीज है।

बाद में मैं परिषद् का 'लाइफ फेलो' (आजन्म), उसकी अन्तरंग सभा का वर्षों सदस्य रहा। उस नाते मुझे आपके सम्पर्क में आने का अधिक अवसर मिला। आतिथ्य भी इनका ग्रहण किया। साथ ही इनके साथ समाचार-पत्र शब्दकोश में काम करने का अवसर भी मिला। मैंने गुजराती और मराठी शब्दों का काम किया। इसके दो संस्करण हो चुके हैं। पहला संवत् 2000 में और दूसरा संवत् 2003 में। इसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रकाशित किया। इसके पीछे मूल विचारधारा यह थी कि उर्दू को छोड़ कर शेष सभी आर्य-भाषाओं के समाचार पत्रों में अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों का एक ही रूप यथासंभव छपे। इसके लिए शब्दकोशों से कम किन्तु दैनिक पत्रों में छपे शब्दों का संकलन किया गया। वह दूसरे महायुद्ध का जमाना था। अतः युद्ध सम्बन्धी शब्द चयन किये गये। इस कोश में समाचारपत्र विषयक निम्नलिखित विषयों का समावेश किया गया :

1. साधारण विज्ञापन, 2. सिनेमा और रेडियो विज्ञापन, 3. देशी विदेशी समाचार, 4. ऋतु आलोचना, 5. खेलों और मंचों के संवाद, 6. कचहरी के साधारण समाचार 7. बाजार और व्यापार, 8. धारासभाओं के भाषण और उनकी राजनीतिक और आर्थिक योजनायें, 9. सार्वजनिक सभाओं और संस्थाओं के संवाद, 10. साधारण वक्तृताओं और भाषाओं के प्रयुक्त शब्द, 11. युद्ध संबंधी वर्तमान शब्दावली, 12. भारतीय राजनीति आन्दोलन के शब्द।

इस कोश में केवल हिन्दी, गुजराती, बंगाली और मराठी समाचार पत्रों से ही पहले संस्करण में 2130 शब्द लिए गये और दूसरे में 2600 शब्द थे। खेद है कि यह कार्य फिर ठप्प हो गया अन्यथा स्वतंत्र भारत में समाचार-पत्रों में एक से शब्द प्रचलित हो जाते।

इसके अतिरिक्त सन्यासी होने के बाद भी इन्होंने 'भारतीय सम्पदा' नाम से अंग्रेजी संदर्भ ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद कराया है जो भारत सरकार ने कई खंडों में प्रकाशित किया है। इस तरह इनका सम्बन्ध आज भी अपने मूल वैज्ञानिक साहित्य से बना हुआ है। ये विज्ञान् परिषद् के सबसे पुराने जीवित सदस्यों में हैं और उसकी निरंतर सेवा कर रहे हैं। सन्यासी होने पर भी परम्परागत आतिथ्य सत्कार में कोई कसर नहीं रखते। मुझे इसका अनुभव अप्रैल 1973 को हो चुका है जबकि मेरे साथ कल्याण मंदिर और चंडी कार्यालय कटरा को ढूंढते हुये लगभग दो घंटे तक पैदल ही फिरे, जबकि मैं इन्हें बार बार मना कर रहा था।

आज भी आर्य-समाज के मंचों पर जब वे भाषण देने खड़े होते हैं तो लोग मंत्रमुग्ध से भाषण सुनने में तल्लीन हो जाते हैं। वैज्ञानिक होते हुये भी वैदिक संस्कृति और धर्म पर खूब जम कर बोलते हैं, क्योंकि लोगों में आम धारणा यह है कि वैज्ञानिक नास्तिक होते हैं ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। हैदराबाद में मैंने देखा कि कई अंग्रेजी पत्रकार बंधु वैज्ञानिक आर्य सन्यासी क्या कहता है उसकी क्या मान्यता है यह सुनने को वे बड़े चाव से आते हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि स्वामी जी हिन्दी समाचारपत्र संग्रहालय में पधार कर अपना आशीर्वाद प्रदान कर चुके हैं।

इस सत्तरवीं वर्षगांठ पर उनका अभिनन्दन करते हुए ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उन्हें दीर्घायु और आरोग्य रखें जिससे हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य और आर्यजगत् को उनके अनुभवों का लाभ मिल सके।

क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे

● विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री
उपाचार्य रसायन, विक्रम वि०वि०, उज्जैन
एवं मानद महासचिव, भारतीय विज्ञानीय इतिहास
एवं दर्शन परिषद्

(डॉ०) सत्य प्रकाश सरस्वती संस्कृत के उक्त सुभाषित के मूर्त्तिमान विग्रह कहे जा सकते हैं।

आचार्य सत्यप्रकाश से मेरा प्रथम संपर्क अप्रत्यक्ष था जो कि उनके द्वारा बी० एससी० कक्षाओं हेतु लिखित अकार्बनिक रसायन की पाठ्य पुस्तक के माध्यम से हुआ था। नाइट्रोजन सम्बंधी अध्याय में एक भारतीय आचार्य श्री नीलरत्न धर के सिद्धान्त का उल्लेख एवं ग्रन्थान्त में परमाणुवाद पर वैशेषिक दर्शन एवं कणाद का संदर्भ देते हुए संक्षिप्त विवरण मुझे रुचिकर लगे तथा आचार्य सत्यप्रकाश के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न हुआ। ग्रीष्मावकाश में (1957-58) मैंने आचार्य राय, दासगुप्ता तथा सांख्य एवं वैशेषिक के मूलग्रन्थों का स्वांतःसुखाय अध्ययन किया। मेरा सौभाग्य कहिये, या अंतः-करण के प्रबल आकर्षण की सफलता, कि, आचार्य सत्यप्रकाश ही एम० एससी० पूर्वार्द्ध में प्रायोगिक रसायन के परीक्षक बनकर सन् 1957 में इन्दौर आये। आचार्य सत्यप्रकाश से मैंने आचार्य भागवत की उपस्थिति में संस्कृत में वार्तालाप किया।

आचार्य सत्य प्रकाश इससे प्रसन्न हुए।

चर्चा के अवसर पर रावण-मन्दोदरी संवाद के रूप में उपलब्ध ग्रंथ 'अर्क प्रकाश' का संदर्भ आया।

ज्ञान पिपासु आचार्य सत्यप्रकाश ने "अर्क प्रकाश" देखने की इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन पुस्तक ले जाने पर अर्क प्रकाश में आये 'फिरंग' शब्द के प्रयोग के आधार पर उसे उन्होंने पर्याप्त परवर्ती निरूपित किया।

ग्रीष्मावकाश में अपनी पृष्ठभूमि एवं रुचियों का विस्तृत विवरण देते हुए एक लम्बा पत्र उन्हें लिखा। उसका जो प्रोत्साहनात्मक उत्तर प्राप्त हुआ उसे यहां यथावत् देना उचित होगा।

प्रिय शास्त्रीजी,

पत्र पढ़ कर प्रसन्नता हुई। आपकी योग्यता के संबंध में संशय का प्रश्न ही नहीं है। ऐसी प्रतिभा के युवक कम ही मिलेंगे। हमें अवश्य आपसे लाभ उठाना है। आप अपना समस्त विवरण डा० रामप्रसाद त्रिपाठी अध्यक्ष, हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ को भेज दें। जब वे मुझसे परामर्श करेंगे, तो मैं आपके लिये प्रयत्न करूंगा।

सत्यप्रकाश
11/Cबेली एवेन्यू
प्रयाग,

मुझ जैसे एम० एससी० उत्तरार्द्ध के छात्र-मात्र को भारत विख्यात विश्वविद्यालयीय आचार्य का पत्र प्राप्त कर बड़ा गौरव का अनुभव हुआ एवं उमङ्ग में आकर अग्रिम कुछ मासों में कई लेख लिख डाले।

इन्हीं दिनों आचार्य सत्यप्रकाश के 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' हेतु लेखों के प्रेषण संबंधी परिपत्र के आधार पर आचार्य कवीश्वर एवं आचार्य देश पाण्डे के कथनानुसार मैंने एक तीस पृष्ठीय लम्बा शोधात्मक लेख 'परमाणुवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि' लिखा, जिसे स्वयं डॉ देशपाण्डे, इलाहाबाद ले गये। यह लेख परिमार्जनोपरान्त, विज्ञान के जनवरी 1959 अंक मे प्रकाशित हुआ। इस संबंध में विज्ञान परिषद के तत्कालीन मंत्री एवं जोधपुर विश्वविद्यालय के वर्तमान वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष, आचार्य र० च० कपूर के 24-11-58 के पत्र के अंश उल्लेखनीय हैं।

प्रिय महोदय,

आपका डॉ० सत्य प्रकाश को भेजा हुआ 14 नवंबर, 1958 का पत्र मिला। धन्यवाद। हिन्दी के नवीन लेखकों को प्रकाश में लाना और उन्हें अच्छे वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के लिये प्रोत्साहित करना तो हमारा कर्तव्य है। .... आपने शीर्षक अच्छा चुना है। पूर्वार्द्ध का शीर्षक हम "परमाणुवाद की दार्शनिक पृष्ठ भूमि" ही रखेंगे।

विज्ञान के अगले अंकों के लिये लेख भेजते रहें।

भवदीय
र० च० कपूर

9

इस लेख के प्रकाशन से मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला। फिर तो आचार्य सत्य प्रकाश एवं आदरणीय डॉ० शिवगोपाल मिश्र के सहयोग से विज्ञान में मेरे कई लेख प्रकाशित हुए जिनसे आत्मविश्वास बढ़ा। मेरे मन में राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा तथा इसके माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की आकांक्षा, विज्ञान के इतिहास एवं विज्ञान के दर्शन में अभिरुचि के मूल में मुख्यतः हिन्दी विश्व भारती के अंक तथा आचार्य सत्य-प्रकाश एवं आचार्य गोरख प्रसाद की कृतियां रहे हैं।

'विज्ञान', 'विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका' 'होल्कर महाविद्यालय पत्रिका' 'कादम्बिनी' 'भारती' आदि में प्रकाशनों के फलस्वरूप मुझे म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा 'पृष्ठ-रसायन' नामक स्नातकोत्तर एवं उच्चतर स्तरीय मौलिक ग्रन्थ के लेखन का सुअवसर प्राप्त हो सका।

1964 में आचार्य सत्य प्रकाश पुनः परीक्षा लेने हेतु, होल्कर महाविद्यालय आये, आचार्य सत्य प्रकाश को लेने हम स्टेशन गये थे। घर आकर कुछ ही क्षणों में तय्यार होकर वे पैदल ही तेजी से हमारे साथ घूमने निकले एवं लगभग तीन किलो-मीटर दूर, अभियांत्रिकी महाविद्यालय के छात्रावास में अपने पुत्र के साले से स्नेहपूर्वक चर्चाएं कीं। राह पर ज्ञान-चर्चा होती रही। शब्दों की उत्पत्ति, इतिहास, मर्म एवं उनके पर्यायों में भी आचार्य सत्यप्रकाश की महती अभिरुचि है।

इसके पूर्व आचार्य सत्यप्रकाश एवं आचार्य तिवारी 1962 में भी परीक्षार्थ आये थे एवं प्राचार्य भवन में ठहरे थे। वे मेरे साथ घर पधारे एवं फिर इन्दौर के बड़े गणपति के भी दर्शनार्थ गये। ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थलों के प्रेक्षण एवं तत्संबंधी चर्चा भी आचार्य जी के प्रिय विषय हैं। जब भी वे इन्दौर आए, कस्तूरबा ग्राम भी अवश्य गये। उनकी अभिरुचि ग्राम-सेवा, आर्य समाज, सर्वोदय, स्वदेशी आदि में भी अत्यधिक है।

इन्हीं अवसरों पर मैंने प्रश्न किया था कि आप इतना कैसे लिख लेते हैं? मुझे तो बहुत कांट-छाँट करनी पड़ती है। उकताहट आ जाती है। आचार्य जी ने बताया—नियमितता, सप्रवाह बिना कांट-छांट के स्पष्ट मस्तिष्क से लेखन, बहुधा, सीधे ही टंकण। उन्होंने तुलसीकृत रामायण का रोचक एवं उद्बोधक संदर्भ दिया एवं कहा "शंकर चाप जहाज............ बूड़ा सकल समाज' जैसे ही तुलसीदास ने लिखा, अटक गये। राम विवाह प्रकरण में अपशकुनात्मक वाक्य कैसे? तब तुलसी ने पंक्ति न काटते हुए अगली पंक्ति संवार दी "चढ़ा जो प्रथमहि मोह बस"। इससे मुझे अपनी स्वयं की कांट-छांट की प्रकृति के परिष्करण में सहयोग मिला। इसी अवसर पर आचार्य जी ने 'अमरकोष' एवं मोनियर विलियम्स के शब्द कोष के उन्मुक्त प्रयोग की सलाह दी। मैंने अमरकोष के विविध नूतन संस्करण एवं विलियम्स के शब्द कोष क्रय किये एवं इस अनुभवी लेखक के मार्ग दर्शन से पर्याप्त लाभान्वित हुआ।

संभवतः 1966 के अन्त में, डॉ० जीवाराम की पी० एचडी० उपाधि की मौखिक परीक्षा हेतु भी आचार्य सत्यप्रकाश आये थे। तब आचार्य जटराजी का (पूना) के व्याख्यान की समीक्षा एवं समापन की उनकी श्रेष्ठ कला का मैंने प्रेक्षण किया। उनकी स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता की शक्तियों का सभी उपस्थितों ने अनुभव किया।

आचार्य सत्यप्रकाश प्रकृति के प्रेमी रहे हैं, तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सम्बोधक। इस संबंध में मैंने उनका एक लेख भी पढ़ा था। आचार्य सत्य प्रकाश ने मेरे यहाँ सायंकालीन भोजन में उबली शाक, कंद-मूल, फल एवं चपातियाँ ही पसंद कीं। यह उनकी सात्विक आहार की रुचि एवं अच्छे स्वास्थ्य का कारण बतलाता है।

आचार्य सत्यप्रकाश विनोदी किस्म के हैं तथा उनका हास्य एवं व्यंग उच्चकोटि का होता है।

आचार्य सत्यप्रकाश से मेरा अग्रिम सम्पर्क, बंगलौर में विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर हुआ। इन दिनों मैं श्रद्धेय कुलपति श्री सुमन जी, श्रद्धेय आचार्य हरस्वरूप एवं तत्कालीन उपाचार्य श्री बोकाडिया के एवं अन्य आचार्यों के सहयोग से विघ्न संतोषियों के प्रयासों के होते हुए भी अखिल भारतीय हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य एवं सामग्री प्रदर्शनी की व्यवस्था में संलग्न था। बंगलौर विज्ञान परिषद की बैठक में मैं पहुँचा। अध्यक्ष आचार्य मिश्र (वाराणसी) के साथ आचार्य सत्यप्रकाश बैठे थे। संदेश पहुंचाने पर उन्होंने तुरंत बोलने का अवसर दिया। उपस्थित विद्वत समुदाय में मैं प्रदर्शनी संबंधी प्रपत्र वितरित कर सका एवं बोल सका। डॉ० सत्यप्रकाश एवं डॉ० संतप्रसाद टंडन की प्रेरणा से, प्रदर्शनी में विज्ञान परिषद इलाहाबाद ने भी भाग लिया एवं प्रदर्शनी की सफलता एवं सौष्ठव में वृद्धि की।

इसके पश्चात् मार्च मास में (1970) नेशनल ऐकेडमी ऑफ साइंसेज, इलाहाबाद का चालीसवां अधिवेशन, उज्जैन में सम्पन्न हुआ। आचार्य सत्यप्रकाश, श्रेद्धय आचार्य टंडन (अकादमी के महासचिव) के साथ पधारे थे। आचार्य सत्यप्रकाश मेरे साथ बाह्य परीक्षक भी थे। उन्हें मुद्रा विज्ञान पर व्याख्यान भी देना था। इसी अवसर पर आयोजित "अखिल भारतीय हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य एवं सामग्री प्रदर्शनी' का उद्घाटन आचार्य कोठारी जी की उपस्थिति में आचार्य घर ने किया तथा इसे देखने आचार्य सत्य प्रकाश तथा आचार्य टंडन भी पधारे। उनके स्वयं के कई ग्रन्थ इस प्रदर्शनी में थे। दोनों ने इस अभिनव बौद्धिक प्रयास की सराहना की। दिल्ली के श्री कृष्ण गोपाल एवं आचार्य श्रवण कुमार तिवारी का भी इसमें उल्लेखनीय सहयोग रहा।

जब बाह्य परीक्षक के रूप में आये तो आचार्य सत्यप्रकाश ने छात्रों से उनके स्तर के अनुरूप उत्कृष्ट प्रश्न किये। छात्र भयभीत अनुभव नहीं कर रहे थे। उन दिनों आचार्य जी के पैर में पीड़ा थी। एक पात्र में उष्णजल में पैर रखकर वे बैठ गये थे एवं इसी अवसर

पर सांख्य एवं वैशेषिक दर्शनों की उन्होंने उत्कृष्ट तुलनात्मक समीक्षा की एवं मेरी कुछ समस्याओं का समाधान भी किया।

इसके पश्चात् आचार्य सत्यप्रकाश को मैंने सन्यासी वेश में मदुराई विश्वविद्यालय में 1974 के दिसंबर में देखा। वहां आचार्य नीलकण्ठन के नेतृत्व में आयोजित कान्वेन्शन ऑफ केमिस्ट्स में वे पधारे थे एवं दक्षिण की सांस्कृतिक परम्पराओं से संसिक्त भव्य सभामंच पर समारोह में वे अग्रिम पंक्ति में बैठे थे। मैं उनके पास बैठा था। उनसे मैंने "प्रस्तावित भारतीय विज्ञानीय इतिहास एवं दर्शन परिषद' हेतु आशीर्वाद, संरक्षण एवं प्रोत्साहन हेतु निवेदन किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया एवं पूर्ण सहयोग का अभिवचन दिया। सन्यासी होने के नाते वे अधिक सहयोग तो नहीं कर सकते थे। इसी अवसर पर आचार्य सत्य प्रकाश को मैंने औद्योगिक रसायन पर आयोजित संगोष्ठी को आद्योपान्त, एकाग्रतापूर्वक सुनते देखा। हल्की ठंड थी एवं आचार्य सत्य प्रकाश एक वस्त्र (गेरुए) में थे।

मदुराई मे भेंट होने के एक सप्ताह पश्चात् ही पुनः दिल्ली में सत्य प्रकाश के दर्शन हुए। वे विज्ञान कांग्रेस में उद्घाटन समारोह में सम्मिलित होने पधारे थे। कड़ाके की ठंड, वही एक वस्त्र (गेरुआ)।

विज्ञानीय इतिहास के क्षेत्र मे आचार्य सत्यप्रकाश का अवदान असाधारण एव अद्वितीय है। प्राचीन भारत में रसायन का विकास, Founders of Science in Ancient India, तथा बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के तत्वावधान में प्रकाशित उनके विविध ग्रन्थ अविस्मरणीय रहेंगे एवं आने वाली पीढ़ियों के अजस्र प्रेरणा स्रोत रहेंगे। विज्ञानीय दर्शन के क्षेत्र में भी उनके शोध पत्र एवं भारतीय विज्ञानीय दर्शन संबंधी उनका साहित्य अपने आप में विशिष्ट है।

भारत की तकनीकी शब्दावली के निर्माण में उनका सहयोग, रसायन के परिभाषिक शब्दों संबंधी उनकी पुस्तिका, उनके संस्मरणात्मक लेख, प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी लेख, यंत्रों के वैज्ञानिक विश्लेषण से संबंधित ग्रन्थ, दृष्टव्य हैं। विज्ञान परिषद् के प्रकाशनों में, विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका के सूत्र धारत्व में सत्यप्रकाश के ओजस्वी प्रकाश का ही सर्वाधिक योगदान रहा है। रसायन शास्त्र के क्षेत्र में सभी कक्षाओं एवं स्तरों हेतु हिन्दी एवं अंग्रेजी में सृजित उनका पाठ्यग्रंथात्मक साहित्य तो सर्वविदित है ही। आचार्य सत्य प्रकाश इस दृष्टि से भारत के ग्लास्टन कहे जा सकते हैं।

ऐसे विद्वान सहृदय, परिश्रमी, दूरदर्शी, श्रेष्ठ लेखक, शिक्षक, वक्ता, सम्पादक, प्रकृति एवं प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी, नियमित, विनोदी, हिन्दी अंग्रेजी एवं संस्कृत साहित्य के जानकार एवं रसिक, वेद, पुराण, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्ति, गणित, प्रशासन एवं व्यवस्था के दक्ष, समाज-सुधारक, स्मरण शक्ति के धनी, श्रद्धा-भक्ति, करुणा एवं त्याग जैसे उदात्त गुणों से समन्वित इस सन्यासी, आदर्श आचार्य एवं महामना के चरणों में मेरा शत शत प्रणाम।

सन्यास का प्रथम दिन

जगदीश प्रसाद मिश्र
डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान,
इलाहाबाद

'हम अपनी समस्त बुराइयों को अपने साथ लेकर के ही सन्यास के अलौकिक क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं।' ये शब्द थे रसायन शास्त्र के एक मूर्धन्य वैज्ञानिक एवम् हिन्दी के उन्नायक स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती (डॉ० सत्य प्रकाश) जी के जिन्होंने इसे 10 मई 1971 ई० मंगलवार की परम पावन वेला में, अपने समस्त लौकिक सुखों का परित्याग कर, विज्ञान परिषद इलाहाबाद के प्रांगण में कहे थे। इसके बाद आप सिद्धार्थ की तरह सत्य की खोज के लिये अग्रसर हुये थे।

स्वामी जी अपने बाल्यकाल से ही ईश निर्मित सृष्टि के प्रत्येक पहलू पर गम्भीरता से मनन करते थे। वैभवपूर्ण वातावरण में रहकर के भी वे विरक्त थे। रात्रि में आकाश के असंख्य तारों के दर्शन और इस क्षणभंगुर जगत की अस्थिरता के रहस्य ने ही उन्हें सन्यास धारण करने के लिये विवश कर दिया।

मैं उनके सम्पर्क में 1954 ई० से ही आया। उनके नित्यप्रति के हृदयग्राही संस्मरणों का वर्णन यदि मैं करूँ तो एक आदर्श ग्रन्थ सहज ही तैयार हो सकता है। स्वामी जी पहले भी अपनी सौभाग्यशीला पत्नी जी (जिनके अपार हृदय सिन्धु में हमारे प्रति एक आदर्श माँ की ममता की लहरें हिलोरें मारती थीं। मैं उन्हें माँ जी कहा करता था) से कहा करते थे कि 'जब मैं विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करूँगा तो सन्यास धारण कर लूंगा। उस समय क्या तुम भी मेरा अनुसरण करोगी ?" माँ जी उनकी बातों को हंस कर टाल देती थीं। कभी-कभी गम्भीर होकर कहतीं कि "मैं बेटों के साथ रहूंगी, आप जाइयेगा सन्यास धारण करने"। स्वामी जी एक मन्द मुस्कान के साथ विचार-सिन्धु में विलीन हो जाते। माँ जी उन्हें ऐसा देख कर किसी अन्य आवश्यक कार्यों को स्मरण कराती हुयीं उनकी विचार श्रृंखला को तोड़ देतीं। परन्तु माँ जी यह पवित्र दिन देखने के पहले ही इस संसार से विदा हो गयीं।

स्वामी जी को भारतीय संस्कृति से अपार प्रेम है। वे चारों वेद व सम्पूर्ण हिन्दू धर्म ग्रन्थों के राजा हैं। साथ ही उनकी अभिरुचि अन्य धर्मों में भी रही है।

जैसा कि गीता, रामायण व अन्य महान ग्रन्थों ने बताया है कि कर्म करना ही प्रत्येक जीव का अधिकार है और कर्म के अनुसार ही उसे फल प्राप्त होता है। प्रत्येक जीव की आत्मा कर्मानुसार ही दूसरा शरीर धारण करती है। उस आत्मा के साथ उसके पूर्वजन्मों की कर्म-गन्ध होती है। वह गन्ध ही उसे लौकिक व पारलौकिक सभी सुखों को अनुभूति करने का सुअवसर प्रदान करती है।

अपने बाल्यकाल से ही स्वामी जी के हृदय में सन्यास धारण करने की प्रबल आकांक्षा थी तभी तो विराग तथा ईश्वर प्रेम से प्रेरित होकर आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा ने समय समय पर कुछ भावपूर्ण गीत गाये थे। उनकी ये कविताएं 'ग्रहलक्ष्मी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं।

मन क्यों तू इठलाता

भ्रमता फिरता जगत जाल में, इधर उधर क्यों जाता
यह तो देख अरे अज्ञानी, कैसा जग का नाता
कब हरि का गुणगान करेगा, तू यह क्यों न बताता
प्रकृति रूप पंकज के भौंरे, कैसी बात बताता
कभी समीप न उनके जाता, प्रभु का यदि रस पाता
स्नेहमयी जो सुखदा, वरदा जग की पोषक माता
मूर्ख नहीं क्यों जननी के गुण, सायं प्रातः गाता
शर सम माया चाप से निकल, प्रभु को लक्ष्य बनाता
तो वह प्रेममयी गोदी में, निश्चय 'सत्य' बिठाता

तुझसा कौन चतुर चितेरा

डाल डाल पर डाला कैसा तूने अपना डेरा
कुबलय पर क्या रंग चढ़ाया, लख मोहित मन मेरा
पुष्पों की सुन्दर कलियों पर रंग रंगीला फेरा
प्रात: काल प्रभाती में है, दृश्य अनोखा तेरा
कैसा रंग गगन को देता, होता जभी सवेरा
केकी सुक के कलित परों में, तू ही करे बसेरा
कैसा रंगता तारों को तू आता देख अंधेरा
तेरी दिव्य दीप्ति से जग यह, पाता हर्ष घनेरा
रंग दे चित्त भक्ति से यदि तू 'सत्य' तभी हो चेरा

गृह त्याग के दिन नगर के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने उनके निवास स्थान पर आकर, उनके त्याग-उत्सव में भाग लिया। सभी के नेत्र अश्रुपूरित थे। उस दृश्य को देखकर लोग पारब्रम्ह परमेश्वर की असीम महिमा का गुणगान कर रहे थे: सहसा स्वामी जी ने मुझे बुलाकर कहा 'जगदीश ! तुम मुझे एक प्याला काफी पिलवाओ। यह काफी हमारी यहाँ की अन्तिम काफी होगी। मैंने शीघ्रातिशीघ्र काफी तैयार कराई और स्वामी जी ने काफी के साथ दो टोस्ट खाकर तथा एक हल्की सी दृष्टि सम्पूर्ण गृह पर डालकर सदा के लिये उसकी ओर से मुंह फेर लिया।

विज्ञान परिषद् भवन के प्रांगण में ही आपके बालों का प्रच्छालन हुआ। उस समय प्रत्येक दर्शक उन्हें कौतूहलपूर्ण तथा सजल नेत्रों से देख रहा था। मैं भी पास ही मन्त्र-मुग्ध-सा खड़ा अपने भाग्य विधाता की ओर टकटकी लगाये देख रहा था। स्वामी जी के नेत्रों में, जो ममता के आँसू विद्यमान थे वे बाहर नहीं निकल रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि स्वामी जी ने माया पर अपने त्याग रूपी अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया था जिस अस्त्र के प्रयोग से विजयश्री उनके चरणों को चूम रही थी और माया विफल होकर छटपटा रही थी। उस समय स्वामी जी के चेहरे पर आत्म-विश्वास तथा कर्तव्यपरायणता का प्रखर आलोक दीप्तिमान था।

बालों के प्रच्छालन के बाद आपने अपने सम्पूर्ण वस्त्रों को त्याग कर अन्य लोगों के दिये हुये वस्त्रों को धारण किया। दीक्षा के समय आपके गुरू के साथ डॉ० बाबूराम सक्सेना (आपके दीक्षा में आचार्य रहे) भी विद्यमान थे। उसके बाद सभी लोगों ने आपको विदाई दी।

स्वामी जी के इस सफल निश्चय से मैं प्रसन्न तथा दुखी दोनों था। मेरे मन में अनन्त सागर की लहरों की तरह अनेक कल्पनाएं एक-एक कर के आती-जाती थीं। मुझे हर्ष तो इस बात का था कि स्वामी जी अपने बाल्यकाल से ही निश्चित कार्यक्रमों के द्वारा, ईश्वर के साक्षात्कार के लिये अग्रसर हो रहे थे। उनके उस सत्यमार्ग में अवरोधक बनने वाला, उनका हितैषी नहीं वरन् स्वार्थी कहलायेगा और दुःख इस बात का कि स्वामीजी के साथ मै लगभग बीस वर्षों तक रहा। उनकी प्रेरणा तथा सहयोग ने ही मुझे मनोबल प्रदान किया है। ऐसी दशा में सबके लिये ही उनके प्रेम से वंचित होना मुझे क्यों न खलता।

पारिवारिक संस्मरण

श्री प्रकाश

११३/८२ स्वरूप नगर, कानपुर-२

अपने अग्रज के विषय में लिखना कठिन होता ही है, और फिर यदि अग्रज पोषक भी रहा हो तो कुछ भी लिखना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। आज जो कुछ भी हूँ, उनके कारण ही हूं। उन्होंने तो मेरे विषय में एक ऊंची उड़ान उड़ी थी। उन्होंने तो जो स्वप्न देखा था, उस स्वप्न के अनुसार न बन सका——— यह तो मेरा स्वयं का दुर्भाग्य था, और इस दुर्भाग्य का दोष स्वयं ही वहन करता हूं———पर जितनी भी सीढ़ियाँ पार कर सका हूं, इसका श्रेय, शत प्रति शत उन्हीं को है। अत: उनके सन्यास लेने पर रोया था, फूट फूट कर रोया था—मैं अपने भाई साहब को नहीं खो रहा था, मैं तो खो रहा था अपने पालक को, अपने निर्माता को, अपने संरक्षक को। 16 वर्ष की आयु में उनके पास रहने आया था, 23 वर्ष की आयु तक उनके पास पला—'पला' शब्द का प्रयोग जान बूझ कर कर रहा हूं—कितना दुलार मिला था, किसी बात की चिन्ता नहीं थी, सब कुछ मिल जाता था वहाँ। मुझे एक भी घटना याद नहीं जबकि उन्होंने मुझ पर त्यौरी चढ़ाई हो या भाभी ने कुछ कहा हो। यह नहीं कि मुझसे गलतियाँ न हुई होगीं—पर नहीं वे तो मुझे पाल रहे थे, पालने वाले को तो केवल दुलार ही देना था। "मैंने कुछ देखा नहीं, 'मैंने कुछ देखा नहीं, मैंने कुछ सुना नहीं" सम्भवः यही जीवन-दर्शन दोनों ने अपना रखा था।

शैशव की स्मृति स्पष्ट है—वे विश्वविद्यालय अलीगढ़नुमा पैजामा पहन कर जाते थे, ऊपर से बन्द गले का लम्बा कोट और जहाँ तक मुझे याद है कि अपने विवाह के दिन भी वे विश्वविद्यालय गये थे। मुझे तो वह भी याद है कि प्रातः ही डा० नारायन प्रसाद अस्थाना सपत्नीक घर आये थे—उन्होंने विवाह का प्रस्ताव रखा था, श्रीमती अस्थाना की दृढ़ता—एक घंटे जो जमीं तो स्वीकृति लेकर ही गई और फिर इनकी सनक—"विवाह में मैं एक माह का वेतन व्यय कर सकता हूं, डिप्टी साहब

(उनके श्वसुर) भी एक माह का ही वेतन व्यय करें।" शाम को बारात का प्रस्थान और शाम को ही बारात की विदा—सन् 1935 में ऐसा चलन न था, यह सब हम लोगों को अजब-सा लग रहा था और फिर दूसरे दिन प्रातः—कन्या-पक्ष की ओर से वस्त्रों और बरतनों का आना और उनका लौटाया जाना—अम्मा के बहुत कहने पर केवल 'खाजा' को रोक लेना———क्या क्या लिखूं, सभी तो याद है।

भाई साहब को दावत देने का शौक था, किन्तु दावतों में भी इनकी अपनी सनक रहती थी। विवाह से पूर्व इन्होंने रसगुल्लों की दावत की थी—केवल रसगुल्ले ही——एक बार उन्होंने खीरे और भुट्टे की दावत की थी—हफ्तों पहले से ही सोचा जाता था कि क्या क्या व्यंजन बनाये जा सकते थे और जब 'आलू की दावत' हुई तो, मुझे याद है, भाभी ने आलू के गुलाब जामुन बनाये थे और आनन्द के विवाह के दिन——बारात 10 बजे रात्रि तक ही लौट आई थी—रात में ही केवल आइस-क्रीम पार्टी। भाभी भी उनके रंग में रंग गई थीं—उन्हें भी रस आता था ऐसी दावतों में। हमारे घर की रसोई तो प्रयोगशाला बन गई थी। भाभी की जहाँ वे नये-नये व्यंजन बनाने का प्रयास करती थीं।

जीवन स्वयं घटनाओं का एक संग्रह है। पर कुछ ऐसी घटनायें होती हैं जो मस्तिष्क पर अमिट छाप बना देती हैं। हम सब गोरखपुर जा रहे थे। उस जमाने में रेलगाड़ी में 'इन्टर' क्लास होता था और हम लोगों ने 'इन्टर' का ही टिकट लिया था। रामबाग स्टेशन जब पहुंचा तो पता चला कि ट्रेन जाने में विलम्ब है। गाड़ी में तो लगता था इन्टर का डिब्बा, पर स्टेशन पर इन्टर का प्रतीक्षालय न था। स्टेशन मास्टर ने उदारता दिखाई—सेकण्ड क्लास का प्रतीक्षालय खोल दिया। हम लोग उसमें पसर गये। पर भाई साहब उद्विग्न——इन्टर क्लास का टिकट लेकर सेकन्ड क्लास की सुविधायें प्राप्त करने का क्या अधिकार--थोड़ी देर बाद मैं देखता हूं उन्हे सेकण्ड क्लास की खिड़की पर—जब तक उन्होंने भूंसी तक का सेकण्ड क्लास का टिकट नहीं ले लिया उन्हें चैन नहीं मिली।

मुझे आज भी याद है वह घटना जो मेरे सामने डा० राम कुमार वर्मा के साथ घटी थी। वे जब आये तो उनका सत्कार किया गया, मिठाई आई, घर में पकौड़ी तली गई, चाय भी बनाई गई। पर वर्मा जी को तलब थी सिगरेट की। वे सिगरेट केस घर पर ही भूल आये थे। "सत्य प्रकाश, सिगरेट मंगवा दो" उनका आदेश। नौकर बुला लिया गया, पर भाई साहब ने शर्त लगा दी कि सिगरेट के पैसे वर्मा जी ही दें—उनका तो जीवन-दर्शन था, "जिसका सेवन मैं स्वयं नहीं करता, वह दूसरों को कैसे उपलब्ध कर दूं ?।" पहले तो वर्मा जी परेशान——जो व्यक्ति दो रुपये की मिठाई मंगा सकता है वह सिगरेट के लिये दो पैसे माँगे। पर जब उन्हें आभास हो गया कि यह प्रश्न पैसे का नहीं सिद्धांत का है, उन्हें पैसे निकालने ही पड़े।

मैं साधारण सा-ही विद्यार्थी था। भौतिक विज्ञान में कमजोर था। बी० एस-सी० फाइनल की परीक्षा हुई तो भौतिक विज्ञान की प्रयोगिक परीक्षा विगाड़ बैठा। दो प्रयोग करने थे, पर एक भी न कर सका। उदास घर लौटा। शाम को दोनों परीक्षक—इन्टरनल भी और एक्सटरनल भी—घर पर आये, दोनों ही भाई साहब के अन्तरंग मित्र थे—मेरी असफलता पर खेद प्रकट करने लगे—पर भाई साहब तो हँस ही रहे थे। 'जीवन में पास और फेल तो लगा ही रहता है, उनका स्पष्ट उत्तर था।' और उनके जाने के बाद मेरे पास आये, "जब तक गिरोगे नहीं, राह-सवार कैसे कहलाओगे ?" आज जब इस घटना पर सोचता हूँ, अचरज करता हूं—उनके मस्तिष्क में यह क्यों न कुरेदा कि फेल को पास किया जा सकता है और न यह बात उनके मित्रों के मस्तिष्क में ही उपजी कि 50 में से 17 अंक तो दिये ही जा सकते हैं।

मुझमें एक प्रकाशक ने प्रस्ताव रक्खा कि मैं इन्टरमीडिएट कक्षा के लिये पाठ्-पुस्तक लिखूँ। मैं असमंजस में था। इस कक्षा के लिये रसायन की पाठ्य पुस्तक तो मेरे अग्रज ने भी लिखी है। पर प्रकाशक जोश में था और मुझे प्रोत्साहित कर रहा था, "आप उनसे पूछ लीजिये न ?" और बड़ी ही हिम्मत करके डरते-डरते मैंने उनसे चर्चा बतलाई। "तुम अवश्य लिखो। यह क्यों सोचते हो कि तुम मेरे प्रतियोगी बनोगे ? " और फिर हँस कर उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई, क्यों न हम तुम दोनों ही सारे मार्केट पर छा जायं" और एक दिन उन्होंने अपना दृष्टिकोण सामने रखा, "जो जिसके भाग्य में लिखा होगा, उसे मिलेगा ही। इस पर सोचना विचारना क्या ? "

उन्होंने अब सन्यास ले लिया है। सन्यास लेकर अपने परिवार को विस्तृत कर लिया है। कल तक वे हम तीन भाइयों और एक बहिन के भ्राता थे, आज वे समस्त विश्व के अग्रज हैं। इस शुभ अवसर पर मेरी यही प्रार्थना है मंगलमय भगवान से वे दीर्घायु प्राप्त करें, स्वस्थ जीवन प्राप्त करें जिससे कि अपने इस विस्तृत परिवार को स्नेह दे सकें, हम सबका मार्ग-दर्शन कर सकें।

पारिवारिक संस्मरण

• श्रीमती सुमन
प्राचार्या, जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कालेज, कानपुर

8 जून 1948 अपने विवाह के उपरान्त जब मैं अपने ससुर पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय के घर इलाहाबाद पहुंची तो मुझे सर्वप्रथम अपने ज्येष्ठ डा० सत्य प्रकाश, उनकी पत्नी और पुत्र अरविन्द, आनन्द तथा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ परिचय कराया गया। मैंने डा० सत्य प्रकाश की मुद्रा, बातचीत तथा गतिविधियों में एक नवीनता और विशेषता पाई। उन्हें जो केवल परम्परागत और रूढ़िग्रस्त था, रुचता ही नहीं था। उनकी जीवन की सबसे बड़ी प्रेरणा, लीक पर चलना नहीं, नयी लीक या परिपाटी का सृजन या नया जीवन दर्शन का निर्माण था। कवीन्द्र रवीन्द्र का यह कथन "जोदि तुम्हार डाके केऊ न एशे, एकला चलो रे" उनके सम्बन्ध में पूर्णतः सही उतरता था। यदि उनके दृष्टिकोण या विश्वास के साथ अन्य व्यक्ति सहमति नहीं रखते थे तो एकाकी रहकर ही कार्य करना पसन्द करना चाहते थे और करते भी थे।
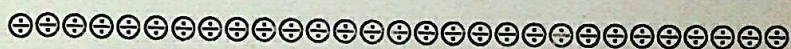
बाल सत्य प्रकाश ने अपनी दादी से एक दिन कहा, "पिता जी भी कैसे हैं लिफाफों को लगा लगा कर सारी गोंद नष्ट कर देते हैं। मेरी पतंग के लिए गोंद मिलती ही नहीं।" तब कौन जानता था कि महान साहित्यकार यह पुत्र जो आज पिता द्वारा लिफाफों को गोंद लगाने पर खीजता है और इसे नष्ट करना मानता है आगे चलकर विश्व ख्याति का विद्वान व साहित्यकार बनेगा।

सत्य प्रकाश जी के श्रद्धेय पिता जी द्वारा लिखी व सुनाई
एक रोचक घटना

मुझे यद्यपि उनके अधिक सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला है क्योंकि मैं अनुज वधू थी किन्तु मेरे निरीक्षण में आया कि उनकी जीवन शैली अत्यन्त अनुशासित और

अभिनव थी । मनुष्य को क्या करना चाहिये, क्यों करना चाहिये, कैसे करना चाहिये इन प्रश्नों पर उन्होंने गहन चिन्तन किया था और उनका समस्त जीवन जैसे उनके चिन्तन का प्रतिरूप बन गया था । उनके ज्ञान की उच्चता और सादगी की गहनता प्रभावित किये बिना नही छोड़ती थी । रसायन शास्त्र तो उनका विषय था ही, किन्तु विविध क्षेत्रों में दर्शन, कला, साहित्यक, वेद उपनिषद आदि के अध्ययन, मनन, चिन्तन और अनुशीलन की अदम्य प्रेरणा थी । उनका पुस्तकालय किसी महाविद्यालय के पुस्तकालय से कम नहीं था । अनेक अलभ्य पुस्तकें भी उसमें थी । उन्हें शरीर श्रम में विश्वास था । नौकर होते हुये भी वे अपने कपड़े स्वयं धोते और सुखाते थे । प्रातः काल अन्धेरे में ही उठ जाते थे और सूर्योदय तक बहुत कुछ पढ़ने लिखने का कार्य कर डालते थे । सहिष्णु तो इतने थे कि भीषण शीत में भी एक खादी की बनियाइन पहने कार्य करते रहते थे ।

मुझे एक घटना याद है । उनकी पत्नी (स्वर्गीय) रत्नकुमारी 30 नवम्बर 1964 को कानपुर रैली में भाग लेने के लिये आई हुई थीं और मेरे साथ ही ठहरी थीं । 1 दिसम्बर की रात्रि 3 बजे उन्हें हृदय का दौरा पड़ा और 4 बजे उनका देहावसान हो गया । इसकी सूचना जब ट्रंककाल से मैंने डा० साहब को दी तो उन्होंने कहा था "कोई बात नहीं बच्ची ! मैं आ रहा हूँ" कितने धैर्य के परिचायक हैं ये शब्द । घोर विपदा में भी इतना सन्तुलन असाधारणता का द्योतक है ।

सन् 1948 सितम्बर में जब मैं अपने पति के साथ काठमान्डू (नैपाल) जा रही थी तो डा० साहब और उनकी पत्नी आदि स्टेशन पर पहुंचाने आये । चलते समय उनकी आँखों में वात्सल्य के आँसू थे । उन्होंने कहा था "बच्चे अच्छी तरह रहना Heart within God overhead ये शब्द तो मेरे जीवन के पथ प्रदर्शक बन गये हैं और मुझे जीवन में प्रत्येक चरण पर लगता है कि एक ईश्वरीय सत्ता प्रेरणा दे रही है, मुझे जब वे वात्सल्य भरे शब्दों से 'बच्ची' कहते थे तो मेरा हृदय गदगद हो उठता था । ऐसा सरल स्नेह पिता के अतिरिक्त सम्भवतः और कौन दे सकता है !

मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ वे 'सत्य' का 'प्रकाश' करने के लिये दीर्घजीवी हों और अन्ध विश्वासों तथा रूढ़ियों से ग्रसित मानवता को सांस्कृतिक प्रगति के पथ का प्रदर्शन करते रहें ।

स्वामी जी—महान व्यक्तित्व
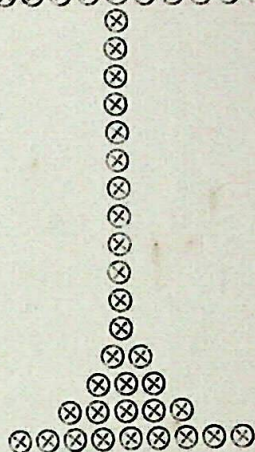
डा० शिव प्रकाश
प्रवक्ता, रसायन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

1953 का जुलाई मास था जब मैं बी० एस-सी० प्रथम वर्ष के विद्यार्थी के रूप में पहले पहले विश्वविद्यालय में आया था। भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा गणित समूह का विद्यार्थी था। प्रत्येक नये विद्यार्थी की भाँति विश्वविद्यालय के अध्यापकों के सम्पर्क में आने और उनसे विद्यार्जन करने की अपनी एक रोमांचकारी अनुभूति थी। स्वामी जी (तब डॉ० सत्य प्रकाश) से मेरा सम्पर्क प्रयोगात्मक कक्षा में हुआ। वैसे स्वामी जी को मैंने पहली बार तब देखा था जब मैं नवीं कक्षा का विद्यार्थी था और स्वामी जी के० पी० कालेज, इलाहाबाद के विज्ञान क्लब का उद्घाटन करने आये थे। उनकी सरल भाषा, बोलने का प्रवाह तथा उनकी सरलतम वेशभूषा परन्तु प्रभावी व्यक्तित्व की छाप तभी पड़ी थी। विश्वविद्यालय में उनका विद्यार्थी बनकर कुछ सीखने की इच्छा पूर्ण हुई। स्नातकोत्तर कक्षाओं में अध्ययन समाप्त करके मुझे शोध कार्य करने के लिये स्वामी जी का निर्देशन प्राप्त हुआ तब तो मैं उनके अत्यन्त निकट आ गया और तब से गुरू-शिष्य का वास्तविक सम्बन्ध प्रारम्भ हुआ।

शोध कार्य के सिलसिले में मैं जब स्वामी जी से मिलने गया था उस समय एटॉमिक एनर्जी इस्टैब्लिशमेंट, बम्बई में मेरा चयन भी हो गया था। स्वामी जी ने

कहा था यदि फर्स्ट डिवीजन न आकर सेकण्ड डिवीजन आये होते तो तुम बम्बई चले जाते। फर्स्ट डिवीजन आ जाने से फिर जल्दी निर्णय लेना सरल नहीं होता। शोध के लिये उन्होंने मुझे स्वीकार कर लिया और कहा 'मैं अपने विद्यार्थियों को धारा में ले जाकर छोड़ देता हूँ। यदि विद्यार्थी में सामर्थ्य है तो वह तैर कर पार हो जायेगा नहीं तो डूब जायगा।' आत्मविश्वास पैदा करने का यह अच्छा तरीका था।

स्वामी जी अपने शोध छात्रों को पुत्र के समान मानते थे। वैसे तो प्रत्येक के साथ उनका अत्यन्त मृदु व्यवहार होता था। स्वामी जी कितने सरल एवं उदार थे और हैं यह उन सभी को ज्ञात है जो उनके सम्पर्क में आ चुके हैं। गुरु-शिष्य तथा पिता-पुत्र के सम्बन्ध में मुझे एक बात याद आती है। जब मैं उच्च शोध के लिये एम्सतर्दम विश्व-विद्यालय गया था तो लोग पूछते थे कि क्या केमिस्ट्री के अध्यक्ष तुम्हारे पिता हैं ? पहले मैं समझ नहीं पाया था। बाद में पता चला कि हमारे शोध पत्रों में दोनों के नाम में 'प्रकाश' होने से ही ऐसा समझा जाता था। 1971 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभाग में जब 'अल्ट्रासॉनिक्स' पर सेमिनार का आयोजन किया तो पेरिस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर व डीन राबर्ट ओलविये प्रुद्योम ने अपने अध्यक्षपदीय भाषण में कहा था कि अध्यक्ष प्रो० सत्य प्रकाश के पुत्र डॉ० शिव प्रकाश ने अल्ट्रासॉनिक्स पर शोध कार्य को काफी आगे बढ़ाया है। श्रोताओं को इस सम्बन्ध पर हँसी आई थी।

विभागाध्यक्ष बन जाने के उपरान्त भी स्वामी जी का स्वभाव ज्यों का त्यों बना रहा। स्वामी जी ने शोध छात्रों और अपने सहयोगी अध्यापकों के साथ बिना किसी दूरी के जिस प्रिय व्यवहार से काम लिया वह अपने आप में एक उदाहरण है। अध्यापक गण उन्हें 'दादा जी' कहा करते थे। यह नाम कब से चला मैं नहीं जानता पर 1961 में जब मैं अध्यापक नियुक्त हुआ तो मुझे पहली बार पता चला कि उन्हे 'दादा जी' कहा जाता है। बरामदे में भी कोई मिल जाय तो कुछ देर के लिये रुककर कुशलक्षेम पूछ लेना स्वामी जी की जैसे आदत सी रही है। कोई भी बिना भय के उनसे मिल सकता था। एक बार काम न होने पर भी कम के कम यह संतोष अवश्य होता था कि स्वामी जी ने मृदु भाषा में बात तो कर ली। आत्मीयता से मिलना स्वामी जी की विशेषता है।

स्वामी जी को नाराज होते और किसी ने देखा हो तो देखा हो मैंने तो कभी नहीं देखा। सदैव हँस कर और 'लाइट मूड' में ही बात करते और उत्तर देते। किसी जलपान के अवसर पर जब वह बोलते तो इस ढंग से बोलते कि सभी को हँसी आती और खाने से ज्यादा बात सुनने का आनन्द आता। स्वयं खिलाने पिलाने के भी स्वामी जी काफी शौकीन रहे हैं। उनके घर पहुँच जाने पर बिना खाये-पिये तो कोई लौट ही नहीं सकता था। चाय तो वह पीते नहीं इसलिये काफी ही पिलाते रहे हैं। सत्र के अन्त में विभाग के सभी लोगों को घर पर बुलाकर आइसक्रीम या कुल्फी खिलाने में उन्हे

काफी आनन्द आता था। स्वामी जी का अब भी विचार है कि यदि कोई खाने पर बुलाये तो मैं चाहूँगा कि एक ही प्रकार का 'कोर्स' चले। यदि खिचड़ी हो तो कई प्रकार की खिचड़ी ही हों।

व्याख्याता के रूप में स्वामी जी अद्वितीय हैं। चाहे विषय रसायन शास्त्र का हो, विज्ञान का हो या फिर चाहे सामाजिक या धार्मिक विषय हो स्वामी जी धारा प्रवाह बोलते हैं। उनकी भाषा इतनी सरल है और प्रस्तुतिकरण इतना रुचिकर व ग्राह्य होता है कि श्रोता मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहते हैं और चाहते हैं कि स्वामी जी बोलते ही रहें। आर्य समाज के तत्वावधान में वह कई बार अफ्रीकी देशों में भ्रमण कर आए हैं और वहाँ एक एक दिन में पांच-छ: सभाओं में भाषण करते रहे हैं। एक बार मैंने पूछा कि इन भाषणों के पूर्व क्या आप मैटर तैयार कर लेते हैं? स्वामी जी ने बताया आजतक मैंने मैटर तैयार करके भाषण दिया ही नहीं। यदि मैं पहले से लिख लूँ तो फिर बोल ही नहीं सकता। होता इसके विपरीत है। जब वह अपने प्रवास से वापस आते हैं तो उन भाषणों को लिख डालते हैं और फिर उसे पुस्तक का रूप देते हैं। सेमिनार या सिम्पोजियम में जब कोई व्याख्याता बोल रहा होता है तो कभी कभी ऐसा आभास मिला कि शायद स्वामी जी ऊँघ रहे हों। पर सदैव ही यह धारणा गलत पाई गई क्योंकि भाषण के बीच में ही स्वामी जी का प्रश्न हवा में तैर जाता है। भाषण के अन्त में समापन करने में स्वामी जी विषय पर जो प्रकाश डालते उससे गूढ़ से गूढ़ विषय पर भी उनकी सूझ बूझ का परिचय मिलता है और यह निश्चित हो जाता है कि स्वामी जी एक एक वाक्य को भली भांति विश्लेषित कर रहे थे। उनकी विषय की पकड़ काफी मजबूत है। तथ्यों को ग्राह्य बनाना स्वामी जी की बेजोड़ कला है और सुनने वाले पर अमिट छाप का पड़ जाना स्वाभाविक ही है।

लिखना उनका व्यसन है। वह बताते कि जब मैं कहीं जाता हूँ तो आतिथेय से पहले ही बता देता हूँ कि मैं सुबह उठकर लिखता हूँ इसलिये इसका प्रबन्ध वह अवश्य कर दें और अन्य किसी चीज की चिन्ता न करें। जब उनके निर्देशन में उनके सह-लेखन के रूप में बी० एससी० के लिये भौतिक रसायन लिख रहा था तो मुझे ससुराल जाना था। स्वामी जी ने कहा ससुराल से अच्छी जगह लिखने की कोई नहीं। वहाँ तो कोई डिस्टर्ब कर ही नहीं सकता। तुम वहाँ भी यह काम अच्छी प्रकार कर सकते हो।

स्वामी जी के कर्तृत्व का वर्णन यहाँ सम्भव नहीं (इस अंक में अन्यत्र दिया गया है) पर उनकी पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का जितना सृजन स्वामी जी ने किया है उतना शायद ही किसी ने किया हो। हिन्दी भाषा के माध्यम से विज्ञान के लिए सामग्री जुटाना, अध्ययन-अध्यापन पर बल देना उसके प्रचार व प्रसार में स्वामी जी का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी में विज्ञान की पुस्तकों के लेखन में मुझे स्वामी जी ने ही प्रोत्साहित किया।

नियमित रूप से सुबह टहलने जाना और नियमित रूप से नित्य ही वैज्ञानिक अथवा धार्मिक साहित्य का सृजन करना स्वामी जी के जीवन का अंग है। हिन्दी व संस्कृत भाषा का इतना सुन्दर ज्ञान स्वामी जी को है कि उन्हें लेखन में कोई बाधा नहीं पड़ती और साथ साथ विषय की मजबूत पकड़ होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण साहित्य का सृजन हो जाता है।

गुरुदेव
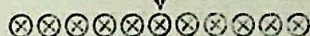
डा० रमेश चन्द्र कपूर
अध्यक्ष, रसायन विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय

गुरुदेव डा० सत्य प्रकाश जी से सर्वप्रथम 1942 में मेरा साक्षात्कार हुआ। जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में बी० एससी० के प्रथम वर्ष में पढ़ने आया था तब वे हम लोगों को रसायन की प्रायोगिक कक्षा में पढ़ाने आते थे। उसी समय से उनसे उत्तरोत्तर सम्बंध बढ़ता रहा। उनकी सादगी, तथा स्वदेशी प्रेम की अमिट छाप हम लोगों पर सदा रही।

अब श्रद्धेय गुरु जी ने संन्यास ले लिया है। उनके इस निश्चय का समाचार मुझे बड़े रोचक वातावरण में ज्ञात हुआ। मेरी कामना है कि स्वामी जी शतायु हों। उनके प्रवचनों का और समाज को लाभ मिलता रहे।

गुरुजी स्मरणे

• डा० गुरु प्रसन्न घोष
शीलाधर शोध संस्थान, इलाहाबाद

25 वर्ष पूर्वे प्रयाग विश्वविद्यालये रसायन विभागे पड़बार सौभाग्य पेये जे मणीषी अध्यापक आमार चित्त आकर्षण करेन तीनि होच्छेन आत्मभोला, सदाहास्य, मिष्ठभाषी खद्दरेर धुती पांजावी परा आमादेर गुरुजी श्रद्धेय आचार्य सत्यप्रकाश।

मने पड़े आमार नाम सुने हे से वोलेछिलेन "तुम गुरुओं को प्रसन्न करने के लिए मिठाइयां खिलाया करो"। एक दिन गोंफ दाडी देखे वोले छिलेन "तुम क्या शरत चन्द्र जैसा लेखक वनना चाहते हो"? अन्य आर एक दिन साउथ मलाकाय पदव्रजे गमन काले ताँहा के साइकेल चड़े आसते देखे नमस्कार कराते तीनि साइकेल थेके नेमे आमार काँधे हात रेखे स्नेहपूर्ण स्वरे बोललेन "तुम क्या इधर ही रहते हो"। छात्रदेर प्रति स्नेहपूर्ण वात्सल्य भाव सर्वदाइ ताँहार मध्ये परिलक्षित हय।

ताँहार वहूमुखी प्रतिमा देखे सवाइ विस्मित हय। रसायन विज्ञाने ताँहार अनेक मौलिक गवेषणा आछे एवं बहू संख्यक शोध छात्र ताँहार निकट विभिन्न विषये गवेषणा कोरिया डाक्टरेट उपाधि प्राप्त हईयाछे। रसायन विषये निम्नतम श्रेणी होइते उच्चतम श्रेणीर पाठ्य पुस्तक रचना एवं राष्ट्रभाषाय विज्ञान प्रसारेर उद्देश्ये प्रयाग हिन्दी विज्ञान परिषदेर स्थापना ताँहार अमूतपूर्व प्रतिभार परिचय देय।

ताँहार वलीष्ठ देहे केंह कोनो रोग देखे नाइ। प्रचण्ड शीते तीनि गरम कापड़ परेन ना। विलाते असहनीय शीते खद्दरेर धुति पांजाबीपरा भारतीय गुरु जी के पथे भ्रमण कोरते देखे सवांइ खुव आश्चर्य होयेछिलो एवं साहेवदेर रीतिमतो मीड़ जमेछिलो।

महर्षि दयानन्द स्वामीर प्रवर्तित आर्यधर्मे दीक्षित ताँहार पिता एवं तीनि। प्रयाग विश्वविद्यालय रसायन विभागेर अध्यक्ष पद होइते अवसर प्राप्तेर पर तीनि सन्यास ग्रहण करेन एवं देशे विदेशे सूदूर आफ्रिकाय सत्यधर्म वेद प्रचारे आपन सम्पूर्ण शक्ति नियोजित कोरेछेन। विज्ञान रश्मीते ताँहार ओजोपूर्ण भाषाय धर्म विषय भाषण एवं प्रवचन शुनिया सवाइ मुग्ध होये याय।

ताँहार सप्ततीतम जन्मतिथिते ताँहाके जानाइ आमार आकण्ठ श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण प्रणाम। तीनि शतायु होउन एवं भारत जननीर गरीमा एवं संस्कृति जगत सभाय पुनः प्रतिष्ठा कोरुन ईश्वरेर निकट इहाई प्रार्थना जानाइ।

मुझे अपनी पुस्तक भेंट की

• कन्हैया लाल गोविल

भूत-पूर्व रजिस्ट्रार, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

स्वामी जी का और मेरा परिचय बहुत समय से है। मैं यहां 1930 में आया और निश्चय तौर से नहीं कह सकता कि उनसे मेरा परिचय कब से हुआ। मैं उनके पिता श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का भी कभी-कभी दर्शन करता था। वे आर्यसमाज के स्तंभों में से एक थे। उन्होंने धर्म पर अनेक पुस्तकें लिखीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक पाण्डित्ययुक्त भाषण भी दिये।

स्वामी सत्यप्रकाश जी ने हिन्दी भाषा की विशेष सेवा की। वे उन लेखकों में से हैं जिन्होंने विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में प्रारम्भ में लिखीं। आज उनका कलेवर चाहे बदल गया हो, परन्तु वैज्ञानिक शब्दावली को उन्होंने स्नातक-पाठकों को दिया व उसका परिमार्जन किया।

स्वामी सत्यप्रकाश जी ने विज्ञान और अध्यात्म जिस पर विनोवा जी बहुत जोर देते हैं, उसका समन्वय किया और दैनिक जीवन में उसे उतारने का सफल और अनुकरणीय प्रयास किया।

उनका गृहस्थ जीवन बहुत सुखी था। उनकी धर्मपत्नी आर्यकन्या पाठशाला की मुख्य अध्यापिका थीं। स्वामी जी के दो पुत्र हैं जिनकी उच्च शिक्षा इंगलैंड में हुई है और उन्होंने दोनों बच्चों का विवाह अपनी जाति से बाहर किया है जो सामाजिक सुधार की ओर बड़ा कदम है।

एक बार स्वामी जी और उनकी धर्मपत्नी विलायत से लौटने पर मिलने आये तो उनकी पत्नी ने कहा 'इनकी वेश-भूषा को देखकर इंगलैंड में लोग एकत्र हो जाते थे और टकटकी लगाकर देखते थे कि यह क्या आदि पुरुष है ? अथवा किसी उपग्रह से आए हैं ? एकत्रित भीड़ में से एक ने कहा 'Look, Look he puts on socks as well.' स्वामी जी के वेश से तो हम सभी परिचित ही हैं।

स्वामी जी से मेरा परिचय विज्ञान-परिषद् से भी था और वह भी हीरा लाल जी खन्ना (जो मेरे मित्र थे) की कृपा से हुआ।

अवकाश ग्रहण करने के बाद भी स्वामी जी शोध छात्र-छात्राओं को मार्ग दर्शन देते रहे हैं। अपनी सारी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बना दिया है और स्वयं आर्यसमाज के एक छोटे से कमरे में रहते हैं। वे धर्म प्रचार के लिये देश विदेश जाते रहते हैं। लौटने पर उन्होंने अपनी लिखित एक पुस्तक भेंट की थी।

स्वामीजी का स्वास्थ्य अवकाश प्राप्त करने के बाद, आयु बढ़ते हुये भी कुछ अच्छा ही रहा है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि कर्म करते हुये ही इस संसार में शत वर्षा का उनका जीवन पूरा हो। स्वामी जी का जीवन सरल, सरस एवं उपयोगी है।
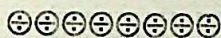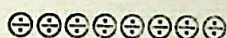
जब प्रतिभा साकार हुई
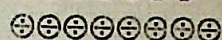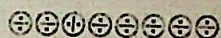
• विश्व प्रकाश

कला प्रेस, इलाहाबाद

दो वर्ष हुए अंग्रेजी दैनिक 'नार्दर्न इण्डिया पत्रिका' में एक लेख प्रकाशित हुआ—महाभारत के समय में हाथियों का युद्धकला में अभियान। इसके लेखक थे डॉ० सत्य प्रकाश जी। यह विस्तृत लेख पाठकों में बड़े चाव से पढ़ा गया। प्रयाग के सुप्रसिद्ध चिकित्सक मेरे उपचार के लिए आए थे, कहने लगे आज यह लेख मैंने पढ़ा। यदि मैं डॉ० सत्य प्रकाश से परिचित न होता तो यही अनुमान लगाता कि यह लेख किसी संस्कृत के महान लेखक का लिखा हुआ है। एक वैज्ञानिक-वह भी ऊच्च कोटि का-और वह लिखता है ऐसे विषय पर।

मेरे मुख से निकला कि प्रतिभा साकार रूप धारण करके प्रकट हुई है। मैंने बताया कि जब मानस का विकास होने लगता है तो उसको संकुचित विषयों में केन्द्रित नहीं किया जा सकता है। वह विकास तो अपना एक अपूर्व विकास कर बैठता है यही कारण है कि विज्ञान के अध्ययन के साथ साथ आध्यात्मिक तत्वों का भी अध्ययन संभव हो जाता है और वही विशेषता श्री डॉक्टर साहब की प्रारम्भिक जीवन से रही है।

संस्कृत साहित्य उनका प्रिय विषय रहा है। सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने मैट्रीक्युलेशन की परीक्षा बड़ी प्रतिभा से उत्तीर्ण की थी। छात्रवृत्ति भी मिली। इसका उपयोग उन्होंने किया ईश तथा श्वेताश्वर उपनिषद् का पद्यानुवाद प्रकाशित करने में। मैट्रीक्युलेशन की अवस्था में यह अनुवाद प्रकाशित हुआ और इसकी बड़ी प्रशंसा भी हुई। उस समय से लेकर इस समय तक उनकी वैदिक साहित्य के अध्ययन में बड़ी रुचि रही। मंत्रों का अध्ययन करने में उनको एक विशेष प्रेरणा मिलती रही। उनके अध्ययन में प्रेरणा कहां से मिलती है और किस प्रकार वे एक मौलिक अर्थ निकाल लेते हैं, इसको देख कर बड़ा आश्चर्य होता है। संस्कृत केवल उन्होंने कक्षा-6 में पढ़ी, तब कुछ रूप, धातु याद किये थे। पर किस प्रकार मंत्रों से वे आध्यात्मिक तत्वों को निकाल लेते हैं यह केवल प्रतिभा के द्वारा ही संभव हो सकता है। जब वे वैदिक मंत्रों पर प्रवचन देते हैं, जो सन्यास लेने के उपरान्त एक प्रतिदिन की बात हो गई, वे ऐसे मौलिक अर्थों को प्रकट करते पाये जाते हैं। मतभेद होना विद्वानों में एक सरल बात है पर वैदिक

मंत्रों की मौलिक व्याख्या उनके द्वारा सुनने से हृदय को बड़ा आह्लाद मिलता है। एक नई विचार धारा सामने आ जाती है।

'इस्लाम' नामक मासिक पत्रिका में वेदों के ऊपर अश्लीलता के कतिपय आक्षेप लगाए गये। डॉ० साहब ने एक पुस्तक 150 पृष्ठों के लगभग लिखी और उसका नाम रक्खा "वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप"। जितने विचारणीय मंत्र थे उनकी डॉ० साहब ने बड़ी मौलिक युक्तियों के द्वारा पुष्टि की है।

डाक्टर साहब को विक्टोरिया रीडरशिप मिली तो उसका उपयोग कई वैज्ञानिक ग्रन्थ लिख कर किया। डॉ० नीलरत्न धर जो आपके प्रेरक गुरु रहे हैं उनकी प्रेरणा से आपने वैज्ञानिक अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रूपान्तर किया। इसका आधार तो संस्कृत शब्दों पर ही है। इसके उपरान्त श्री प्रो० सालिगराम भार्गव तथा प्रोफेसर वृजराज के परामर्श से 'विज्ञान' के संपादन का सारा भार आप पर आ गया। इस प्रकार वैज्ञानिक शब्दों का हिन्दी अनुवाद हुआ और जो कठिनाई हिन्दी में उचित शब्दों के न मिलने से होती वह दूर हो गयी। भारतीय शब्द निर्माण में सरकार ने उनसे बड़ी सहायता ली।

प्रयाग विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक शोध के साथ-साथ आपने भारतीय यज्ञों और अग्निहोत्र पर शोध प्रारम्भ किया। सार्वदेशिक व्यक्ति प्रतिनिधि सभा के वयोवृद्ध प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के परामर्श पर प्रयाग विश्वविद्यालय में अग्निहोत्र पर शोध की और अंग्रेजी में अपने शोध के आधार पर AGNIHOTRA पुस्तक लिखी जिसकी प्रस्तावना महामहोपाध्याय प्रो० गंगानाथ झा ने लिखी और भूमिका लिखी डॉ० नीलरत्न धर ने। इस पुस्तक में यज्ञ पद्धति पर विशद वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है।

डॉ० साहब ने विज्ञान के साथ-साथ प्राचीन दर्शनशास्त्र का विशद अध्ययन किया है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों पर (ए क्रिटिकल स्टडी आव स्वामी दयानन्दस् फिलासफी) एक विशद् व्याख्या लिखी जिसके अध्ययन से आपके दार्शनिक ज्ञान पर प्रकाश पड़ता है।

सन्यास लेने के कुछ दिन पूर्व ही आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए एक विस्तृत कोश का सम्पादन किया है। इससे अंग्रेजी शब्दों का बड़ा सुन्दर रूपान्तर मिल सकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा डर्बन (दक्षिणी अफ्रीका) के निमंत्रण पर वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आप अफ्रीका गये। वहां पर आपने धर्म और अध्यात्म्य पर व्याख्यान दिये। वहाँ से लौटने पर आपने विस्तृत ग्रन्थ Vincit veritas लिखा जिसमें इन व्याख्यानों का सार रूप वर्णन किया है।

आपके ग्रन्थों में 'फाउन्डर्स ऑफ साइन्स इन एन्शेन्ट इण्डिया' प्रमुख है। इसने जहां प्राचीन गौरव को जनता के सम्मुख रक्खा वहां भारतीय वैज्ञानिकों तथा संस्कृति का वर्णन किया है। इसके अध्ययन से भारतीय वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में एक नवीन द्वार खुल गया।

प्राचीन भारत मे ज्यामिति तथा ज्योतिष शास्त्र पर आपने ग्रन्थ लिखे हैं। शतपथ ब्राह्मण के भाष्य में इस महान ग्रन्थ की उपादेयता पर सैकड़ों पृष्ठ लिखे हैं।

सौभाग्य से अभी आपकी लेखनी बड़ी तीव्र गति से चल रही है। गीता, उपनिषद् पर पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं। यों दर्शन पर एक विशद् ग्रन्थ भी इधर ही प्रकाशित हुआ है।

इस प्रकार डाक्टर साहब ने अपने जीवन में विज्ञान, वैदिक साहित्य, आध्यात्म्य, दर्शन, साहित्य, कविता निर्माण आदि पर अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। कोई ऐसा विषय नहीं जिसमें आपकी प्रतिभा प्रकट न हुई हो, कोई ऐसा ज्ञान नहीं जिस पर आप अधिकार के साथ हिन्दी या अंग्रेजी में अपने विचार प्रकट न कर सकते हों। आप लेखक हैं, वक्ता हैं, जनता मुग्ध होकर सहस्रों की संख्या में व्याख्यानों का रसास्वादन लेती है। भारतीय समाज में सन्यासी वेश का बड़ा आदर है। भारत ही नहीं दक्षिण अफ्रीका, इंग्लैण्ड, अमरीका, फ्रान्स में आप प्रवचन कर चुके हैं। आप जहां भी एक बार हो आते हैं वहां अपनी स्मृति छोड़ आते हैं। आपकी स्मृति और ख्याति में प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इधर आपका समय वेदों का अंग्रेजी भाष्य करने में लग रहा है। इसका प्रकाशन हो जाने पर एक बहुत बड़ी कमी पूरी हो जाएगी। यह स्वामी जी की महान कृति होगी। देखें यह पूर्ण हो पाती है या नही? इसी विचार से मुझे लिखना पड़ा कि प्रतिभा साकार रूप धारण कर रही है। प्रभु आपको दीर्घायु प्रदान करे।

प्रेरणा के स्त्रोत : स्वामी जी

• डॉ० मुरारी मोहन वर्मा
शीलाधर शोध संस्थान,
इलाहाबाद

पूज्य स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जिन्हें एक सफल वैज्ञानिक, आदर्श शिक्षक, स्वदेश प्रेमी एवं निष्काम सन्यासी की विशिष्ट प्रतिभाओं की एक प्रतिमूर्ति कहा जाय तो अनुचित न होगा। स्वामी जी के सम्पर्क में जो भी व्यक्ति आया उसे उनके जीवन से विद्वता, सादगी, मानव-सेवा, विनम्रता आदि सदगुणों की मूक प्रेरणा मिलती रही है।

31 जनवरी, 1973 को माघ मेला के प्रांगण में संगम की पावन भूमि पर मुझे भी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक स्थलों पर धर्म चर्चाओं, कीर्तन, प्रवचनों आदि से वातावरण गूंज रहा था परन्तु एक विशाल पंडाल में एक गोष्ठी का आयोजन हुआ था जिसका विषय था 'धर्म और विज्ञान'। विशिष्ट वैज्ञानिकों, विचारकों एवं दार्शनिकों का जमघट और गोष्ठी का सभापतित्व कर रहे थे स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती।

लगभग सभी वक्ताओं ने धर्म के पक्ष में ही विज्ञान की प्रगति एवं वैज्ञानिक विचारों की पुष्टि की। कुछ वैज्ञानिकों ने ब्रह्मांड में सभी चल एवं अचल वस्तुओं में चेतनता का बोध कराया और अपनी रोचक वार्ताओं में चेतनता जगतव्यापी है इसकी भी अनुभूति करायी। प्राचीन एवं प्रारम्भिक समय से किस प्रकार जीवों का विकास हुआ तथा उसके आधारभूत विभिन्न भौगोलिक, वायुमण्डलीय, सामाजिक आदि तत्वों द्वारा प्रकृति के सुनियोजित कार्यों का सविस्तार चित्रण किया। प्रकृति द्वारा प्रदत्त असंख्य कार्यों का संचालन क्यों और कैसे हो रहा है, जानने का सतत प्रयास वैज्ञानिक कर रहा है। प्रकृति की भी संचालक कोई शक्ति है तो वह ईश्वर हो सकता है।

कुछ वैज्ञानिकों ने विज्ञान का क्षेत्र धर्म की चहारदीवारी से परे बताया। धर्म द्वारा मान्यता प्राप्त परम्पराओं को आधार मानना तथा अनेकानेक धर्मों में आस्था

सम्भवत: वैज्ञानिकों के विवेक को कुंठित करने में सहायक है, इन विचारों पर आधारित तथ्यों को प्रकट किया।

धर्म की व्याख्या, उनके नियम आदि समय के साथ बदलते रहते हैं, जैसे जैसे विज्ञान की प्रगति हुई है धार्मिक अंधविश्वासों एवं आडम्बरों का निर्मूलन होता रहा है। ऐसी स्थिति में धर्म एवं विज्ञान की विभिन्नताओं में एकता स्थापित करना न्यायसंगत नहीं दीखता।

कुछ विचारकों एवं दार्शनिकों ने विज्ञान के ज्ञान को अत्यन्त संकुचित एवं विध्वंसक बताया। परमाणु एवं हाइड्रोजन बमों तथा अन्य विध्वंसक आविष्कारों को मानवता का अभिशाप स्वरूप बताया। वैभव वृद्धि के लिये प्राकृतिक उपादानों का तेजी से उपयोग कर रहा है। क्या यह कदम भविष्य में मानव कल्याण हितकर होगा ? वातावरण प्रदूषण, बेरोजगारी आदि विविध प्रकार की समस्यायें भी वैज्ञानिक युग की देन कही जा सकती हैं। जब तक धार्मिक विचारों का मानवता के आचार-व्यवहारों से आत्मसात नहीं होगा तब तक अमेरिका जैसे प्रगतिशील तथा समृद्धशाली राष्ट्रों के लोगों में भी हिप्पियों जैसी प्रवृत्तियों का विकास होता रहेगा।

तत्पश्चात् स्वामी जी ने सम्पूर्ण गोष्ठी का समापन किया तथा अपने विद्वतापूर्ण व्याख्यान में सर्वप्रथम गोष्ठी में उपस्थित जन समुदाय को धर्म एवं विज्ञान के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की प्रतिष्ठा को धर्म बताया। वहीं विज्ञान भी सत्य की खोजकर ज्ञान स्थापित करता है, इसे भी बताया। अत: यह निर्विवाद है कि धर्म एवं विज्ञान दो पारस्परिक मान्यतायें हैं। वैज्ञानिकों ने कभी अपने को धर्म विरोधी घोषित नहीं किया जबकि इसके विपरीत धर्म के सामन्तों ने वैज्ञानिकों को धर्म विरोधी कहना प्रारम्भ कर दिया। वैज्ञानिकों ने जब सूर्य को स्थिर पिण्ड बताया उन्हें धर्म विरोधी कहा गया। क्लोरोफार्म का उपयोग जब प्रसव पीड़ा हरने के लिये किया गया तो वैज्ञानिकों को धर्म विरोधी कहा गया क्योंकि नारी अपने पाप कर्मों का फल प्रसव की असह्य पीड़ा से पाती है ऐसी मान्यता धर्म ग्रन्थों में लिखी है। इस प्रकार कई अन्य उदाहरणों द्वारा स्वामी जी ने धर्म की विभिन्न मान्यतायें वैज्ञानिक दृष्टि में किस प्रकार विरोध करती रहीं, इसका वित्ररण दिया। उन्होंने यह भी बताया जबकि वास्तविक स्थिति यह है कि धर्म के अंधविश्वासों को विज्ञान ने क्षीण कर धर्म आस्था जाग्रत की है।

नाम के अनुरूप स्वामी जी का व्यक्तित्व हमारे जीवन को आलोकित करता रहता है। हम सभी आपके चरणों में सादर श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं और आपके स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की कामना करते हैं।

मधु संचय

डॉ० सत्य प्रकाश के जीवन के विभिन्न 'फेजों' में जो संगीतमय लय है उसका आधार है उनका प्रचंड एवं अखंड कर्म। इस कर्म का जो गहरा और गुप्त ऊर्जास्रोत है वहीं से एक और अजस्र धारा बहती है, उन्मुक्त अट्टहास एवं निर्विकार विनोद की। . . . .

• •

आतिथ्य और सत्कार का उन्हें खासा शौक है और उसमें भी स्वादिष्ट व्यंजनों का समावेश करने का विशेष रूप से। एक बार एक मित्र से उन्होंने कहा — आज का खाना आपका हमारे साथ रहेगा। मित्र ने औपचारिकतावश असमर्थता प्रकट की, तो तत्काल कह उठे — कैसे सखा हो भई ! जो साथ खाये, वही स - खा है" ।. . .

• •

"सन्यास मेरे तईं निष्क्रियता नहीं है। मैंने इस वेष को धारण करके जीवन का त्याग नहीं किया है। आज मेरे सभी कर्म लगभग निष्काम हैं। मुझे उनके बदले में धन और पद की अपेक्षा नहीं रह गई है . . . . निष्काम कर्म ही मेरा सन्यास है।"

• •

उनकी पुस्तक Man and His religion का जैसा स्वागत हुआ उसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मारिशस में उसका फ्रेंच और पूर्वी अफ्रीका में स्वाहिली संस्करण धडल्ले से चल निकले हैं।

• •

सत्य प्रकाश जी का धर्म वस्तुत: मानव धर्म है। वे कहते हैं—कैसे कह दूं कि गंगा अधिक पवित्र है और टेम्स कम या कि कश्मीर अधिक आकर्षक है और स्विटजरलैंड उसके मुकाबले फीका है।

उनके इस मानव धर्म का प्रेरणास्रोत पाश्चात्य चिंतन नहीं बल्कि वेद हैं जिनमें उनकी गहरी निष्ठा है। . . . . उनके अनुसार वेद हमारे लिये इतिहास नहीं हैं। वे जीवन को अनुप्राणित करने वाले उत्कृष्टतम आदि ग्रन्थ हैं।. . . . "मैं तो पश्चिमी लोगों से भी कहा करता हूँ कि वेद जितना मेरा है, उतना ही तुम्हारा भी क्योंकि इनके रचयिता मेरे और तुम्हारे दोनों के पूर्वज थे। तब कोई धर्म था ही नहीं। सारा विभाजन वेदों के बाद का है।"

• •

... विज्ञान परिषद के वे सक्रिय सदस्य ही नहीं एक प्रमुख संचालक भी रहे हैं। हिन्दी मे शोध पत्रिका के वे आदि सम्पादक रहे हैं। उत्तर प्रदेश और भारत सरकार द्वारा गठित विज्ञान विकास और भाषा सम्बन्धी अनेक समितियों में वे सम्मानित सलाहकार और सदस्य रहे हैं और आज भी हैं।

• •

"विज्ञान के पास शक्ति है, उसके पास हृदय भी होना चाहिए। इसके लिये विज्ञान को अध्यात्म में लगाना होगा। यह विचार अब कोई नया नहीं रह गया। विश्व भर में इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही है ... अवैज्ञानिक धर्म धोखा है। जिससे मानव मात्र का कल्याण हो वही धर्म है।"

(नवनीत, दीपावली अंक 1975)

स्वामी डा० सत्य प्रकाश सरस्वती
दादा भी, पुरोहित भी

● डा० आत्मा राम
भूतपूर्व महानिदेशक,
सी० एस० आई० आर०, नई दिल्ली

स्वामी जी को अधिकांश रसायनाचार्य हिन्दी में विज्ञान के प्रभावशील लेखक, वैदिक संस्कृति के प्रबल प्रचारक के रूप में ही जानते हैं। किन्तु वे शायद यह नहीं जानते हैं कि वह उज्ज्वल भविष्य प्रेरक पुरोहित भी हैं।

1929 में मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० पढ़ने गया। मुझे न तो भौतिकी (फिजिक्स) में जगह मिली, न रसायन (केमिस्ट्री) में। कारण यह था कि आवेदन-पत्र पहले से नहीं भेजा था। यह मेरा पहला अनुभव था। अब तक तो कालेज के दफ्तर में गया, और भरती हो गया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विज्ञान विभागों की बात ही कुछ और थी। खैर जैसे-तैसे मैं एम० एस-सी० में ले लिया गया। पहले साल (प्रिवियस) में दस विद्यार्थी थे। सत्यप्रकाश (अब स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती) 1927 में एम० एस-सी० पास कर चुके थे। उस समय शोधकार्य कर रहे थे। उन्हें 100 रु० मासिक की ऐम्प्रेस विक्टोरिया रिसर्च रीडरशिप मिली थी। यह तीन साल के लिए होती थी। हम लोग स्वामी जी को 'दादा' कहा करते थे। न मालूम यह नाम किसने पहले लिया। जहाँ तक मुझे याद है, जब मैं इलाहाबाद शुरू-शुरू में गया, उस समय उनको दादा नहीं कहते थे। खैर जो भी हो। बंगला में बड़े भाई को 'दादा' कहते हैं। स्वामी जी हम सबों के लिए वास्तव में 'दादा' जैसा स्नेह रखते थे, दादागीरी नहीं करते थे जैसा कि अक्सर दादा का अर्थ लगाया जाता है। तब से अब तक उनका और मेरा नाता बड़े व छोटे भाई का ही रहा है और परिवार के सब सदस्य उसी तरह उनका आदर करते हैं।

1929 में वह जेलीज़ (gels) पर काम कर रहे थे, उन्होंने हमें बेरियम सल्फेट जैसे अघुलनशील पदार्थ की जेली बनाकर दिखलाई थी। हम लोग चकित से रह गये थे। रक्त के सीरम पर भी वह काम करते थे। जब मैंने पहली बार उन्हें यह काम करते

देखा, मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। दादा निरामिषाहारी और मैं भी, बकरे का खून हाथ से छूना, उसका सीरम इकट्ठा करना, परीक्षण करना, इत्यादि, मुझे कुछ जँचा नहीं। एक दिन दादा पिपेट से सीरम नाप-नाप कर टेस्ट ट्यूब में भर रहे थे। मैंने देखा, तो दादा से कहा, आपके मुँह में सीरम चला जाये तो धर्म भ्रष्ट हो जायेगा। हम दोनों के मन में कुछ भ्रम-सा हो गया कि जरूर मुँह में सीरम चला जाता होगा। फिर तो सिंक में हम दोनों ने काफी देर तक थूका। इस थू-थू में दादा अपनी बाइसिकल पर अपने जीरो रोड के घर और मैं पैदल अपने होस्टल चला गया।

दादा हमेशा से बड़े ही हँसमुख रहे हैं। जब अगले दिन डिपार्टमेंट के बरामदे में मिले, तो कहने लगे, आत्माराम, तुम्हारे मुँह में कुछ सीरम लग रहा है। अनायास ही बिना सोचे-समझे मैं बरामदे से बाहर थूकने लगा जैसे चोर की दाढ़ी में तिनका। उस समय उधर से डा० धर आ गये। उन्हें आता देख मैं कुछ सहम गया और झट से सीढ़ी से नीचे उतर गया। जिस तरह से मैं नीचे उतरा, डा० धर समझे होंगे, मुझे कुछ हो गया है। उनके पूछने पर दादा ने डा० धर को सब कुछ बतलाया तो डा० धर बहुत हँसे। तुरन्त डा० धर का एम० एस-सी० क्लास था, उन्होंने इसकी क्लास में भी चर्चा की। खूब कहकहा मचा। जब तक डा० धर क्लास को एक बार जोर से हँसा न देते थे क्लास खत्म नहीं होती थी। उनके क्लास व लेक्चर हंसी व गम्भीरता के एक अनोखे मिश्रण होते थे। उस समय के उल्लेखनीय शोध छात्रों में थे—प्रो० ए० के० भट्टाचार्य, प्रो० श्यामेन बनर्जी, प्रो० डब्ल्यू० वी० भागवत, प्रो० जी० गोपाल राव, डा० हीरा लाल दुबे, डा० एन० एन० विश्वास और दादा। आर्गेनिक रसायन में डा० एन० एन० घटक रिसर्च स्कालर थे। कान्ता प्रसाद छात्रवृत्ति पाते थे। सबमें भाई चारा था—वास्तव में गुरु भाई केवल नाम से नहीं। इस समूचे परिवार के केन्द्रबिन्दु थे डा० धर। उन्हें अपने छात्रों से बेहद स्नेह रहा है। लगभग 85 वर्ष के हो गये हैं। अब भी सौभाग्य से जब मिल जाते हैं, उसी चिरपरिचित स्नेह से ढक देते हैं। पुरानी यादों का तूफान उठ जाता है।

1931 में एम० एस-सी० पास करने पर मुझे एम्प्रेस विक्टोरिया रिसर्च रीडरशिप मिली। उन दिनों शोधछात्रों को गर्मियों में केवल एक महीने की छुट्टी मिला करती थी। 1932 की छुट्टियों में जब मैं आया तो होस्टल बन्द थे। मेरे सामने, जब तक जुलाई में होस्टल आबाद न हो, रहने का सवाल था। दादा डिपार्टमेंट में आये हुए थे। दोपहर को सत्तू पार्टी हुआ करती थी - मीठे सत्तू की। मैंने भी सत्तू खाया, मुझे तो अच्छा लगता ही था, गाँव का रहने वाला था। डा० दत्त जी इस समय डिपार्टमेंट में रीडर थे, आर्गेनिक केमिस्ट्री पढ़ाया करते थे। उनके कमरे में एक फ्रिज था, उन दिनों अनूठी चीज। छुट्टियों में इस फ्रिज का बर्फ अक्सर सत्तू के काम आता था। शाम को दादा ने मुझे होस्टल न खुलने तक अपने घर रहने के लिए कहा। मुझे और क्या चाहिये था। दादा मुझे अपनी बाइसिकल पर पीछे बिठा कर अपने घर ले गए। मैं तीन चार सप्ताह उनके पास रहा, उन दिनों वह हठयोग (आसन नहीं) अर्थात् शरीर से हठ किया करते थे। गर्मियों में कम्बल ओढ़ना,

जाड़ों में बाहर सोना। इन दिनों मैं उनके काफी नजदीक आया। उनके घर के सौम्य वातावरण की मुझ पर बड़ी छाप पड़ी। उनके पिता पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय वेदों के प्रकांड पंडित थे, उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक से सम्मानित किया गया था। उनके घर में एक प्रेस था जो उनकी माता श्रीमती कलावती जी के नाम पर "कला प्रेस" कहलाता था। उन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए बहुत कुछ किया। प्रयाग का आर्य कन्या पाठशाला उन्हीं का लगाया हुआ पौधा है। दशहरे की छुट्टियों में भी मैं दादा के घर पर रहा। 1933 की छुट्टियों में मैं डा० सन्त प्रसाद टंडन के साथ रहा। उसी घर में बाद में राजर्षि भारतरत्न पुरुषोत्तमदास जी टंडन के दर्शन हुए और उनका स्नेहपात्र बना।

दादा से कुछ इतनी घनिष्टता हो गई थी कि बहुधा घरेलू समस्याओं पर भी काफी बातें हुआ करती थीं। उन दिनों हम दोनों अविवाहित थे। कुछ लोग कहा करते थे कि दादा विवाह नहीं करेंगे। उनके छोटे भाई विश्वप्रकाश जी का विवाह हो चुका था, उनके बच्चे भी थे। मुझे याद है, लड़के का नाम विमल था। कभी-कभी मुझसे विवाह का प्रसंग भी चला। मैंने यही कहा, मैं एक गरीब परिवार का हूँ, मेरे छोटे भाई पढ़ते हैं। मुझे जब छात्रवृत्ति ही मिलती है, भाइयों का पढ़ना ज्यादा जरूरी है न कि विवाह। विवाह में बड़ा खर्च होता है, जब तक पैसा न जुटे, विवाह का सवाल ही नहीं उठाया जा सकता। विवाह के लिये कर्ज लेने का मैं विरोधी था। मई 1933 में मेरे विवाह की बात पक्की हो चुकी थी मगर इस शर्त पर कि विवाह तब होगा जब कहीं नौकरी लग जाएगी। 1934 में मुझे गवर्नमेंट कालेज, अजमेर में चार महीने के लिए केमिस्ट्री के प्राध्यापक का काम मिला। नवम्बर के अन्त में खत्म हो गया। वहाँ से फिर इलाहाबाद आ गया। मुझे अपना डी० एस-सी० का थीसिस लिखना था। मेरे श्वसुर स्वर्गीय बाबू ज्वाला प्रसाद अवकाश ग्रहण करके इलाहाबाद रहने लगे थे—मुख्यतः अपनी लड़कियों को पढ़ाने के उद्देश्य से। मेरी पत्नी की माता जी मुझसे दो-तीन बार मिलीं। सवाल वही, विवाह करो, सम्बन्ध को किये डेढ़ साल हो गया, नौकरी भी हो गई, चार महीने की ही सही, शर्त तो पूरी हो गई। मेरे लिये बेकारी के समय यह काम बड़ा मुश्किल था और बेतुका था, बिना पैसे के विवाह कैसे हो।

उन्हें यह मालूम था कि दादा के कहने का मुझ पर काफी प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने दादा से कहा। दादा विवाह में अनाप-शनाप खर्चे के विरुद्ध थे। वह मेरे विचार भी जानते थे। मेरी पत्नी के परिवार की समस्या भी जानते थे। मेरी पत्नी सात बहनों में पांचवी थीं, दो छोटी बहनें थीं, यदि इस विवाह में देर होती गई, तो उन दोनों के विवाह में भी देर होगी। उन दिनों कम्प्यूटर तो था नहीं। दादा ने कम्प्यूटर का काम किया। दादा ने मुझसे बात चलाई, मैंने बड़े रोब से कह दिया कि विवाह हो सकता है यदि 100 रु० में सब काम हो जाय। इससे ज्यादा मैं इस काम के लिए खर्च न कर सकता हूँ और न करना चाहता हूँ। दूसरी बात से दादा ज्यादा प्रसन्न हुए। वह अपने विवाह में भी अधिक खर्च नहीं करना चाहते थे, यदि मेरा विवाह 100 रु० में हो जाय तो एक 'पाइलट प्रयोग'

का काम करेगा। दादा का विवाह मेरे विवाह के लगभग दो मास बाद डा० रत्नकुमारी से हुआ जो बाद में आर्य कन्या पाठशाला की अध्यक्षा हुई। जब यह सुझाव मेरी पत्नी के परिवार के सामने रखा गया, तो जाहिर है उन्होंने इसे हँसी समझा, भला ऐसे कहीं विवाह होते हैं। जब कोई रास्ता न दिखलाई दिया, तो वह भी सहमत हो गये। अब सवाल यह था कि 100 रु० में विवाह होगा कैसे। इस मामले में मेरे पिता एक कदम आगे रहे, वह अंगरेजी तो नहीं पढ़े थें, परन्तु उनके विचार बड़े आधुनिक व रचनात्मक थे। मेरे इस सुझाव पर उन्होंने मुझे लिखा कि उनके भी इलाहाबाद आने की जरूरत नहीं, न परिवार के किसी और की, मैं और छोटा भाई स्वर्गीय लक्ष्मी जो उस समय ईविंग क्रिश्चियन कालेज में आई० एस-सी० का छात्र था, विवाह करके घर आ जायें।

26 दिसम्बर 1934 का दिन तय हो गया। दादा के घर से सब कार्यक्रम हुआ। बारात में केमिस्ट्री डिपार्टमेंट के प्राध्यापकगण, प्रो० के० पी० चटर्जी, डा० सत्येश्वर घोष, डा० भट्टाचार्य, शोधछात्र, इत्यादि सब मिलाकर, तीस-चालीस बाराती गये। [प्रो० चटर्जी की फोर्ड कार दूल्हे के लिए। दादा के घर से बारात चली। दादा ने बाजा भी बजवाया। डा० धर साइंस कांग्रेस के लिए इलाहाबाद से बाहर गये हुए थे। दादा वर पक्ष के पुरोहित बने। उनके छोटे भाई विश्वप्रकाश जी वधू पक्ष के। दादा बड़े उत्साह से सब कार्यक्रम करा रहे थे। विवाह संस्कार सबको अच्छा लगा। प्रो० चटर्जी व डा० सत्येश्वर घोष ने उस अवसर पर आशीर्वाद हेतु कुछ भाषण भी दिया था। मेरे श्वसुर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि इस तरह विवाह हो जाये तो बहुत ही अच्छा है। उन्होंने कहा कि वह समझते थे कि डी० एस-सी० साहब (वह डिग्री मिलने से पहले ही मुझे इस नाम से पुकारा करते थे) 100 रु० में विवाह करने की बात करके हंसी कर रहे हैं, मामले को टाल रहे हैं। स्वयं मुझे भी यह ख्याल नहीं था, इतनी आसानी से हो जाएगा, इसका विरोध नहीं होगा। कुछ प्रशंसा ही हुई।

इस प्रकार दादा हमारे पुरोहित बने। उन्होंने बड़ी उच्च भावनाओं से सब कुछ संपन्न कराया। इस बात को इकतालीस वर्ष से अधिक हो गए हैं। हमारा वैवाहिक जीवन बड़ा सुखमय, शांतिपूर्ण रहा। क्या यह इस बात का ठोस प्रमाण नहीं है कि दादा को पुरोहिताई अच्छी आती है। दक्षिणा के नाम पर तो दादा को कौड़ी भी नहीं मिली। उल्टा उनका खर्च ही हुआ। दादा ठहरे न। मेरा कोई बड़ा भाई था भी नहीं। इस विवाह से वह बड़े प्रसन्न थे। शायद इसलिए कि उनकी योजना, उनका प्रयोग सफल हो गया। जब जब दादा हमारे यहाँ पधारते हैं, अक्सर उनके पुरोहित होने की बात छिड़ जाया करती है। हम सदैव उनके आभारी रहेंगे।

आदर्श विज्ञानाचार्य

• ओंकारनाथ शर्मा

विज्ञान परिषद से मेरा परिचय विज्ञान' पत्र के माध्यम से सन् 1915 से ही रहा है, लेकिन घनिष्टता स्वर्गीय प्रो० श्री रामदास जी गौड़ के कारण सन् 1930 से बढ़ी और उनके द्वारा ही स्वर्गीय प्रो० शालिग्राम जी भार्गव, स्वर्गीय डा० गोरख प्रसाद जी और डा० सत्य प्रकाश जी से घनिष्ट परिचय और प्रेम बढ़ा। वास्तव में इस समय मेरा जीवन, जैसा और जिस स्थिति में है वह प्रो० रामदास जी गौड़ के आशीर्वाद से ही है। प्रो० गौड़ के जीवन में विद्वत्ता का जो अद्भुत तेज, रहन सहन में अत्यंत सादगी, निरभिमानता और भारतीय भावनाएं जो कूट-कूट कर भरी देखीं, उनके बाद उन्हीं सद्गुणों के दर्शन बहुत कुछ, डा० सत्यप्रकाश जी के व्यक्तिगत जीवन में मिले, जिसके कारण ही मेरा उनसे प्रेम सम्बन्ध बढ़ा। मैंने अनुभव किया कि भारतीय संस्कृति के गौरव की भावना लिये हुये वे एक आदर्श विज्ञानाचार्य रहे हैं। ऐसे आदर्श व्यक्ति के लिये, जीवन के अंतिम दिनों में, चतुर्थाश्रम ग्रहण करना सर्वथा योग्य ही है। आधुनिक विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को स्वामी सत्य प्रकाश जी के आदर्श जीवन को अपने मानस पटल पर दृढ़ता से अंकित कर अपने जीवन को उसी के अनुरूप बनाना चाहिए।

संत जनों के उत्तम जीवन, ऊँचे स्वर से कहें पुकार
तुम भी अपना जीवन जग में, कर सकते हो इसी प्रकार

मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि स्वामी जी शतायु हों और अपने शेष जीवन में, कम से कम, उपनिषदों और ब्रह्मसूत्र पर वैज्ञानिक भाष्य अवश्य लिखें।

मैं यह कहना आवश्यक समझता हूँ कि आधुनिक विज्ञान की प्रगति और प्रतिक्रियायें जिस प्रकार हो रही हैं उनसे तो इस दुनिया में हिंसा, द्वेष, घृणा, असत्य, चोरी, वृथाभिमान, दुराचार, व्यभिचार आदि फैल रहे हैं। लोगों में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति हीनता की भावना बढ़ रही है। चाहे कोई माने या न माने आज मानव जाति सुखी नहीं है। यदि स्वामी जी जैसे महान मेघावी पुरुष प्रयत्न करें तो भारतीय दर्शन और धर्म का आधुनिक विज्ञान और पाश्चात्य दर्शनों के साथ समन्वयात्मक साहित्य सृजन कर आधुनिक मानव समाज की सेवा कर सकते हैं।

● ● श्रद्धा पुष्प ● ●

डा० सदगुरु शरण निगम
अध्यक्ष, रसायन विभाग,
सागर विश्वविद्यालय

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती जी का प्रभावशाली व्यक्तित्व मुझे हर समय प्रभावित करता रहा है तथा मेरा प्रेरणा स्रोत रहा है। स्वामी जी से मेरा परिचय, एक विद्यार्थी के नाते सन् 1938 में हुआ, जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० एस-सी० प्रथम वर्ष का छात्र था। 1941 में, मैं एम० एस-सी० पूर्वार्ध (रसायन) का छात्र बना, उस समय स्वामी जी हमें भौतिक रसायन पढ़ाते थे। उनका व्यक्तित्व अधिक वैभवशाली है और इसी कारण मेरे मन को उनके प्रति श्रद्धा ने घेर लिया है।

स्वामी जी का हिन्दी प्रेम बेजोड़ है। शायद वह पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने हिन्दी को अपने वैज्ञानिक चिन्तन का माध्यम बनाया। स्वामी जी का हिन्दी के साथ-साथ आंग्ल भाषा पर समान प्रभुत्व है। जब वे हमें पढ़ाते थे तो अपने हिन्दी लेखों का निरंतर आंग्ल भाषा में भाषांतरण करके विषयों को समझाते थे। उस समय देश में हिन्दी भाषा, विज्ञान शिक्षण का माध्यम न बन सकी थी। स्वामी जी के विचार में विदेशी अंग्रेजी पुस्तकों के भाषांतरण में अन्धानुकरण उचित नहीं है, वे सदैव हिन्दी में ही विज्ञान के मौलिक चिन्तन को उचित मानते रहे हैं। उन्होंने प्रत्येक वैज्ञानिक को इसी पर ही कार्यान्वित होने का आदेश दिया है तथा प्रेरित किया है।

मुझे भारत सरकार की वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के स्थायी आयोग की रसायन विशेषज्ञ परामर्श दात्री समिति में तथा अन्य क्षेत्रों में उनके सहयोगी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके बिरले व्यक्तित्व को आत्मसात करने का मैंने हर समय प्रयत्न किया है।

कभी स्वामी जी के साहित्य पर शोध-ग्रन्थ लिखे जायेंगे

● डॉ० ऊषा ज्योतिष्मती
इलाहाबाद

मैं हूँ भावुक भक्त। नाम तो डॉ० सत्य प्रकाश जी का मैं बचपन से ही घर वालों से सुनती आ रही थी, मेरी पूज्य कर्म वीरांगना प्रिंसिपल डॉ० रत्न कुमारी जी के पति होने के कारण भी और परिवार के प्रत्येक बड़े उत्सवों में आमंत्रित होने के कारण भी पूर्वपरिचित थी। परन्तु जब मैं 16 वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार होने के कारण आर्य समाज चौक में प्रथम बार गई और डाक्टर साहब के व्याख्यान सुने,—एक विज्ञान वेत्ता के मुख से वेद, उपनिषद् की सुन्दर व्याख्या सुनी—तो सचमुच मेरा हृदय श्रद्धा से अभिभूत हो गया। उनके सुमधुर तार्किक व्याख्यान द्वारा यज्ञोपवीत का महत्व सुनकर मैं भाव-विभोर हो चुकी थी।

इसके बाद युनिवर्सिटी में रसायन विभाग में अक्सर मिलना हो जाता था। उस समय मैं एम० एस-सी० में पढ़ती थी। हर विद्यार्थी के प्रति उनका 'वात्सल्य-भाव' देख कर मेरा मन भी उनके निकट आने को ललकने लगा। रिसर्च स्कालर हो जाने से एक आत्म-विश्वास की भावना मुझ में आ गई। कभी कभी मामा जी के साथ इनके घर गई और घनिष्टता बढ़ा ली। विश्वविद्यालय और आर्य समाज मन्दिर ने इसमें मेरी बहुत सहायता की।

एक दिन जन्माष्टमी के दिन मैं इनके घर गई। उन दिनों जन्माष्टमी के दिन मैं उपवास रखा करती थी। डॉ० सत्य प्रकाश जी का उसी दिन जन्म दिवस था। आर्य समाजी तो उपवास आदि रखने से सहमत नहीं होते। उपवास का सम्बन्ध कभी भी ईश्वर से नहीं होता, परन्तु मैं कुछ अज्ञानवश आस्तिकता समझ कर रखा करती थी। डॉ० सत्य प्रकाश ने बहुत प्यार से मेरे मुख में मेवे की खीर डाल दी और जन्म दिवस की

खुशियाँ मनाईं। सन्ध्या को आर्य समाज मन्दिर चौक में उनका व्याख्यान भी सुना। उस दिन मैंने जीवन में प्रथम बार कृष्ण का सुन्दर स्वरूप सुना, श्रीमद्भागवत का कृष्ण, और गीता के कृष्ण की सुन्दर समालोचना सुनी। जब उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा कि गीता उपनिषदों से उधार ली गई है, उपनिषदों ने जो कर्मफल का सिद्धान्त बताया —

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छेत हि समा:
एवं त्वयि नान्यथेतो अस्ति न कर्म लिप्यते नरे। (ईशो० - 2)

सम्पूर्ण गीता का कर्मफल इसी पर आधारित है। इसी प्रकार से कठ, मुण्डक, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वेतर एवं मैत्रेयी उपनिषदों के उदाहरणों से जब गीता के श्लोकों की तुलना की, उसकी यथार्थ मीमांसा की, तो मेरी आँखें श्रद्धा से छलछला गईं।

आर्य समाज के अनेक उत्सवों पर एवं सत्संग पर मैं जाने लगी और दूर-दूर के प्रदेशों से आए हुए जाने-माने विद्वानों एवं मिशनरियों के प्रवचन एवं विद्वतापूर्ण व्याख्यान सुनने लगी। किन्तु जो आनन्द स्वामी जी के व्याख्यान में मिलता, वह अवर्णनीय होता।

जब स्वामी जी महातत्व (Cosmic Intelligence) जैसे गूढ़ व जटिल विषय को अपनी तार्किक विज्ञानमयी भाषा में सुगम बना देते तो सचमुच मुझे बहुत आश्चर्य होता। इस महातत्व द्वारा टेलीपैथी (Telepathy) का सजीव चित्रण आस्तिकता से देकर ईश्वर का दर्शन उन्होंने दिया। वे गूढ़ से गूढ़ विषयों को लेते हैं और व्यावहारिक उदाहरणों एवं विद्वतापूर्ण वैज्ञानिक तर्कों से उसकी पुष्टि कर देते हैं, तो हृदय गद्गद् हो उठता है।

ईश्वर के सम्बन्ध में भी जब वे बातें करते हैं तो उसमें भावुकता का पुट न होकर यथार्थता की अधिकता होती है। वे सदा यही कहते हैं कि कलाकार का दर्शन उसकी कला में ही हो सकता है अन्यत्र नहीं। तुलसी को अगर देखना है तो रामायण की सुमधुर पंक्तियां पढ़ो, खूबसूरत मूर्तियाँ कलाकार का साक्षात् दर्शन देती हैं। ईश्वर अपनी सृष्टि में पुकार पुकार कर अपने अस्तित्व की झांकी देता है: फिर भी हम नादानी करें तो उसकी बुद्धि पर तरस आता है। इस प्रकार स्वामी जी की वाणी श्रोताजनों के हृदय-सरोवरों को सराबोर कर देती है।

मैंने उन्हें कभी भी व्याख्यान देने के पूर्व कुछ भी तैयार करते नहीं देखा। केवल गूढ़ दार्शनिक तत्वों पर बोलने के दो मिनिट पहले समाधिस्थ होकर बैठ जाते हैं। जैसे पातंजलि-राजयोग के व्याख्यान के पहले मैंने कभी भी उन्हें पातंजलि योग की किसी पुस्तक को पलटते हुए नहीं पाया। बस सोते-सोते पड़े सोचते ही देखा है और वह भी पता नहीं पातंजलि योग ही पर विचार करते होंगे अथवा जिस पुस्तक को लिख रहे हैं उसके बारे

में विचार कर रहे हैं। परन्तु व्याख्यान जब देते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे साहित्य पर स्वाध्याय करके बोल रहे हों।

उनकी एक विशेषता व्याख्यान देने की और भी है — मान लीजिए यदि उन्हें पातंजलि राजयोग पर कोई पोथी लिखनी है तो वे पहले व्याख्यान दे लेंगे। उनका विचार है कि व्याख्यान दे देने के बाद नवीन विचार आते हैं फिर उसके बाद पुस्तक लिखने में सरलता पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वे साधारण विद्वानों और लेखकों से भिन्न हैं। लोग पहले लिखते हैं, सोच विचार कर दार्शनिक गूढ़ तत्वों के मर्म को लिखते हैं फिर उसके ऊपर व्याख्यान देते हैं परन्तु उनकी शैली समाधि पर निर्भर होती है और यही कारण है कि उनके विचार इतने सुलझे होते हैं। दकियानूसी अथवा कट्टरतापूर्ण विचार उनके व्याख्यान एवं लेखन में बिलकुल भी नहीं होते। साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय सभी प्रकार की संकीर्णताओं को परे हटाकर मानवमात्र की सभी सीमाओं को खुली आँखों से दृष्टिपात करते हुए ही उनकी रचनायें मुखरित हुआ करती हैं। अपने स्वतः व्यक्तित्व के साथ ही साथ इस उदारता का श्रेय स्वामी जी की श्रद्धा, महर्षि दयानन्द जैसे युग पुरुष की प्रेरणा भी है। स्वामी जी महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ-प्रकाश में कहे गये सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उदात्त रहना चाहिऐ वाक्य को सदैव अपने मन में संजोये रहते हैं। महर्षि दयानन्द ने तो यहाँ तक कह डाला कि जो कुछ मैंने कहा है उसे भी ब्रह्स् वाक्य मत समझना और वेद मन्त्रों के अर्थ जो मैंने लिखा है उसमें भी समय और काल को देखते हुए विकास को दृष्टि में रखते हुए परिवर्तन किया जा सकता है।

वैज्ञानिक और वैदिक साहित्यों की एक जैसी तत्परता का बाहुल्य शायद ही किसी व्यक्ति में हो। परन्तु इनका त्याग और तपस्या इन दोनों साहित्य के लिए एक दूसरे से बढ़ कर ज्ञात होती है। मैंने अपने जीवन में अभी तक ऐसा व्यक्ति नहीं पाया जिसने वैदिक साहित्य को वैज्ञानिक विचारों से इतना परिष्कृत कर दिया हो। विज्ञान का अध्यात्मिकीकरण और धर्म, वैदिक साहित्य का वैज्ञानिकीकरण करने में आपका योगदान अपूर्व है।

एक जो अनूठी विशेषता मैंने उनमें देखी वह है दूसरों को विचारों की स्वतंत्रता देने की। बहुत से स्वतन्त्र विचारों के लोग ऐसे भी इतिहास में हुए हैं जो स्वयं तो स्वतंत्र विचारों का पुट लिये होते हैं और उनको यह अच्छा भी लगता है परन्तु ऐसे स्वतंत्र विचारक कोई दूसरा व्यक्ति स्वतंत्रता-पूर्वक विचार-विमर्श करे तो पसन्द नहीं करते। परन्तु स्वामी जी इसके एकदम विपरीत हैं। स्वतंत्र विचारक होते हुए भी उनमें उदारता गजब की है। अपने विचार कभी भी किसीं पर लादने की बात तक नहीं करते। उनके विचार जब तक आप सुनने के लिए आग्रह नहीं करेंगे, जब तक कोई उनसे सुझाव परामर्श मांगेगा नहीं, वे मौन रहेंगे। अपने से छोटों, अपने मित्रों अथवा अपने शिष्यों को उन्होंने किसी प्रकार के त्याग व वैराग्य का आदेश नहीं दिया। वह जीवन की सारी

नैतिकता त्याग और वैराग्य का अनुबन्ध सब अपने लिए ही करते हैं। हाँ उनके निकट वाले अगर उनसे प्रेरणा पाकर स्वतः ही अपने जीवन को सँवार लें, अपनी आध्यात्मिक उन्नति स्वयं ही उनके समीप उनके जीवन से प्रेरणा पाकर कर लें तो ऐसे परिवर्तन को वह कहीं अधिक महत्व देते हैं।

उनकी उदारता का वर्णन जितना किया जाय उतना ही कम है। "नेकी कर कुएँ में डाल" वाली कहावत ही नहीं अपितु बायें हाथ से दे और दाहिने हाथ को भी पता नहीं लगना चाहिए यह उक्ति उनके ऊपर लागू होती है। वे जब किसी की सहायता करते हैं तो इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं कि लेने वाले की आत्म-विश्वास भावना को जरा भी ठेस न पहुँचे, हीनता या एहसान की भावना से वह जरा भी मलिन न होने पाए। ऐसा गुप्तदानी मैंने तो अपने जीवन में नहीं देखा।

पुस्तक लिखने में वे सिद्धहस्त हैं। इन्डालाजी का विद्यार्थी जब इन्डालाजी पर उनकी पुस्तकें पढ़ता है तो वे भी अपने आपमें पूर्ण होती हैं। इन्डालाजी का पाठक समझता है कि स्वामी जी का विषय विज्ञान का इतिहास है। इनका प्रौढ़ साहित्य, भारतीय दर्शन, प्राचीन वैदिक वाङ्मय एवं वैदिक साहित्य के क्षेत्र से भी सम्बद्ध है। वैदिक साहित्य में रुचि रखने वाला स्नातक और आर्य समाज का पंडित जब इनके साहित्य के दर्शन करता है तो वह भूल जाता है कि यह संस्कृत के किसी विद्वान स्नातक की कृति न होकर विज्ञान के प्रोफेसर की रचना है। संस्कृत साहित्य के पंडित उनको मौलिक विचारों में अपना बड़ा भाई मानते हैं।

सन्यास ले लेने के बाद से युनिवर्सिटी के उनके छात्र व साथ के प्रोफ़ेसरों को भी मैंने अक्सर यह कहते हुए सुना कि डॉ० सत्य प्रकाश को यह अचानक क्या हो गया जो रसायन शास्त्र छोड़कर प्रवचन देने लगे। उनको इसका अनुमान भी नहीं है कि स्वामी जी संस्कृत और वैदिक साहित्य के बहुत बड़े पंडितों में गिने जाते हैं। इसी प्रकार उन्होंने आपस्तम्ब शुल्व सूत्र, बौधायन शुल्व सूत्र जैसे ग्रन्थों की टीका करके अपने विस्तृत ज्ञान का परिचय दिया है।

इतना ही नहीं, शायद उनके सुकोमल कवि हृदय से बहुत ही कम लोग परिचित हों। वे कवितायें भी लिखते हैं। अपने बाल्यकाल में ही कई उपनिषदों का पद्यानुवाद कर डाला। 'प्रतिबिम्ब' नामक एक पुस्तक कविता में लिखी है। यह रचना भी युवावस्था की ही है। उनके साहित्य की एक विशेषता है, प्रत्येक ग्रन्थ की अपनी भूमिका। भूमिका की छटा तो बस अनिर्वचनीय ही होती है। भूमिका स्वयं में एक पृथक पुस्तक होती है। शतपथ ब्राह्मण की ग्रन्थमाला में तो एक माला पूरी भूमिका की ही है। इसी प्रकार मानक हिन्दी-अंग्रेजी-कोश सर्वप्रथम प्रौढ़ कोश है।

आजकल मूर्धन्य वेद और संस्कृत [के मनीषियों ने चारों वेद का सरल अंग्रेजी

अनुवाद का भार उनके कन्धों पर सौंप रखा है। सारे उपलब्ध कोशों की सहायता से एक उपलब्ध भाष्य की उक्तियों से पृथक यह वैज्ञानिक तीखी विशुद्ध आत्मा की सहायता से बौद्धिक अर्थ निकाल कर सामने रख देता है। इस समय साथ में संस्कृत के मर्मज्ञ पं० सत्यकाम विद्यालंकार उनके साथ विचार-विमर्श के लिए और काम को आगे बढ़ाने में तत्पर रहते हैं। बहुत से प्रादेशिक वेद सम्मेलनों में उन्हें अध्यक्ष पद पर बुलाया जाता है। अध्यक्षीय भाषण में सदा ही अपनी निरभिमानता का परिचय सरल शब्दों में कर देते हैं कि मैं संस्कृत और वेद का विद्वान नहीं हूँ।

भाषा विज्ञान में उनका ज्ञान भी अपूर्व है। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उनका समान अधिकार है। दोनों भाषाओं का इतना परिष्कृत ज्ञान एक साथ बहुत कम व्यक्तियों को प्राप्त है। साहित्य के क्षेत्र में उनके तप एवं त्याग का परिचय तो उस समय मिलता है जब वे साहित्य का सृजन दुर्लभ अप्राप्य विशेष भाषा में करते हैं। यह उनका राष्ट्रीय प्रेम का प्रतीक है; अपनी प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति से लगाव का प्रतीक है, दुर्लभ साहित्य को प्राण देने की साधना है।

वैदिक साहित्य को पढ़ने वाले अधिकांश लोग अंग्रेजी से अनभिज्ञ होते हैं; संस्कृत और हिन्दी के पंडित होते हैं। आर्य समाज और दूसरी धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने वाली जनता हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं का ही प्रयोग करती है। अतः इन्हीं भाषाओं में इनके साहित्य प्रचुरता में उपलब्ध हैं। परन्तु स्वामीं जी को अपनी संस्कृति एवं वैदिक साहित्य का परिचय विश्व भर को देना है और राष्ट्र का गौरव बढ़ाना है।

इस मानव शिल्पी का जीवन ग्रहणीय है। वे अपनी स्तुति कभी नहीं चाहते। वे अपने निन्दक को भी प्यार व सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं। वे अत्यन्त मधुरभाषी एवं सरल हैं। वे सभी शिष्य धन्य हैं जिनको आपसे आशीर्वाद मिला।

स्वामी जी के आलोचक व्यक्तित्व की एक झलक

● शुकदेव प्रसाद

हिन्दी को विज्ञान के पठन पाठन का माध्यम बनाने में स्वामी जी का प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। ऐसे लोगों में, जिन्होंने विज्ञान शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी को प्रोत्साहित किया है, स्वामी जी अग्रणी हैं। उनके कार्यों को देखते हुये यह कहना भी अनुचित न होगा कि इस क्षेत्र के वे अधिकारी विद्वान हैं एवं उनका इस क्षेत्र में एकाधिकार भी है।

स्वामी जी ने प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर एम० एस-सी० तक की पुस्तकें विद्यार्थियों की सुविधा के लिए तैयार की हैं। पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त पाठकों की रुचि को भी ध्यान में रखकर तमाम हिन्दी ग्रंथ उनकी लेखनी से प्रसूत हुए हैं जिनमें प्राचीन भारत में रसायन का विकास, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा एवं वेदों पर अश्लीलता का आक्षेप प्रमुख हैं।

सिद्धहस्त लेखक के अतिरिक्त स्वामी जी कुशल वक्ता, वैज्ञानिक एवं प्रतिष्ठित सम्पादक के रूप में विख्यात हैं। इनके अतिरिक्त स्वामी जी की विशेषता है स्वामी जी का आलोचक व्यक्तित्व।

विषय के अतिरिक्त भाषा पर भी स्वामी जी का अधिकार है। अतः स्वामी जी से बात करते समय यदि शब्दों के प्रयोग, उच्चारण की भूल किसी से हो जाय तो उसे अविलम्ब टोकना वे नहीं भूलते हैं।

दो प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं जिनसे स्वामी जी के आलोचक व्यक्तित्व एवं भाषा पर उनके अधिकारिक पक्ष पर प्रकाश पड़ता है।

उन दिनों 'विज्ञान प्रगति' के जून 1973 अंक में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। शीर्षक था 'सूरजमुखी : खाद्य भी, औषधि भी'।

बात जब शब्दों के प्रयोग और भाषा पर चल पड़ी तो स्वामी जी ने मेरा ध्यान उक्त लेख के शीर्षक में एक त्रुटि की ओर आकृष्ट किया। कहने लगे : आज न तो लेखकों को भाषा का ठीक ज्ञान है और न ही सम्पादकों को।

उक्त शीर्षक में औषधि शब्द की ओर ध्यान केन्द्रित कराते हुए स्वामी जी ने बताया शुद्ध शब्द है— ओषधि या औषध न कि औषधि। औषध से ही औषधालय शब्द का निर्माण हुआ है।

स्वामी जी के अभिनन्दन ग्रंथ की तैयारी हम लोग कर रहे थे कि कुछ आवश्यकता वश एक दिन उनके पास जाना पड़ा। औपचारिक वार्ता के बात मैंने कहा, 'डाक्टर साहब (डा० शिव गोपाल मिश्र) आपके अभिनन्दन ग्रंथ निर्माण की तैयारी में बड़ी तन्मयता से लगे हुये हैं।'

'उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है · · · स्वामी जी ने कहा। वे और कुछ कहते कि इसके पूर्व ही मैंने कहा; 'स्वामी जी, ऐसा न कहें। उनकी कृपा तो नहीं, हाँ श्रद्धा अवश्य है।'

'उनकी बात छोड़ो, बोलो तुम्हारी मेरे ऊपर क्या है? स्वामी जी ने बीच में ही टोका। ' मेरी भी आपके प्रति श्रद्धा है' मेरा उत्तर था। 'ऐसी बात नहीं है बेटा ! देखो, तुम लोग शब्दों के सही प्रयोग पर ध्यान नहीं देते हो।' इतना कहकर स्वामी जी ने श्रद्धा के सही प्रयोग के बारे में यों बताया।

श्रद्धा शब्द का निर्माण हुआ है दो शब्दों—'श्रत्' और 'धा' से।

श्रत् यानी सत्य, और धा यानी धारण किया।

'मानव की वह प्रकृति जो उसे उसके जीवन में सत्य धारण की ओर प्रेरित करे, श्रद्धा है।

'That character of man which involves him to accept truth in his life in Shraddha.'

अर्थात मेरे अन्दर जो सच्चाई है, उसे यदि तुम धारण करो तो तुम्हें कहने का अधिकार है कि मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धा है, अन्यथा नहीं। लेकिन प्रश्न तो इस बात का है कि सच्चाई मेरे अन्दर है या नहीं। अतः इसकी परख करके ही किसी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट करो। मान लो किसी व्यक्ति के आचरण में ढेरों व्यसनों का समावेश है तब तो उससे यह कहना कि आपके प्रति मेरी श्रद्धा है, बड़ी भारी भूल होगी।

स्वामी जी
और
आर्य समाज

⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙

देश
और
विदेश
से
प्राप्त
संस्मरण

⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙

My experiences with

Swami Satya Prakash Sarasvati

I first met Swami Satya Prakash Sarasvati(then Professor, retired Head of the Department of Chemistry at the University of Allahabad) on the 25th of September, 1969, when he was on visit to South Africa. We, four members of Pretoria Hindu Seva Samaj, went to Johannesburg by a car to bring him Pretoria, when it was decided that he will put up residence at my home. First I had a little doubt as to whether I will be able to fit acceptably in company, but after greetings and a little conversation my fear disappeared. His personality is such that people are attracted to him and would consider pleasure to have a few words with him. Whenever he is amongst people, he becomes the central figure and every one expects to hear something from him.

His unexcited and calm personality commands respect of people and creates atmosphere of calm and confidence. His first lecture in Pretoria in the Marriman Temple Hall, titled IMMORTALITY OF THE SOUL was very highly praised by intellectual listeners, and was equally appealing to the lay men. His way of dealing with the subject he wants to present to the audience is so clear and expressive that there is no ambiguity about what he has said. It is not high sounding and lengthy phrases which bring confusion in arriving at clear meaning, but simple, short, easily understandable and penetrating. When he speaks to an audience, either in English or Hindi, the flow of the language is so smooth and uninterrupted that one will be induced to imitate his way of presentation of subjects.

Any subject, religious, spritual, social or educational, he picks up is dealt with scientific approach, with the result that the subject is clearly understood and leaving a long lasting impression, for the binding blocks of his subject-construction are bounded by the scientific cement.

His tolerance is also extraordinary. I was in his company for about 6 days in 1969 and 10 days in 1973, but I have never noticed him to be upset or angry at any time.

Never has he shown any sign of displeasure, although, we must remember, during that period he must have been subjected to unsuitable conditions, such as food, sleeping accomodation and transport etc,, no matter how careful the host is to provide his requirements. He never complained.

One will always learn from his sympathetic way of approach and the solution to the difficult problems. One day, among other topics, I happen to mention the different interpretations given in different GITAS to the meaning of the Sanskrit words, adjectives, APARYAPTAM and PARYAPTAM in GITA Adhyay 1, Shlok 10. In the Gorakhpur Gita Duryodhan says our army in sufficient and inconquerable, in Pancharatna Gita he says our army is insufficient and can be conquered. I was very crtifical of these different interpretations, but the Swamji replied to that : you will come to notice more of these discrepancies, but what is important is to arrive and accept the meaning as a whole and act accordingly. I have since become more tolerant. There was another incidence : I have a 100 year Calendar book, Swamiji said his birth date is on 24-8-1905, what Vikram Samvat date was in the book. Looking into the book I said Shravan Vad Naumi, 1961. He was a little surprised, for he knew his birth date was in Bhadrapad Vad, 1962, but he immediately recollected that in the northern part of India, the year changes in chaitra and the month on Purnima, and therefore the difference. The same tolerance was shown without any adverse comment.

I have benefitted from his company. He having seen a few books in my collection in 1969, encouraged me to carry on collecting more books of the same type, thanks to him, I have today in my library English, Afrikaans, Sanskrit, Hindi and Gujrati books small and large totalling nearly 1000.

He is the author of two great and some small books, and co-author of many valuable books from which people will benefit. May Almighty God bless him with good health and long life to bring such good works into being.

Kalyanjee Valjee

88, Boom Street,
PRETORIA.
16/12/1975.

REMINISCENCES

In November 1973 I had the honour of meeting Swami Satya Prakash Sarasvati in a small group. We had a discussion of over an hour : on physics and on languages. We talked about those roots of words which are similar in Indian and in Western languages and I was struck by Swami's great knowledge in that field too. Then we spoke a little on physics and astrophysics, as well as on the work by Indian astronomers, known in the West. Atomic physics, with which Swami had occupied himself, and celestial mechanics, part of which is my field, have many concepts in common, for instance precession, which, in the microscopic world, shows itself as Larmor-precession, mentioned by Swami, in the electron orbits around their atomic nucleus, and, in the macroscopic world, as top spin of celestial bodies themselves as well as of their orbital planes.

All the time, when discussing with Swami, I had the confidence, that he and his partners in conversation, including me, felt one, and that, in every topic, points of correspondence and of similarity were sought rather than of difference.

J. Wolterbeck
Lecturer Astronomy
University of South Africa
Pretoria

1975, Dec. 11.

SWAMIJI SATYA PRAKASH SARASWATI

(Tribute to a great scholar and sanyasi)

During the years 1909-1912, the Hindu community in South Africa were fortunate to have had the Darshan of a great a dymanic Sanyasi Swami Shankaranandji who came to this land to propogate to the masses on Hindu and Vedantic philosphy.

When Swami Shankaranandji met the children of the early Indian settlers he soon realised these people were slowly forgetting the glories of their cultural heritage.

He immediately desired that institutions and religious societies wer necessary to keep the community together and was instrumental in estab lishing various Dharmic Sabhas throughout the country.

This new awakening caught the imagination of the Hindus and today we are extremely grateful to witness the preservation of our culture and customs which is evident among the Tamil, Gujarati and Hindi speaking people of South Africa.

Over the past 75 years, many Philosophers and Pracharaks came to South Africa to enlighten the masses and to keep the spiritual flame burning.

Among these saintly torch-bearers was a great son of the Arya Samajist movement Swami Satya Prakash. Before he took the vow of Sanyas, we knew him as Professor Satya Prakash and was held in high esteem by all who met and heard his discourses on Science and religion.

During his tour he gave a series of lectures at English and Afrikaans Universities and was acclaimed as a great scholar.

It was in 1960, the centenary year of Mahatma Gandhi, where he expounded the history on the life and works of the great Mahatma. Swami Satya Prakash's simplicity was greatly admired by people of various races, he always wore the traditional Indian costume Dhoti and white cap. In recent years, we saw the transformation of a great professor to that of a

humble Swami, always cheerful and radiant and most loving to his little children.

We in Port Elizabeth were most fortunate to have had Swami being the first holy person to have entered our newly built temple. Swami realised the absence of murtis and upon enquiring, he was told that Port Elizabeth is one of the strongholds of the Arya Samaj movement, and though the temple will have the 'murtis' adoring the walls as symbols, it will not be used for worship. Swami Satya Prakash suggested that murtis of the great Rishis such as Gautam, Kannad, Patanjali, Manu, Agastya, and Viswamitra be represented instead of deities.

Our city of Port Elizabeth is somewhat historically linked with India This city was after lady Elizabeth who was the wife of the then governor of the cape Sir Rufane Donkin. When lady Elizabeth visited Indi a in 1818 She died there and was buried at Meerut near Allahabad. Swamiji was informed about this grave and was asked by the Mayor and the historical society of Port Elizabeth to obtain further information when he returned to India.

In India, he immediately investigated the matter and advised the council that he had located the grave site but that its condition was in a neglected state.

Through Swamijis efforts, the historical society negotiated with the British High Commissioner in India to restore the condition of the site.

We in Port Elizabeth are pleased to associate ourselves with the publication of the commemmoration volume on the occasion of the 70th birthday of Swami Satya Prakash Saraswati. It is our fervent prayer that this great son of Bharat be blessed with long life and good health.

We also wish to extend our congratulations to the Vijnana Parishad of Allahabad for the publication of this magnificent commemmoration volume on the life of Swamiji.

Mohanlal M. Bulsara
Chairman

S. A. Kshatriya Educational Trust.
16, Parliament Street,
Port Elizabeth. S. A.

My Impresion of
Svami Satya Prakash Sarasvati

I met Svami ji first in 1969 as a Professor and again in 1973 as a Sanyasi Svami ji.

He impressed very favourably those Professors and Scientists who had discussions with him on Science, the subject on which he has very vast knowledge, and the way he can explain it very clearly.

I was in constant touch with Svami ji on both the occasions when he was in Pretoria. I very much enjoyed his company and wished he stayed much longer with us. I hope the world will benefit from his vast knowledge of Science.

A. Desai

303, 5th Avenue,
Laudium, Pretoria.
17-12-75

डाक्टर शिव गोपाल जी,

चलती हुई गाड़ी में मैंने स्वामी जी के बारे में कुछ लिखा है।

ऐसे वातावरण में ध्यान स्थिर नहीं रह सकता फिर भी दूसरा समय मिलना मुश्किल है क्योंकि जब हम गाड़ी से उतरते हैं तो बहुत कुछ देखना और करना पड़ जाता है।

आप जो कुछ मेरे लेख से काटना चाहते हैं उसमें आप स्वतंत्र हैं।

आपका स्नेही
शिशुपाल

चलती गाड़ी—कलकत्ता-मद्रास

(लेख आगे देखें—सम्पादक)
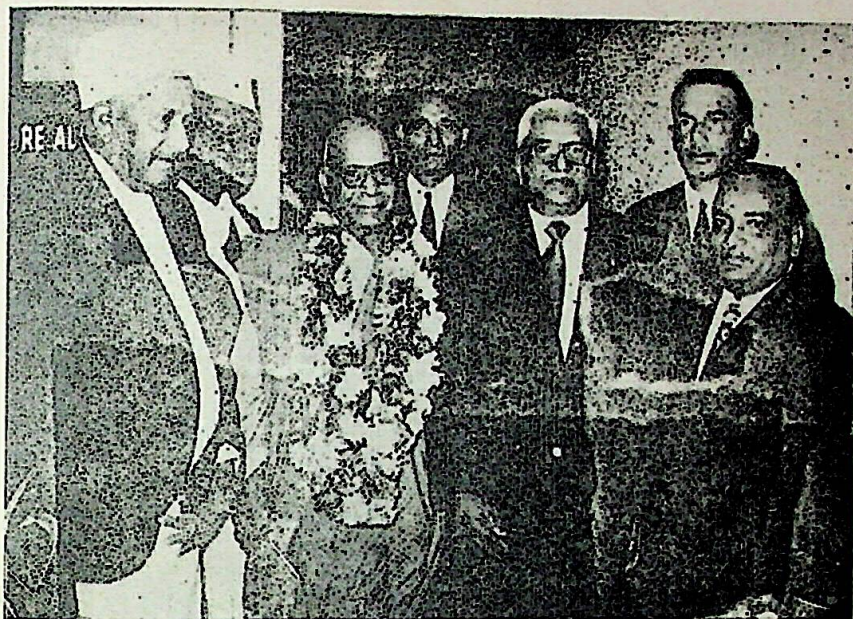
मारीशस हवाई अड्डे पर (१५ अगस्त १९७३) मोहन लाल मोहित तथा
डा० शिवसागर राम गुलाम के साथ स्वामी सत्य प्रकाश
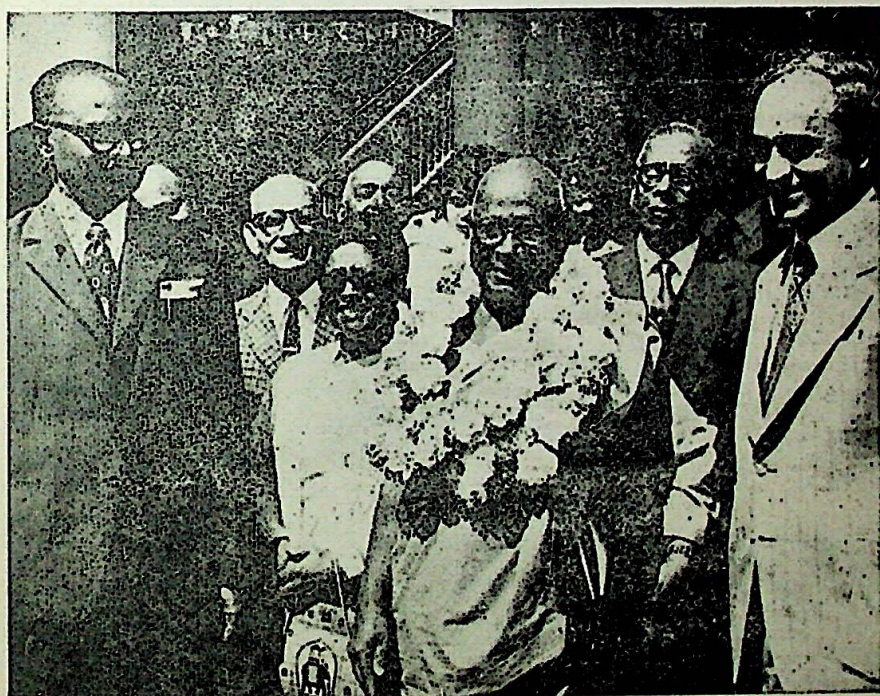
बाये से दायें—एस० छोटे (आर्य प्रतिनिधि सभा अध्यक्ष), पं० प्रताप, श्रीमती विद्यावती सिंह,
स्वामी सत्य प्रकाश, पी० सिबरन (उपाध्यक्ष), एस० राम भरोसे (संयुक्त मंत्री)

Swami Satya Prakash

The advent of Dr. Satya Prakash (who later became Swami Satya Prakash), in South Africa in 1969 revitalized the Hindu Society and the Arya Samaj in particular. Prior to his visit the last Vaidic Pracharak was his father Pt. Ganga Prasad Upadhyaya who visited South Africa in the late 40's.

Dr. Satya Prakash being a man of a university background, a profound scholar, a writer, and a man of profoundity, made a big impact on the S. African community with his discourses on Vaidic scriptures. The youths and then intelligentia in particular are in search of scientific explanations to religious truths and Dr. Satya Prakash being a man of science was able to provide foolproof answer to the questioning minds of those who found satisfaction only in scientific facts. Dr. Satya Prakash always established a synthesis between religion and science.

A striking feature in the delivery of Dr. Satya Prakash lectures was that he spoke without any thumb notes. Quite often the topic was made known to him on his arrival to the lecture hall. When he stood to speak wisdom of Rishis and the Vedas flowed out of him with ease like water gushing out of a spring. He very freely quoted texts from the Vaidic scriptures and from eastern and western writers and saints and sages of the past. Questions from western writers like Shakespeare appealed to students of English literature. Sanskrit quotations were elucidated in language comprehensible to the ordinary man. Being an academician and a university lecturer Dr. Satya Prakash put across his thoughts in logical sequence and generally conc luded by summarising his talks.

On the day after lecture the Dr. typed his lecture for record purpose and for future use by anyone desiring to do so. This habit certainly is the opposite of what is generally done i.e. the speaker prepares lectures or short notes before he goes to speak.

Dr. spoke in a wide range of subjects on whatever was requested. In spite of the subject matters overlapping there was no repetition. This was observed by persons who had followed his talks.

On one occassion he spoke on PAK SHASTRA (science of cooking) and quoted liberally (without any reference) from Hindi books on the scientific art of cooking. He cooked a meal in a private home to which many women were invited to demonstrate the practical aspects of PAK SHASTRA.

There were many occasions when the Dr. spoke in Hindi which was captivating with its sweetness for it is a treat for Indian South African to hear one in person speaking the North Indian Hindi.

Dr. Satya Prakash's second visit to South Africa was in 1973 when he made a sojourn at the request of Arya Yuvak Sabha for the inauguration of the Diamond Jubilee Celebrations.

The Arya Yuvak Sabha formed by Sri Shankranandji in 1912 maintains the Arya Anath Ashram (Aryan Benevolent Home) which has a Home for orphaned and neglected children and another for the aged in need of care. There are 87 children and 130 aged in the two Homes respectively.

The Golden Jubilee of Aryan Benevolent Home and the Diamond Jubilee of the Arya Yuvak Sabha were celebrated concurrently in October, 1973 and Sri Satya Prakash's presence added lusture to the celebration.

As a citerarian the Swami felt the need of a library housing a wide range of authentic works of the minds of Hindu Sages and Rishis and other writers of the Vaidic scriptures. He saw the need for a good reference library which would make material available for research scholars. With his encouragement Arya Yuvak Sabha Library was established, with a donation of Rs. 10,000 solicited by the Swamiji from Sri PARAW SEEBRAN. Swami Jee is the patron of this library and has maintained his interest by helping in the selection of suitable books every year.

Swamijee's profoundity, his simplicity, and humility, his good sense of humour and his adaptability have endeared him to the South Africa community.

Sishu Pal
(Rambharose Ji)
509, Goodhope Centre,
92-96 Queens Street, Durban
(S. Africa)

स्वामी जी नैरोबी में . . .

मान्यवर श्री एस० जी० मिश्रा जी,

सादर नमस्ते,

श्री मान्य स्वामी सत्य प्रकाश जी प्रथम वार हमारे निमन्त्रण पर 18 July, 71 में नैरोबी पधारे। आगमन पर यहाँ के आर्य व आर्येतर परिवारों ने इनका हार्दिक स्वागत किया। अपने प्रचार के अन्तर्गत उन्होंने युगान्डा, कीनिया व तन्जानिया का सफल दौरा किया। श्री स्वामी जी के व्याख्यानों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि इनके व्याख्यानों में सूक्ष्म दार्शनिकता व सरल योग के साधनों के साथ जनता के लिए जीवनोपयोगी सामग्री भरपूर रहती थी। मान्य स्वामी जी जहाँ जहाँ भी ईस्ट अफ्रीका की समाजों में गए जनता ने इनके व्याख्यानों को तन्मयता व प्रेम से सुना, इनकी शैली व जीवन से महर्षि दयानन्द के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट होती रही। बीमारी के बावजूद भी इन्होंने प्रचार कार्य में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी। आर्य परिवारों के आग्रह के बावजूद स्वामी जी ने अक्टूबर (71) में यहाँ से प्रस्थान किया। यहाँ रहते उन्होंने अत्यन्त मधुर प्रशाद दो कृतियों के रूप में दिया—I. The Man and his Religion II. The Religion of Humanity (यह दूसरी पुस्तक Students के लिए है) : इनकी व्याख्या के अनुरूप हम इनकी दूसरी कृति की 200-200 प्रतियाँ स्कूलों के लिए भेज रहे हैं। आपकी सेवा में भी एक-एक प्रति भेजी जा रही है। चलते समय हमने इनसे प्रार्थना की थी कि आप पुनः यहाँ पधारें। पूज्य स्वामी जी ने हमारी प्रर्थना स्वीकार की एवं 1974 के उत्सव में पुनः पधार कर हमें अनुगृहीत किया। इस बार भी पूर्व की भाँति इन्हें जनता का मधुर स्नेह-सम्मान प्राप्त हुआ। वे मोम्बासा, अरुषा, दारेसलाम आदि स्थानों पर ससम्मान गए। स्वामी जी के स्वभाव की सरलता व निष्कपटता थी कि देवियों व पुरुषों में अनायास ही उनके प्रति भक्ति-श्रद्धा प्रादुर्भूत होती थी। इस बार यहाँ की युनिवर्सिटी में पूर्व सुनिश्चित व्याख्यान Students की Strike के कारण सम्पन्न नहीं हो सके। आर्य समाज नैरोबी इनकी सुन्दर कृति The Man and his Religion का सुहेली में भी अनुवाद प्रकाशित करा रही है। इस वार चलते समय एक और सुन्दर प्रशाद The Architects of Arya Samaj भेंट कर गए जो अभी प्रेस में है : यहाँ रहते उन्होंने Priest Flat की आधार शिला भी नैरोबी आर्य समाज में अपने शुभ कर कमलों द्वारा रखी। यहाँ के माननीय भारतीय राज-

दूत ने ईस्ट अफ्रीका में हिन्दी प्रचार की रिपोर्ट विश्व हिन्दी सम्मेलन (नागपुर) के लिए माँगी थी। तदनुसार मान्य स्वामी जी ने इस सम्बन्ध में यहाँ की हिन्दी विषयक रिपोर्ट नागपुर के उपरोक्त सम्मेलन में नैरोबो आर्य समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए रखीं। एतदर्थ भी हम उनके आभारी हैं।

यहाँ के वयोवृद्ध आर्य समाज नैरोबी के स्तम्भ श्री महाशय बद्रीनाथ का शताब्दी महोत्सव भी उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम था। उनकी इस विषयक फोटो भी साथ प्रेषित है। वे श्रद्धा से उनके अन्तिम संस्कार में भी शरीक हुए।

अक्षरादास
मन्त्री (आर्य समाज नैरोबी)

प्रधान (आर्य समाज नैरोबी)

योग साधना शिविर में आसन सिखाते हुये स्वामी सत्य प्रकाश
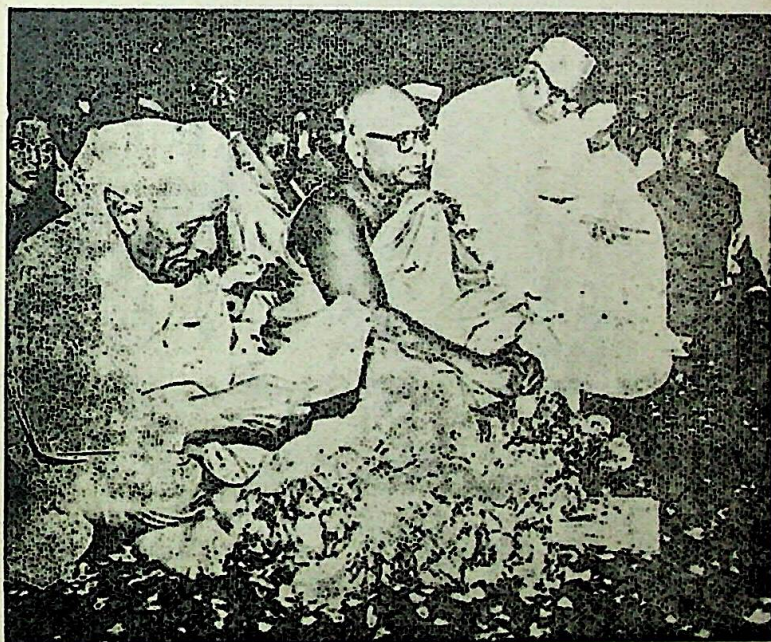
आर्य समाज स्थापना शती समारोह, कानपुर, १२ अक्टूबर १९७४
आनन्द स्वामी, स्वामी सत्य प्रकाश, जगजीवन राम तथा देवेन्द्र स्वरूप

Dear Sir,

Your letter of the 21st and 24th November, 1975 have been passed on to me for necessary action.

Whether Swami ji's account while he was here with us will suit your purpose or not, I do not know, however I am sending herewith a brief narration of his activities in East Africa together with the following and hope that these will be suitable to incorporate in commemoration volume.

Thanking you for remembrance.

(i) Brief account of his stay and work in East Africa.

(ii) 3 coloured photographs Nos. 8, 11 A and 18 A which please return when done with.

(iii) One copy each of his publications, "Man and His Religion" and "Religion of Humanity".

With best of compliments to you all.

Yours faithfully,
Achhra Dass
Secretary,
Arya Samaj, Nairobi

स्वामी जी मारिशस में

तपः पूत जीवन

दिवमा रुहत् तपसा तपस्वी । अथर्व 13-2-25

विश्व के तपोधन मनीषी जनों ने सफलता और सुख एवं आनन्द प्राप्त करने का साधन तप को कहा है । उपरोक्त वेद मन्त्रों में बताया है , तपस्वी तप से ऊपर उठता है । तप का अर्थ है, धर्म, सत्य और न्याय मार्ग पर चलते हुए जो विघ्न वाधाएं तथा क्लेश कष्ट सामने आयें उन्हें सहते हुये आगे ही आगे बढ़ते जाना ।

तपस्वी जन भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, सुख-दुख, हर्ष-शोक और मान-अपमान को समान समझते हैं । भोजन, वस्त्र, व्यायाम, प्राणायाम, विश्राम, स्वाध्याय-सत्संग में संयमपूर्वक कर्तव्य पालन करना भी तपस्या है ।

गीता के अनुसार तीन प्रकार का तप है :

1- शारीरिक तप—विद्वान मनीषी जनों की पूजा, नम्र एवं विनीत भाव, पवित्र, स्वच्छता धारण, इन्द्रियों को वश में रखना, किसी को कष्ट न देना ।

2- वाणी तप—सत्य, प्रिय मधुर भाषी, कटु वचन का त्याग और सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय ।

3- मानस तप—प्रसन्नचित, शान्त एवं मौन भाव, मन का निग्रह और शुद्ध अन्तः करण मानस तप है ।

उपर्युक्त सद्गुणों से सम्पन्न श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी तप-त्याग के पुण्य-प्रतीक हैं । स्वर्गीय महान मनीषी कर्मनिष्ट एवं धर्मनिष्ट एवं पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय जैसे महानात्मा के आप आदर्श पुत्र हैं । आपका पूर्वाश्रम ब्रम्हचर्य और गृहस्थ जीवन भी कुशल कर्मयोग जीवन था । स्वामी सत्य प्रकाश जी तपः पूत, कुशल कर्म योगी और लोक प्रसिद्ध विद्वान हैं ।

आप बहुभाषी प्रवीण वक्ता और सिद्धहस्त लेखक हैं। हिन्दी अंग्रेजी में धर्म एवं विज्ञान विषय पर आपने अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं। पदार्थ विज्ञान के आप विशेषज्ञ हैं, तद् विषय पर हिन्दी अंग्रेजी में अपनी विद्वतापूर्ण रचनाओं के कारण आप प्रसिद्ध संस्था हिन्दी साहित्य सम्मेलन और राज्य से भी पुरस्कृत और सम्मानित हुए। विश्वविद्यालयों द्वारा अनेक बहुमूल्य पदकों से सुभूषित नर रत्न हैं। हमारी आर्य भाषा हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन एवं उन्नयन में जो आपने सात्विक योगदान दिया है वह अभूतपूर्व है। गत अगस्त सन् 1969 ई० में दक्षिण अफ्रिका की यात्रा में जाते समय स्वामी सत्य प्रकाश जी मारिशस में कुछ दिनों के लिए ठहर गये और हमें अतिथि सत्कार का सौभाग्य मिला। उस समय आप वानप्रस्थ थे।

प्रथम दर्शन में ही आपका सन्त रूप, सरल स्वभाव और तर्कसंगत विमल विचार से लोक मत प्रभावित हुआ। आपका सात्विक आहार, उच्च विचार, सद्व्यवहार कुशलता, प्रकाण्ड विद्वता के साथ आपकी वैदिक विचार धारा परम प्रभावशाली है।

सन्यास

सन्यास जैसे विरक्ताश्रम में प्रवेश के लिए विरले ही चुने-गिने वैदिक परम्परा के ज्ञानी जन पग आगे बढ़ाने का साहस करते हैं। परन्तु नगर निवासी वा शहर वासी और आधुनिक विश्वविद्यालय की पश्चिमीय विद्या में पारंगत डा० सत्य प्रकाश जी जैसे विज्ञान विशेषज्ञ में अध्यात्म ज्ञान की प्रबल जिज्ञासा और सन्यास धर्म की निर्मल निष्ठा को देख अन्तःकरण ने कहा कि यह पूर्व जन्म का पुण्य प्रताप है और अधिकारी पिता के आदर्श पुत्र में ही ऐसी दिव्य प्रतिमा का विकास सम्भव है। गत सन् 1973 ई० अगस्त मास में 92 वां सार्वदेशिक महा सम्मेलन के शुभावसर पर सन्यास दीक्षा के बाद वे द्वितीय बार मारिशस आये थे तो दो मास समाज सेवा में यहां रहे। मारिशस के 12 वां सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन में श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी से महत्वपूर्ण योगदान मिला है। रेडियो, टेलिविजन से भी आप के विज्ञान-सम्मत विचार का प्रसारण मारिशस में होता रहा।

आपका बुद्धि संगत धार्मिक दृष्टिकोण और विज्ञान से सम्पुष्ट आस्तिक विचार धारा ने नई पीढ़ी की मनोभूमि के अंकुरित आस्तिक भाव को सजीव बनाया। अंग्रेजी भाषी जिज्ञासुओं को वैदिक धर्म और ईश्वर भक्ति विषय पर आपके सत्संग संवाद से अमित लाभ हुआ। आपका तर्कसंगत विचार-विनिमय और प्रवचन की सरस शैली ने लोकमत को सुरुचिशील और उत्साहवर्द्धक बनाया। मारिशस प्रदेश के विभिन्न प्रान्तों में आपका भाषण हुआ। स्वामी सत्य प्रकाश जी का जीवन मन, वचन और कर्म की समन्वयता का पावन प्रतीक है। विद्यार्थी जीवन में माता पिता और गुरु की आज्ञा पालन के साथ ब्रह्मचर्य व्रत एवं विद्या अध्ययन में पूरी तन्मयता से लगे रहे और विश्वविद्यालय की उच्च से उच्चतर परीक्षाओं में सफल हो कर पुरस्कृत भी होते रहे।

गृहस्थ जीवन तो और अधिक कर्मवीरता एवं सद्व्यवहार कुशलता से सम्पन्न किया। सद् ज्ञान का उद्देश्य विवेकपूर्वक पुरुषार्थ करने पर पूर्ण होता है। प्रकाश और ताप दोनों सूर्य के गुण हैं, इसी प्रकार सिद्धान्त और क्रियाशीलता, ज्ञान और आचरण, तथा शिक्षण के अंग विचार और आचार हैं। जब शास्त्रीय ज्ञान जीवन में अवतीर्ण होता है तो विचार आचरण बन जाता है। ऐसे क्रियाशील पुरुष ही विद्वान हैं। "यस्तु क्रियावान् स विद्वान"। स्वामी सत्य प्रकाश जी को प्रचार कार्य से चार दिन का भी अवकाश मिला कि आप ग्रन्थ प्रणयन में लग जाते हैं। आप धर्मपरायण कर्मनिष्ठ हैं। आप जैसे कर्म योगी का योगदान पाकर ही आर्य समाज में जीवन है। अपनी लेखनी और वाणी से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में आपने महान त्याग किया है। आप महर्षि दयानन्द के परम भक्त और भारतीय संस्कृति की दिव्य विभूति हैं।

आप का तपः पूत जीवन विश्व वन्दनीय है।

मोहनलाल मोहित
प्रधान
आर्य-सभा (मारिशस)

२५-१०-१९६९ को आर्य समाज द्वारा
नैटाल में डा० सत्य प्रकाश का अभिनन्दन

डर्बन में स्वामी जी
(श्री जी. पी. रेडड्डी के सौजन्य से)
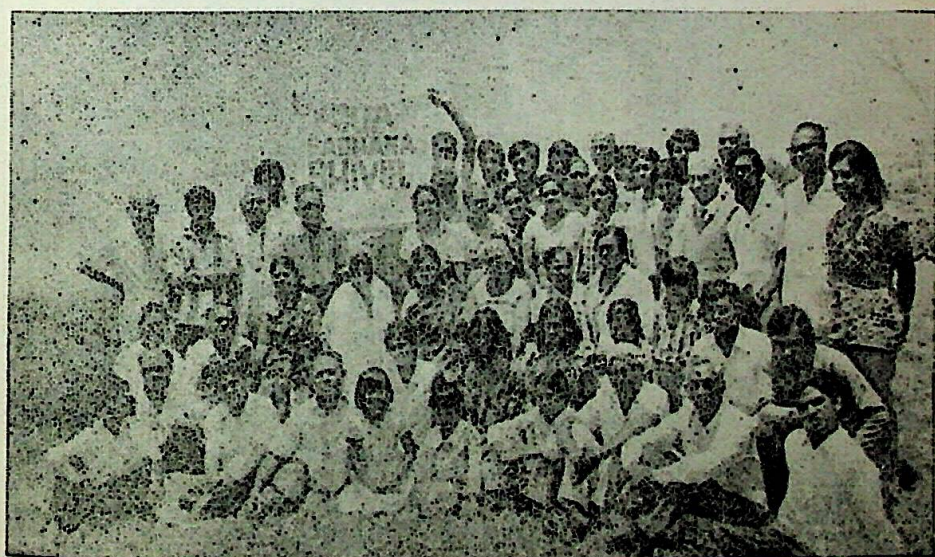
नैटाल में समुद्र के किनारे योग साधना शिविर में स्वामी सत्यप्रकाश

स्वामी सत्य प्रकाश जी

● सत्य काम विद्यालंकार
बम्बई

पिछले दो वर्षों में मुझे स्वामी सत्य प्रकाश जी के बहुत निकट रहकर काम करने का अवसर मिला हैं। इन दो वर्षों के सान्निध्य के आधार पर ही मैं उनके विशिष्ट व्यक्तित्व के संबन्ध में कुछ शब्द लिख रहा हूँ।

स्वामी जी का सन्यास सामान्य नहीं, कई विशेषताओं से भरा है। स्वामी जी ने कब सन्यास लिया यह मैं नहीं जानता किन्तु यह जानता हूँ कि इससे पूर्व आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय में रसायन विभाग के अध्यक्ष थे। आज वह अध्यक्ष तो नहीं हैं किन्तु रसायन विभाग से उनका सम्बन्ध बना हुआ है। यही नहीं, विज्ञान जगत की प्रत्येक प्रगति से और प्रगतिशील वैज्ञानिकों से उनका गहरा संपर्क पूर्ववत् कायम है। सन्यासी होकर भी स्वामी जी विज्ञान से सन्यस्त नहीं हुए।

अपने गृहस्थ जीवन के बन्धनों से स्वामी जी ने स्वयं को मुक्त कर लिया है, किन्तु इस मुक्ति ने उनके घर-परिवार का दायरा बहुत विशाल कर दिया है। हजारों घरों के द्वार उनके लिए सदा खुले रहते हैं। मैंने आज तक किसी सन्यासी के प्रति आबाल-वृद्ध-गृहस्थों के हृदय में इतना स्नेह, इतना आकर्षण कभी नहीं देखा।

स्वामी जी के व्यक्तित्व में उनके विरोधी प्रतीत होने वाले गुणों का अद्भुत समन्वय हुआ है। विज्ञान और गणित के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए आप जितने यथार्थ प्रिय हैं, साहित्यिक रचनाओं से उतने ही कल्पनाशील भी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और वैदिक ऋचाओं की नयी व्याख्या करते हुए आपकी प्रतिभा नये चमत्कार भी दिखलाती है।

ऐसे ही अनेक विरोधाभास आपके स्वभाव में भी हैं। अध्ययन और अनुशीलन में गहन गंभीर होते हुए भी आप इतने विनोदी स्वभाव के हैं कि गहरी चिन्ता या उदासी में डूबा आदमी भी आपके पास बैठकर बहुत हल्कापन अनुभव कर सकता है।

दो वर्ष पूर्व मैंने जब आपके प्रथम दर्शन किये थे तो मैं आपके व्यक्तित्व से पर्याप्त प्रभावित हुआ था किन्तु ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों से कुछ दूर रहने की इच्छा मेरे मन

में सदा रहती है। भय रहता है कि उनकी निकटता अपनी स्वतन्त्रता में बाधक न बने। मेरा वह भय बहुत जल्दी दूर हो गया।

कुछ दिन साथ रहकर काम करने के बाद ही मैंने अनुभव किया कि स्वामी जी इतने स्नेही और सरल हृदय के हैं कि उनके समीप रहने वाले को सदा सहज स्नेह और सहानुभूति ही मिलेगी।

स्वामी जी के श्रद्धालुओं की संख्या शायद लाखों में होगी। अनेक स्थानों पर मैं स्वामी जी के साथ उनके श्रद्धालु भक्तों का अतिथि रहा। स्वामी जी सदैव सतर्क रहते थे कि कहीं उनके भक्तजन उनके सत्कार में ऐसे न डूब जायें कि उन्हें साथ वाले अतिथि का ध्यान न रहे। अपनी सुख सुविधा भूल कर भी स्वामी जी मेरे आराम की व्यवस्था करवाने और अपने से भी अधिक सत्कार दिलवाने में तत्पर रहते थे।

विद्वान व्यक्ति प्रायः अभिमानी और स्नेह-शून्य हो जाते हैं। स्वामी जी भी बड़े स्वाभिमानी हैं किन्तु उनका स्वाभिमान वृथा अभिमानी व्यक्ति के साथ यथायोग्य व्यवहार करने तक ही सीमित रहा है अथवा अपने विचारों की दृढ़ता के लिए ही प्रकट होता है। अन्यथा अपने साथियों, स्वयं को अल्प समझने वाले मित्रों के बीच स्वामी जी अपने हृदय का सारा स्नेह बड़ी उदारता से बिखेर देते हैं। यहाँ भी मैंने उनके चरित्र में एक अनोखा विरोधाभास देखा। भिक्षुक बनकर किसी अत्यन्त सामान्य गृहस्थ के द्वार पर जाना उन्हें खलता नहीं; वहाँ बेखटके पहुँचकर भोजन माँग लेंगे किन्तु किसी लक्षाधिपति का भी वह दान स्वीकार न करेंगे, जो उन्हें सोने की जंजीर में बाँधकर अपनी कैद में रखने का यत्न करता होगा। स्वामी जी अपने उत्तरदायित्वों के प्रति स्वयं पूर्णतः अनुबन्धित रहते हैं किन्तु किसी भी व्यक्ति या संस्था की जंजीर में बँधना पसन्द नहीं करते। बड़े से बड़े प्रलोभन को भी अमान्य करके उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की है।

मैंने बहुत समीप से देखा है कि स्वामी सत्य प्रकाश जी के सन्यस्त जीवन का प्रत्येक क्षण निरन्तर कल्याण कार्यों में व्यतीत होता रहा है। अपनी सुख सुविधा के लिए एक पैसे का भी पुरस्कार न लेकर आप अपने 70 वर्षीय जीवन की साधना को प्राप्त विद्या को साहित्य एवं प्रचार के माध्यम से देश की सेवा में पूर्णतः अर्पित कर रहे हैं।

'व्यक्ति से व्यक्तित्व' बनने वाले पूज्य गुरुवर

• प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
अबोहर (पंजाब)

10 मई 1971 ई० को पहली बार मैंने प्रयाग की यात्रा की। त्रिवेणी में स्नान के लिये नहीं; धर्म, कला एवं विज्ञान की त्रिवेणी श्रद्धेय डा० सत्य प्रकाश जी ने उस दिन अपना सर्वमेध यज्ञ करके सन्यास की दीक्षा ली। उनके सन्यास दीक्षा समारोह में ही सपरिवार तथा छात्रों सहित गया था। महान पिता के महान पुत्र ने काषाय वस्त्र धारण कर 'सर्वहुत' की वैदिक संज्ञा को प्राप्त किया। श्रद्धा विभोर होकर अपने सजल नयनों से मैंने विश्व-इतिहास की एक अद्भुत घटना प्रयाग विश्वविद्यालय में विज्ञान-परिषद के भवन के सामने देखी।

संसार में बड़े-बड़े विचारकों व प्रचारकों ने अपनी मान्यताओं के प्रसार के लिए, भक्ति के लिये विरक्ति की राह अपनाई है। स्वामी सत्य प्रकाश जी सरस्वती विश्व इतिहास की प्रथम विभूति हैं जिन्होंने एक वैज्ञानिक के रूप में ख्याति अर्जित करके विरक्ति का पथ अपनाया है। डा० सत्य प्रकाश जी से पूर्व किसी भी वैज्ञानिक ने किसी भी देश में कभी भी विरक्ति की राह नहीं अपनायी। भारत भूमि धन्य है जिसने मानव जाति को ऐसा नर-रत्न दिया है।

हीमैं विद्यार्थी जीवन से डा० सत्य प्रकाश जी के नाम नामी से सुपरिचित हूँ। आज से 25 वर्ष पूर्व आपकी पुस्तक 'Humanitarian Diet' पढ़ी थी। आपकी योग्यता एवं लौह लेखनी से बड़ा प्रभावित हुआ था। विद्यार्थी जीवन में ही आपकी रचना 'ब्रम्ह विज्ञान', 'वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप', 'Agnihotra' तथा 'Enchanted Island' पढ़े। A Critical Study of Philosophy of Dayanand' तो मेरे प्रियतम ग्रन्थों में रहा है। श्रद्धेय श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय की मुझ

पर असीम कृपा रही। वह मेरे साहित्य-पिता थे। मन में यह भाव उमड़-घुमड़ कर आया कि पूज्यपाद उपाध्याय जी के यशस्वी साधु पुत्र डा० सत्य प्रकाश जी (अपने प्रिय लेखक भी) के दर्शन करने चाहिए।

1959 ई० में मैं दयानन्द कालेज हिसार का विद्यार्थी था। अपने एम० ए० कक्षा के प्राध्यापक श्री पृथ्वी नाथ जी कौल को कह सुनकर प्राचार्य महोदय से डा० सत्य प्रकाश जी के व्याख्यान का आयोजन करवाया। अब प्रश्न था उनसे स्वीकृति लेने का। अपनी तो डा० जी से कोई जान-पहचान थी नहीं। पूज्यपाद उपाध्याय जी से नियमित पत्र व्यवहार था। दिसम्बर 1959 ई० में महर्षि दयानन्द दीक्षा शताब्दी के शुभ अवसर पर उपाध्याय जी का अभिनन्दन भी हो रहा था। मैं भी गया। वहीं पर उपाध्याय जी से कहा कि डा० सत्य प्रकाश जी से हमारा हिसार का कार्यक्रम बनवा दें। पूजनीया माता कला देवी जी भी पास ही बैठी थीं।

उपाध्याय जी ने कहा, "अरे राजेन्द्र! बूढ़ों की कौन सुनता है। तुम स्वयं बात कर लो।"

मुझे पता था कि डा० सत्य प्रकाश एक आदर्श पुत्र और आदर्श मानव हैं अतः मैं समझ रहा था कि उपाध्याय जी विनोद से ऐसा कह रहे हैं। मैंने फिर कहा कि आप मुझे डा० जी का कार्यक्रम अवश्य बनवा दें। इस पर उपाध्याय जी ने कहा, 'राजेन्द्र! हमारा सत्य प्रकाश ऐसा व्यक्ति नहीं कि उसे मेरे कहने की आवश्यकता हो। तुम स्वयं उसे कहोगे तो भी समय होगा तो अवश्य तुम्हें देगा।' इतने में डा० सत्य प्रकाश जी वहाँ आ गये। उपाध्याय जी ने कहा, 'सत्य प्रकाश! सुनिये, हमारा राजेन्द्र आपसे क्या कहता है?' मैंने विनती की, डा० जी ने सहर्ष स्वीकृति दी। बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय में गड़बड़ के कारण हिसार न आ सके। मुझे इसकी सूचना दी। यह थी मेरी इस वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ता से प्रथम भेंट। मैं प्रथम भेंट में ही आपकी स्वाभाविक सरलता, प्रेमल स्वभाव एवं मधुर व्यवहार से अत्यंत प्रभावित हुआ।

सन्यास लेकर आप स्वामी सत्यप्रकाश के रूप में धर्मक्षेत्र में उतरे तो मुझे आपको निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यदि मैं यह कहूँ कि सन्यासी के रूप में आपको जो प्रथम भक्त मिला वह मैं ही हूँ तो मेरे इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं। सन्यासी रूप में स्वामी सत्य प्रकाश जी का प्रथम चित्र आर्य युवक समाज अबोहर ने प्रचारित-प्रसारित किया। साधु सत्य प्रकाश की पुस्तकें हमीं ने पहले अबोहर के पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर से प्रसारित कीं।

स्वामी सत्य प्रकाश जी किस कोटि के साधु हैं इसका परिचय हमें उनकी दीक्षा के अवसर पर ही मिल गया। भक्तों, शिष्यों, सभा-संस्थाओं द्वारा मान-सम्मान का उत्तर देते हुए आपने तब कहा था, "यदि मैं यह कहूँ कि आपके

शब्द मुझे अच्छे नहीं लगे तो यह अच्छा न लगेगा। यदि यह कहूँ कि मुझे अच्छे लगे तो इसका अर्थ यह है कि जो तीन प्रतिज्ञाएं आपने मुझसे अभी करवाई हैं, मैं उन्हें तोड़ रहा हूँ। इसका अर्थ है कि मैं एषणा से अभी छूटा नहीं।"

तब भाव विभोर होकर अपने मेघ गम्भीर स्वर में वीतराग सत्य प्रकाश बोले, 'मैं आर्य जगत में जिधर भी जाता हूँ, जहाँ भी जाता हूँ, वहीं मेरे से पूर्व मेरे पूज्य पिताजी के पदचिह्न होते हैं। आर्यजन मुझे उनकी स्मृति दिला देते हैं। नहीं जानता कि मैं परिवार को छोड़ने की दृढ़ प्रतिज्ञा का पालन कैसे कर पाऊँगा। आपने ही मुझे ये प्रतिज्ञाएं करवाई हैं, आपही मान-सम्मान देकर इनको तुड़वा रहे हो। प्रभु मेरी रक्षा करते रहे हैं, आगे भी मेरी सहायता करें।'

मैं अमृतसर स्वामी जी को लेकर गया। साधु रूप में आप पहली वार वहां गये थे। वहां एक सज्जन के घर भोजन करने गये। वह उपाध्याय परिवार से सुपरिचित हैं। कई वार प्रयाग यात्रा कर चुके हैं। उन्होंने छूटते ही उपाध्याय जी, माता कला देवी जी, स्व० डॉ० रत्न कुमारी जी आदि की चर्चा छेड़ दी। मैंने उन्हें यह प्रसंग वन्द करने का संकेत दिया परन्तु वह न रुके।

स्वामी जी ने तब बहुत उग्रता से कहा, 'आप मेरे सामने बार-बार उपाध्याय जी की चर्चा करते हैं। यदि मैं यह चर्चा सुनता हूँ तो लोग क्या समझेंगे कि कैसा निकम्मा साधु है जो परिवार की चर्चा सुनकर प्रसन्न होता है? स्वामी सर्वदानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, श्री महात्मा नारायण स्वामी की परम्परा को बिगाड़ने वाला यह कैसा साधु है? यदि नहीं सुनता तो लोग कहेंगे कि कैसा निकम्मा पुत्र है कि पिता का नाम सुनकर ही बिगड़ जाता है। मैं कहाँ जाऊँ?'

एक और घटना घटी। अबोहर के दयानन्द शिक्षा महाविद्यालय में भाषण के लिए आप कालेज में गये। मैं साथ था। प्राचार्य डॉ० सत्यपाल जी दुग्गल ने भी पूज्य उपाध्याय जी के आस्तिकवाद की चर्चा छेड़ दी। तब आपने कहा, "जिस कुल को, परिवार को छोड़ दिया उसकी चर्चा न करें। मेरे विश्वविद्यालय की चर्चा आप कर सकते हैं।"

एक दिन डी० ए० वी० कालेज अबोहर के कुछ छात्रों ने आपसे कहा, 'कृपया पूज्य उपाध्याय जी के संबंध में कोई संस्मरण सुनावें।' तब आपने दृढ़ता से कहा, 'उपाध्याय जी के बारे में औरों से पूछें, मैं और महापुरुषों के बारे कुछ बता सकता हूँ।'

एक दिन आर्य युवक समाज अबोहर की ओर से श्री अशोक आर्य व मैं स्वामी जी को वस्त्र भेंट करने गये। आपने कहा मैं तो कुर्ते व दो धोतियां ही रखता हूँ इनकी क्या आवश्यकता थी? आग्रहपूर्वक हमने वस्त्र दे दिये। एक रूमाल भी था। आपने

तब कहा, 'यह क्यों बनवाया ? मैं तो धोती के फटने पर उसी में से रूमाल बनवा लेता हूँ।"

एक छोटे से ग्राम चेतू ढानी में हम स्वामी जी को लेकर गये। ग्राम के एक किसान परिवार ने सायंकाल हमारे रोकने पर भी सारे दल का भोजन तैयार कर दिया।

स्वामी जी तो रात्रि को भोजन नहीं करते। श्रद्धालु किसान भला बिना कुछ खिलाए इतने महान साधु को कैसे जाने दे। तब मैंने अँग्रेजी में स्वामी जी से कहा कि परिवार के मुखिया को मस्तिष्क का कुछ रोग है। यदि आपने कुछ ग्रहण न किया तो उसे दौरे पड़ने की सम्भावना है। तब आपने हाथ पर एक रोटी लेकर हाथ में ही दाल लेकर गांव वालों की श्रद्धा को समादरित किया।

साधु की साधना को तो संसार जानता ही है। यौवन में कड़ाके की शीत में नंगे छत पर वर्षों सोते रहे। शरीर को इतना तपाया कि जर्मनी, फ्रांस की सड़कों पर बिना कोट-स्वेटर—धोती कुर्ते में ही इन्हें देखकर लोग चकित होते रहे हैं। ठण्डी हवा चल रही थी। आप दयानन्द शिक्षा महाविद्यालय का दीक्षान्त भाषण दे रहे थे : हम ठिठुर रहे थे और संन्यासी बिना कुर्ते के मंच पर शान्त खड़ा बोल रहा था।

मैंने कहा, मैं भी रात का भोजन छोड़ रहा हूँ। आपने कहा, 'ऐसा मत कीजिए। अभी आपकी अवस्था ऐसी नहीं। आपके पत्नी व बच्चे आपके बिना रात्रि का भोजन ठीक प्रकार से नहीं करेंगे।' तब तो मैं रुक गया। चार वर्ष बाद रात्रि को भोजन करना छोड़ा तो वही कुछ हुआ जो आपने कहा था। श्रीमती ने कभी भाजी न बनाई तो कभी बिना दाल के ही बच्चों को भोजन मिला। न बच्चों को भोजन का स्वाद, न श्रीमती को आनन्द। तब स्वामी जी के व्यवहारिक उपदेश का ध्यान करके फिर से रात्रि का भोजन आरम्भ कर दिया।

स्वामी जी महाराज के वैज्ञानिक रूप, दार्शनिक रूप, कवि रूप और साधु रूप को प्रायः सब जानते हैं। आपके स्वभाव में विनोदप्रियता कितनी है इसका अति निकट के लोगों को ही पता है। दो घटनाएं नहीं भूलतीं। हम एक ग्राम को जा रहे थे। मैंने पूछ लिया, 'क्या अब भी काव्य रचना करते हैं?" आपने कहा, "जब गत बार विदेश गया था तो रिक्त समय में कई बार कविताएं लिखीं।" इस पर मैंने कहा, "आप एक काव्य संग्रह छपवा दें। 'प्रतिबिम्ब' के पश्चात् आपकी कोई कविता पढ़ने को नहीं मिली।" स्वामी जी ने कहा, 'यदि सब कुछ अभी छपवा दूं तो तुम मेरे मरने के पश्चात् मेरे बारे में नई बात क्या लिखोगे और क्या खोज करोगे ?' यह वाक्य सुनकर मेरा दिल खिलखिला उठा।

जून 1975 ई० के प्रथम सप्ताह की बात है। स्वामी जी, श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार व मैं हम तीनों बैठे थे। श्री सत्यकाम जी की पुस्तक 'चरित्र निर्माण' की चर्चा चल पड़ी। मैंने ही चलाई। मैंने कहा, मैंने यह पुस्तक विद्यार्थी जीवन में पढ़ी थी। स्वामी जी ने कहा, "सत्यकाम जी! मैं ही ऐसा अभागा व्यक्ति हूँ जो आपकी इस लोकप्रिय पुस्तक को न पढ़ पाया। अब पढ़ूँ भी तो क्या लाभ? मेरी चरित्र निर्माण की वेला तो निकल गई। हां, चरित्र भ्रष्ट तो अब भी हो सकता हूँ। फिसलने का क्या है, मनुष्य कभी गिर सकता है" सुनते ही सत्यकाम जी और मैं हँसी से लोट पोट हो गये।

विज्ञान एवं संस्कृति के प्रतीक 'स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती'

• राधेमोहन
प्रधान, आर्य समाज चौक, प्रयाग

विज्ञान एवं धर्म का अद्‌भुत संगम, सरलता एवं सादगी की सजीव जीवन्त प्रतिमा, जिनकी लेखनी अविराम गति से वैज्ञानिक, धार्मिक तथा शतशः सांस्कृतिक ग्रन्थों को लिपि-बद्ध करके भी परिश्रान्त नहीं हुई है; जिन्होंने एक वैज्ञानिक तथा परिव्राजक के रूप में पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक परिव्रजन किया है; सादा जीवन उच्च विचार जिनके जीवन का मूल मन्त्र रहा है; सागर से भी गम्भीर एवं हिमालय से भी उच्च है जिनका व्यक्तित्व, जिनके मिलन में आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी को विशेष प्रसन्नता की अनुभूति होती है, जिनको लिप्साओं ने नहीं बाँध पाया और जो अहर्निश काम करते हुये भी थकते नहीं, उन्नत मस्तक, पैनी आंखें, सुगठित शरीर और बलिष्ठ भुजायें हैं जिनकी; और जिनका आकर्षक एवं महकता हुआ व्यक्तित्व बरबस जनमानस को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है; जिस पर लक्ष्मी कभी कुपित नहीं हुई, और माँ सरस्वती की जिस पर महती कृपा रही है, ऐसे उच्च व्यक्तित्व से समलंकृत तथा सद्‌गुणों से सम्पन्न महामानव के रूप प्रतिबोधित होते हैं स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती।

आपके पूर्वाश्रम का नाम डा० सत्य प्रकाश था। प्रयाग विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र विभाग के अध्यक्ष के रूप में आपने सराहनीय सेवायें की हैं। आपकी लौह लेखनी से उद्‌भूत 'प्राचीन भारत में विज्ञान के संस्थापक', 'केमेस्ट्री इन ऐन्सियेंट इण्डिया', 'क्वाइन्स इन दी ऐन्सियेंट इण्डिया' 'ज्येमेट्री इन दी एन्सियेंट इण्डिया', 'प्राचीन भारत में रसायन का विकास', 'भारत की सम्पदा' आदि अनेक बहुचर्चित ग्रन्थ चिरकाल तक विज्ञान के गवेषक छात्रों की

प्रेरणा स्रोत के रूप में सहायक रहेंगे । यह देखकर आश्चर्य होता है कि एक विज्ञान का उच्चतम विद्वान वैज्ञानिक विषयों पर लिखने के साथ-साथ उसी अधिकार के साथ धर्म के अनेक मौलिक ग्रन्थों पर मार्मिक एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थों को किस प्रकार लिख सका है । 'वैदिक अग्निहोत्र', 'क्रिटि-कल स्टडी आफ फिलास्फी आफ दयानन्द', 'पातंजल राजयोग', 'मैन एण्ड हिज रिलीजन' 'डायलाग आफ उपनिषद्स', 'ह्यूमनटेरियन डायट, 'वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप' आदि आपकी सुप्रसिद्ध अंग्रेजी एवं हिन्दी की पुस्तकें हैं । आपकी अनेक पुस्तकों का अंग्रेजी, फ्रेंच तथा सुहेली भाषा में अनुवाद हो चुका है । उपर्युक्त ग्रन्थों ने आर्य समाज के विद्वत् वर्ग में आपका अप्रतिम स्थान बना लिया है और आज वे शिरोमणि सन्यासी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं । मेरठ, हैदराबाद, कलकत्ता, लुधियाना, मारिशस आदि स्थानों पर होने वाले प्रादेशिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्य समाज शताब्दी समारोहों में अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि के रूप में आपने व्याख्यान देकर आर्य समाज का नेतृत्व किया है । आर्य समाज के प्रति आस्था आपको पैतृक एवं दयाभाग के रूप में प्राप्त हुई । आपने जबसे होश संभाला तबसे अपने स्वनामधन्य पिता जी, (स्व० गंगा प्रसाद उपाध्याय) जो आर्य समाज के प्रख्यात नेता थे, के साथ आर्य समाज के साप्ताहिक सतसंगों में भाग लिया करते थे । आपने बताया था कि मैं आर्य समाज का सदस्य बनना चाहता था किन्तु 18 वर्ष से कम वय होना इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी और जिस दिन मैंने 18 वर्ष की अवधि पार की उसी दिन मैं आर्य समाज का विधिवत सदस्य बन गया ।

आर्य समाज के सभी नियमों का आपने यथावत् पूर्ण रूप से पालन किया । नियमा-नुसार आप अपनी आय का शतांश चन्दा देते रहे हैं । आपका जैसे ही वेतन बढ़ता वैसे ही आर्य समाज का चन्दा बढ़ता गया । आर्य समाज के सिद्धान्तों का आपने गहन अध्ययन किया और परिणामस्वरूप आर्य समाज और उसके सिद्धान्तों के प्रति आपकी अटूट निष्ठा रही । सन्यास के पूर्व आप नियमित रूप से दैनिक यज्ञ करते रहे हैं । कर्तव्यपालन में आप सदैव सतर्क एवं सजग रहे हैं किन्तु पदों की लिप्सा व इच्छा ने आपको कभी लिम्पायमान नहीं किया है । बड़े से बड़ा पद आपकी ओर कातर दृष्टि से देखता रहा है किन्तु अपने पास फटकने नहीं दिया ।

एक बार हमारी समाज ने सर्वसम्मति से आपको प्रधान बनाने का निश्चय किया । प्रस्ताव आपके सम्मुख उपस्थित किया गया तो आपने सविनय प्रधान बनने से मना कर दिया । पुनः कुछ अधिकारियों के साथ मैं आपसे मिला और इस पद को स्वीकार करने के लिये प्रार्थना किया और कहा कि आप हमारी समाज के गौरव के लिये प्रधान पद स्वीकार कर लीजिये, आपका समस्त कार्य हमलोग भली प्रकार से करेंगे, कोई त्रुटि नहीं होने पायेगी और न आपको उपस्थिति के लिये बाध्य किया जायेगा । उत्तर में आपने स्वभाव के अनुसार वनोद के स्वर में कहा-'भाई मैं दूसरे के कन्धों पर बन्दूक नहीं चलाना चाहता' ।

'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त का जीवन्त रूप आप में दृष्टिगोचर होता है । बाल्यावस्था से ही आप खद्दर पहनते हैं । प्रयाग विश्वविद्यालय में जब आप रसायन

विभाग के अध्यक्ष थे, तब भी आप खद्दर की धोती, कुर्ता, गाँधी टोपी तथा पैरों में कपड़े का जूता या गाँधी आश्रम का चप्पल पहनते रहे हैं। यही नहीं विदेशों में भी यही परिधान आपके साथ रहा। जिस समय आप फ्रांस की राजधानी पेरिस गये और जब आपाद् मस्तक, स्वदेशी वस्त्रों से मण्डित पेरिस के मुख्य बाजारों से निकले तब सहस्रों अंगुलिकायें आपकी ओर इंगित हो उठीं और लोग कहने लगे, 'यह नेहरू के देश का आदमी है'। आपका गैरिक वस्त्र (परिधान) जब आपने सन्यास लिया क्या फ्रांस, क्या इंगलैण्ड, क्या जर्मनी सर्वत्र कौतूहल का विषय रहा है।

ज्ञानार्जन तथा ज्ञान का प्रचार आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है। इसलिये जब भी कोई नवीन महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित होती, दाम की परवाह न करते हुए यथाशीघ्र उसे आप क्रय कर लेते हैं। पुस्तक के क्रय करने के सम्बन्ध में आप कहा करते हैं कि लोग चालिस रुपये के जूते खरीदने में संकोच नहीं करते और दस रुपये की पुस्तक खरीदने में आगा पीछा करते हैं यह उचित नहीं है। आपने सन्यास के पूर्व अपना लाखों रुपयों का पुस्तकालय छोड़कर दण्डी स्वामी ब्रह्मानन्द से दीक्षा ली और डा० बाबूराम सक्सेना से काशाय वस्त्र (दिये हुये) धारण किये। कटरा आर्य समाज को अपना आश्रम बनाया। थोड़े ही दिनों में कटरा आर्य समाज में भी एक विशाल पुस्तकालय आपने बना लिया। यह आपके पुस्तक प्रेम का परिचायक है। इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करना आवश्क समझता हूं। एक बार आपके पिता जी एक विशालकाय ग्रन्थ पढ़ रहे थे। पुस्तक के भार से उन्हें उठाने में कष्ट होता था। उन्होंने आपसे कहा, "बेटा मैं इसे आद्योपान्त पढ़ना चाहत हूं किन्तु भारी होने के कारण इसे देर तक पढ़ने में कठिनाई होती है"। आपने तत्काल उत्तर दिया "पिता जी पुस्तक उठाने में कष्ट होता है तो एक एक पृष्ठ फाड़ कर पढ़ लिया करें मैं इसे बाद में जिल्द करवा दूंगा"। मैं इस उत्तर को सुनकर स्तम्भित रह गया। इस घटना से ज्ञान प्रसार की भावना स्पष्ट रूप में प्रतिबिम्बित होती है।

सदाचार और विनय आप में कूट-कूट कर भरा है। अभिमान ने आपको स्पर्श नहीं किया है। मैंने आर्य समाज के अधिवेशनों में देखा कि जब वे आते तो अपने पूज्य पिता जी व माता जी के भरी सभा में चरण स्पर्श करके प्रणाम किया करते थे और विनोद में कहा करते थे, "मेरे तो यही दोनों पुत्र हैं जिनकी चिन्ता मुझे बनी रहती है।" माता पिता के देहान्त के थोड़े दिन बाद ही आपने सन्यास लिया। यूं तो सन्यास की मूल भावना आपके स्वभाव में गार्हस्थ जीवन में ही विद्यमान थी। उदाहरणतः मैं आपके बेली स्थित बंगले पर आपके पिता जी से संस्कृत व दर्शन आदि विषय पढ़ने जाया करता था। एक बार आपके कमरे में किसी पुस्तक हेतु जाना पड़ा। मैंने देखा कि घनघोर सर्दी में केवल एक धोती पहने और दूसरा छोर कन्धे पर रखे लिखने में व्यस्त हैं। मैं यह दृश्य देखकर चकित रह गया और मुझसे रहा नहीं गया। मैंने माता जी से यह घटना बतायी। उन्होंने कहा कि मैंने भी उसे गर्म वस्त्र पहनने के लिये कई बार कहा किन्तु वह कहता है कि माता जी मुझे तो यह वस्त्र भी भारी मालूम पड़ता है। इनकी इस प्रकार की सहन शक्ति का कारण

इनकी अनवरत साधना का फल है। आपने जाड़े के दिनों में छत पर केवल एक चादर ओढ़ कर, गर्मी के दिनों में धूप में चलकर सब कुछ सहन करने के योग्य अपने शरीर को बना लिया है। इसलिये प्रतिकूलता में भी आप अनुकूलता का अनुभव करते हैं। लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणा से आप सर्वथा कभी के विरत हो चुके हैं और सम्प्रति सर्वे भवन्तु सुखिनः तथा विश्व बन्धुत्व की भावना से देश देशान्तर में वैदिक धर्म (मानव धर्म) के प्रचार प्रसार में अविकल भाव से कार्यरत हैं। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझता हूं कि ऐसे सर्वतोमुखी सदाशय, सत्पुरुष का सरलता से साहचर्य प्राप्त कर लेता हूं।

संस्मरण

सन्यासी की गरिमा

स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती से हमारा सम्पर्क उस समय हुआ जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष पद से रिटायर हो चुके थे और सब कुछ त्याग कर 1971 में सन्यास ग्रहण कर चुके थे। सन्यास जीवन में से भी वे हमारे लिए समय निकाल लेते हैं और प्रधान सम्पादक के रूप में भारत की सम्पदा-प्राकृतिक पदार्थ, वैज्ञानिक विश्वकोश के हर पहलू पर हमारा मार्गदर्शन करते हैं। कार्य में किसी प्रकार की ढील उन्हें रुचिकर नहीं होती। वे मेहनत से किये गए कार्य की प्रशंसा करते हैं तथा अधिक कार्य करने पर बल देते हैं।

अभी पिछले दिनों 15 अगस्त 1975 को भारत की सम्पदा विश्वकोश का 'मत्स्य और मात्स्यिकी' से सम्बन्धित पूरक खण्ड प्रकाशित होकर आने पर मैं उसकी अग्रिम प्रति स्वामी जी को आर्य समाज मन्दिर, हनुमान रोड, नई दिल्ली में, जहाँ वे वेदों का अंग्रेजी भाष्य तैयार करने आते हैं, दिखाने गया तो प्रसन्न हुए और तुरन्त ही अगले खण्ड के प्रकाशन के बारे में पूछा। मैंने बताया कि कुछ ही महीने बाद भारत की सम्पदा का चतुर्थ खण्ड जनवरी 76 में प्रकाशित होकर आ सकेगा। क्या स्वामी जी ऐसा नहीं हो सकता कि राष्ट्रीय महत्व के इस मानक ग्रन्थ का विमोचन उत्सव केन्द्रीय रेल मन्त्री श्री कमलापति त्रिपाठी के द्वारा सम्पन्न कराया जाये और इसके लिए आप श्री त्रिपाठी जी के पास चलें और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर ग्रन्थ को जनता तक पहुँचाने का प्रयास करें। इस पर स्वामी जी ने बिना किसी द्वेष या घमण्ड के अपने विनोदी स्वभाव में कहा, "पाठक जी ! क्या एक सन्यासी श्री कमलापति त्रिपाठी, रेल मन्त्री से भारत की सम्पदा के लिए आशीर्वाद लेने जाए ? राष्ट्रीय स्तर के हिन्दी में प्रकाशित इस वैज्ञानिक विश्वकोश का संरक्षण तो रेल मन्त्री को अपने आप ही करना चाहिए।" स्वामी जी कहते गए "हिन्दी के विद्वान श्री कमलापति त्रिपाठी के पास चलने में कोई हर्ज नहीं है। कभी समय मिले और उन्हें भी फुर्सत हो तो हम चल सकते हैं और भारत की सम्पदा के बारे में बातचीत कर सकते हैं"।

इस बातचीत से स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती के व्यक्तित्व में सन्यासी की गरिमा के साथ ही हिन्दी प्रेम दर्शित है।

तुरशन पाल पाठक
सम्पादक, भारत की सम्पदा
प्रकाशन और सूचना निदेशालय,
हिल साइड रोड, नई दिल्ली-110012

पत्रावली

स्वामी जी के पत्र

● संकलकर्ता
डा० शिवगोपाल मिश्र

स्वामी जी ने अपने मित्रों, लेखकों, प्रकाशकों तथा भक्तों को न जाने कितने पत्र लिखे होंगे। उनके पत्र आत्मीयता से ओतप्रोत होते हैं। वे पत्र का उत्तर तुरन्त देना कर्तव्य मानते हैं--उस समय फिर चाहे कार्ड हो या लिफाफा, पेन हो या होल्डर पत्र लिखकर दम लेते हैं। उनकी मेज पर लिफाफे तथा कार्डों की काफी संख्या रखी रहती है। स्वामी जी की लिखावट विशेष प्रकार की होती है, वे शिरोरेखा नहीं लगाते किन्तु पढ़ने में शायद ही असुविधा होती हो, अभ्यस्त होने पर तो बिल्कुल ही नहीं।

आगे कुछ पत्रों की प्रतिलिपियाँ दी जा रही हैं जो उन्होंने विशेषतया अफ्रीका से लिखे हैं। ये पत्र यह बताते हैं कि विदेश में रहकर भी वे लेखन के प्रति कितने सचेष्ट थे। अनुसन्धान पत्रिका का 'रामन अंक' निकल रहा था, उसके लिये आये अनुसन्धान पत्रों का अनुवाद भार स्वामी जी ने ले रखा था (कारण कि मैं उन दिनों दिल्ली में था)। अफ्रीका में यात्रा करते हुये भी वे यह कार्य करते रहे।

अफ्रीका में उन्होंने जो भाषण दिये, या जहाँ जहाँ की यात्रा की, उन सबका विस्तृत वर्णन लिखकर भेजते रहे। उन्हें अपने समस्त शुभ चिन्तकों का सदैव स्मरण आता रहा।

श्री मुकुल चन्द पाण्डेय के पत्र में वे कितने उदार हैं—अपनी लिखी हुई टिप्पणी में संशोधन का अधिकार दे देते हैं।

डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री के पत्र में दिल्ली में आर्य समाज स्थापना शताब्दि समारोह की चर्चा करते हैं तो मेरे लिये लिखे गये पत्र में वे अनुवादकों को पारिश्रमिक देने के सम्बन्ध में चिन्तालु हैं।

1

15-9-70

भाई शिवगोपाल जी,

मैं 20 ता० के सायंकाल आसाम मेल से दिल्ली पहुंचूँगा। मेरा साढ़ू वहाँ हैं......

सस्नेह
सत्यप्रकाश
9-11-70

2

भाई शिवगोपाल जी,

दिल्ली से लौटने पर बराबर बीमार रहा हूँ ... के सम्बन्ध में मैंने एक पत्र डा० आत्माराम को लिखा है आप भी उनसे बातें कर लें।

श्री कृष्ण मूर्ति से कहकर दिल्ली के प्रेस में छपाई का प्रबंध करा दें।

स० प्र०

3

3-3-71

प्रिय मिश्र जी

आज पत्र मिला। मैं उज्जैन से कल शाम को ही लौटा इसलिये विलम्ब हुआ।

मैंने श्री कृष्ण मूर्ति को अभी पत्र लिखा है। 15 या 16 ता० को सिलेक्शन कमेटी रख लें ... 19 और 20 को रुड़की की मीटिंग समाप्त करके आ जाऊंगा अगर 21 ता० को रविवार के कारण असुविधा हो तो 22 ता० को पर मुझे तार से सूचना दिलवादें क्योंकि 22 ता० को मैंने I T में एक व्याख्यान का वचन दिया है।

सस्नेह
स० प्र०

4

Dehradun
28-5-71

My dear Sri Krishnamurthy ji

I shall be reaching Delhi on the 2nd June or so. I would like to meet my colleagues of the Wealth of India work on the 3rd or the 4th. Kindly ask Dr. Misra and others to fix up some time. Most likely I shall be staying with Dr. Atma Ram.

With kind regards

Yours sincerely
Swami Satya Prakash

5

Beli Avenue, Allahabad
5-4-71

Dear Sri Krishnamurthy

I shall be attending the selection Committee meeting on 10th April 1971 at 10.30 A.M. Kindly arrange to send the car at Delhi st. I shall come to PID office directly from the station... get a first class berth reserved. I am sorry to trouble you.

Satya Prakash

6

नैरोबी
27-7-71

प्रिय जगदीश आशीर्वाद

. - . मैं 18 ता० को प्रातःकाल अच्छी तरह पहुँच गया था। दिल्ली से ही तार दे दिया था और काफी लोग मुझे एअरपोर्ट पर लेने पहुंचे थे। किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई मैं अच्छी तरह हूं। रहने-खाने सबकी व्यवस्था बहुत अच्छी है। चार पाँच व्याख्यान दे चुका हूं।

नैरोबी सुन्दर पहाड़ी पर बसा नगर है। ऋतु अच्छी है, नैनीताल की सी। आर्य समाज में अधिकांश पंजाबी व्यक्ति हैं, जो मुझसे बड़ा स्नेह करते हैं ...

प्रो० रामन अंक के लिये अगर अंग्रेजी में कोई लेख और आये हों, तो उसकी एक प्रति टाइप कराके भेजवा दो। मैं अनुवाद कर दूंगा। . . . विभाग में डा० निगम, डा० अग्रवाल, तिवारी जी, टंडन जी, प्रो० कृष्णा जी और वाचस्पति जी सबसे नमस्ते कहना। . . .

तुम्हारा
सत्य प्रकाश

7

दार-एस-सलाम
9-10-71

प्रिय जगदीश आशीष।

. . . रामनन अंक के सब लेखों का अनुवाद मैंने कर डाला है। इन अनुवादों को मैं अपने साथ ला रहा हूँ।

21 अक्टूबर की रात को मैं बम्बई आ जाऊंगा वहाँ से 24 अक्टूबर को हवाई जहाज से चलकर दोपहर तक दिल्ली आ जाऊंगा, दिल्ली में मैं डा० आत्मा राम के घर ठहरूँगा। . . .

कटरा आर्यसमाज के मंत्री जीको सूचना दे देना।

तुम्हारा
सत्यप्रकाश

8

नैरोबी
21-10-71

प्रिय जगदीश

आज मैं शाम को यहाँ से चलकर रात को बम्बई पहुँच जाऊँगा, डा० शिवगोपाल मिश्र का एक पत्र आया था, एक मीटिंग Wealth of India की 27 ता० को दिल्ली में की जा रही है।

अत: अब मैं 28 ता० को प्रात: अपर इंडिया में इलाहाबाद पहुँचूंगा।

मैंने रिजर्वेशन के लिये डालू को दिल्ली लिख दिया है।

आर्य समाज कटरा के मंत्री जी को सूचना दे देना। ऊषा से भी कह देना।

सबको आशीष

सत्य प्रकाश

9

नैरोबी
28-9-71

प्रिय डा० शिव गोपाल जी

आशीष

आपके दो पत्र मिले। मैं एक मास से नैरोबी से बाहर था, उगाण्डा देश गया था।

मैं तो नहीं चाहता था कि आप छोड़ें पर आपकी पत्नी की कठिनाइयों का अनुभव भी करता हूँ अत: डा० आत्माराम जी से सलाह लेकर फिर अपनी जगह वापस जा सकते हैं। मुझे हर हालत में प्रसन्नता ही है। आपने "भारत की सम्पदा" का जो तत्परता से काम सँभाला, उसके लिए अनुगृहीत हूँ। डा० जटा शंकर को और पाठक जी को आशीष कहियेगा।

मैं 16 से 20 अक्टूबर के बीच में शायद दिल्ली पहुँचूं। दूसरे खण्ड की भूमिका मैंने देखी। दिल्ली आकर यदि संशोधन आवश्यक हुआ, निर्णय लूंगा। संभवतः पहले खण्ड की भूमिका भी अविकल रूप से देनी आवश्यक हो या उसका कुछ उपयुक्त अंश। कृष्णमूर्ति जी से सलाह कर लूंगा।

सबको मेरा आशीष कहना

सत्य प्रकाश

10

18-10-71

प्रिय शिवगोपाल जी

मैंने श्री H.C. Sarkar को 26 की शाम को अपर इंडिया एक्प्रेस से इलाहावाद की बुकिंग के लिये लिखा है। यदि आप 27 ता० को Wealth of India सम्बन्धी मीटिंग रखना सम्भव समझते हों तो फौरन उनके घर या स्टेट बैंक (मेन आफिस) में फोन कर दें। उनसे कह दें कि 26 ता० की जगह 27 ता० की बुकिंग अपर इंडिया से करा दें। साथ ही इलाहाबाद में श्री जगदीशप्रसाद मिश्र, डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान 10 बेली ऐवेन्यू इलाहावाद को भी पत्र डाल दें। इसी आशय का एक पत्र श्री मंत्री आर्य समाज कटरा, इलाहावाद को भी डालें।

शेष शुभ

आशीष सहित
सत्य प्रकाश

11

डरबन
18-10-73

प्रिय जगदीश,

तुम्हारा पत्र मारीशस में मिला था। मैं सात अक्टूबर को डरबन आ गया—4 मास की स्वीकृति शासन की ओर से यहाँ रहने की मिली है। पर जितने दिन रहने की उपयोगिता समझूंगा, उतने ही दिन रहूँगा। 1 ली नवम्बर को डरबन से प्रीटोरिया जाऊंगा, वहाँ 15 दिन रहूंगा . . . यहाँ मैंने आर्य अनाथालय में आर्य युवक सभा की हीरक जयंती पर आर्य प्रतिनिधि सभा के भवन (योग पर 4 व्याख्यान), स्त्री आर्य समाज आदि में व्याख्यान दिए . . . योग पर एक पुस्तक अंग्रेजी में लिख रहा हूँ। दो चार दिन में समाप्त हो जायगी (लगभग 200 पृष्ठ) . . .

सत्यप्रकाश

12

दार-एस-सलाम
तंजानिया
3-9-1974

प्रिय जगदीश,

मैं 25 ता० को नैरोबी से मोम्बासा आ गया। वहाँ आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था—कल वहाँ से दार-एस-सलाम आया हूँ। मोम्बासा कीनिआ का सबसे बड़ा बन्दरगाह है और दार-एस-सलाम टैंजानिया की राजधानी और प्रसिद्ध बन्दरगाह है। इन दोनों शहरों में समुद्र का आनन्द है। मैं टैंजानिया में दो-तीन नगरों में जाऊंगा, और कुछ प्रसिद्ध वन भी देखूंगा। 16 सितम्बर को फिर नैरोबी पहुंच जाऊंगा। अक्टूबर के पहले सप्ताह के अन्त में भारत पहुंच कर दिल्ली से सीधे कानपुर जाऊंगा जहाँ 11 से 13 अक्टूबर तक आर्य समाज शताब्दी समारोह है . . .

सस्नेह
सत्यप्रकाश

13

17-12-75

प्रिय डा० शिवगोपाल जी,

आपका पत्र मिला। प्रसन्नता हुई। शायद किसी दिन शेरसिंह जी से भेंट हो, तो उन्हें कहूंगा, वैसे तो आप एक पत्र फिर उन्हें डाल दें। . . . को अनुवाद के सम्बन्ध में पारिश्रमिक देने का उत्तरदायित्व तो हमी लोगों का है भारतीय सरकार को भी आप पत्र लिख दें। जब तक इनको रुपया पूरा नहीं दे दिया जायगा, परिषद से राशि और कहीं भेजी न जा सकेगी।

आशा है कि आनन्दपूर्वक होंगे।

सस्नेह
सत्य प्रकाश

. . . मालूम नहीं जनवरी मास में भी मैं प्रयाग आ सकूं। शायद दिल्ली से बम्बई जाऊंगा। . . .

14

आर्य समाज, नई दिल्ली
10-12-1975

प्रिय विजयेन्द्र जी,

कई मास हुये आपका एक पत्र मिला था मैंने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि मैं दिसम्बर में बम्बई रहने वाला था और रुड़की जाना मेरे लिये असम्भव था। पर किन्हीं अनिवार्य कारणों से यह शताब्दी समारोह दिल्ली में होगा और मैं यहाँ आ गया हूं .....

आशीर्वाद के साथ
सत्यप्रकाश

•

15

आर्य समाज, कटरा प्रयाग,
7-12-72

प्रिय मुकुल जी

...यदि उचित समझें तो इस टिप्पणी को इसी रूप में या सम्पादित करके यथोचित रूप में प्रकाशित कर दें।

आशीष और स्नेह के साथ
सत्यप्रकाश

कृतित्व

स्वामी जी का कृतित्व . . .

1

गणेश जी के समान मोदक प्रिय, व्यास सदृश ज्ञानी एवं निरन्तर लेखनी चलाने वाले, जनक के समान योगी, कण्व की तरह ममतावान, सत्य की प्रतिमूर्ति, अतिथि प्रेमी, मृदुभाषी, सरस्वती एवं लक्ष्मी के अद्भुत संगम; योग और भोग, पौरुष और ज्ञान, धर्म और मोक्ष की त्रिवेणी, आर्य वत्सल, वेद विचक्षण, नागरी नागर, सरस्वती सत्यप्रकाश जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से सबको ईर्ष्या हो सकती है। उचित भी है। तुलसी दास जी ने कहा है—'महिमा मृगी कौन सुकृती की खलबच बिसिखनि बाँची'। प्रशंसक हैं तो आलोचक भी होंगे। किन्तु कृतित्व का वास्तविक मूल्यांकन प्रशंसा या निन्दा न होकर मौलिकता अथवा योगदान का लेखा जोखा हुआ करता है।

2

स्वामी जी (पहले डा० सत्य प्रकाश) प्रारम्भ से ही हिन्दी के हिमायती रहे हैं। विज्ञान को हिन्दी के माध्यम से लोकप्रिय बनाने में उन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। यदि उन्होंने एक ओर बाल साहित्य की रचना की तो दूसरी ओर वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण जैसा कठिन कार्य अंगीकार किया और तमाम लोगों के लिये लेखन मार्ग प्रशस्त करने का उद्योग किया।

राष्ट्र भाषा के माध्यम से शिक्षा के द्वार खोलने के उद्देश्य से अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखीं, लोकप्रिय लेखों की माला पिरोई और अनेक उत्कृष्ट मौलिक ग्रंथों की सर्जना की। वे वैज्ञानिक साहित्य-सृजन के प्रति सर्वदा समर्पित रहे।

3

स्वामी जी के लेखन का मूल उत्स उनका वैदिक साहित्य सम्बन्धी ज्ञान रहा है जो उन्हें विरासत में मिला। उन्होंने हिन्दी साहित्य का भी आद्योपान्त अध्ययन किया है, कवितायें लिखी हैं, संस्कृत का अध्ययन किया है। यह सब उन्होंने अपने अध्यापन कार्य से अतिरिक्त कार्य के रूप में किया है। वे इतना अतिरिक्त कार्य कर सकने में इसलिये सक्षम हो सके क्योंकि उनकी पत्नी घर की सारी व्यवस्था करती थीं। डा० साहब को पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन की ही फिक्र रहती। वे नियमित रूप से 4 बजे उठने वाले—ब्राह्ममुहुर्त में—वैदिक वटु की भाँति, घूमने वाले तथा अच्छा भोजन करने वाले रहे। उन्हें कभी भी पारिवारिक या गार्हस्थ उलझनें सता नहीं पाईं। वे उनसे दूर रहे। उनके सन्यासी बनने में इन्हीं गुणों का योगदान रहा है।

4

स्वामी जी की पठन रुचि अत्यन्त विविधतापूर्ण रही है। साहित्य, धर्म, दर्शन तथा विज्ञान सभी उनके प्रिय विषय रहे हैं। उनके पास एक वृहद पुस्तकालय रहा है जिसमें सभी प्रकार की हिन्दी तथा अंग्रेजी की पुस्तकें रही हैं।

स्वामी जी प्रारम्भ से लिक्खाड़ रहे हैं। वे किसी भी विषय पर लिखने की योग्यता तथा सामर्थ्य रखते रहे हैं। बोलते समय भी इसका परिचय मिलता है। अनेक वाद-विवाद प्रतियोगिता संगोष्ठियों की अध्यक्षता करते समय जब उनके बोलने का अवसर आता तो वे अत्यन्त चुटीली शैली में भाषण देते रहे हैं। टोपी से लेकर अन्तरिक्ष विज्ञान तक किसी भी विषय पर घंटों धारा प्रवाह बोल सकते हैं। अपनी इस शक्ति को इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। आर्य समाज के मंच से बोलते समय हजारों की संख्या में लोगों को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति उनमें है। क्या अंग्रेजी और क्या हिन्दी-दोनों में ही वे धारा प्रवाह बोलते हैं। उनके भाषण वैज्ञानिक तथ्यों से सम्पृक्त होते हैं।

5

स्वामी जी का शब्द भण्डार अक्षय है। वे किसी भी शब्द की व्याख्या के लिये उद्यत रहते हैं और ऐसे सहज ढंग से समझाते हैं कि सुनने वाले को तुष्ट हो जाना पड़ता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन में ऐसे गुण थे।

वे एक ओर डा० रघुवीर की घोर सस्कृतनिष्ठ शब्द-रचना के आलोचक हैं त दूसरी ओर हिन्दुस्तानी के कट्टर विरोधी। 'वीणा' में प्रकाशित लेखमाला इसका प्रमाण है। वे संस्कृत से शब्द निर्माण करने के पक्षपाती हैं। उन्होंने पारिभाषिक शब्दावली में जो योगदान दिया है वह उनके दीर्घकालीन चिन्तन-मनन का फल है। वे अकेले तथा समवेत रूप से शब्द निर्माण में लगे रहे हैं। इसका साक्षी है 'विज्ञान' में प्रकाशित शब्दावली (1930) तथा हिन्दी परिषद, प्रयाग से छपा (1945) पारिभाषिक शब्द संग्रह।

6

स्वामी जी के कृतित्व का उत्कृष्ठ रूप हैं उनकी वे रचनायें जो वैज्ञानिक परम्परा के विकास से सम्बन्धित हैं। स्वामी जी को देश की वैदिक परम्परा, देश में वैज्ञानिक उन्नयन की प्राचीन परम्परा से अटूट राग है। उन्होंने इसे अंकित करने के लिए काफी अध्ययन किया है, उसके समग्र साहित्य का आकण्ठ आस्वाद किया है, तब कलम चलाई है। उनकी व्याख्या मौलिक है, विशेषतया गणित के विकास में उनके अनुसार वैदिक यज्ञों की मूल भूमिका रही है। यही कारण है कि उन्होंने रसायन के साथ-साथ गणित सम्बन्धी ग्रन्थों की विवेचना के हेतु कलम चलाई है। भारत की वैज्ञानिक परम्परा, भारत में रसायन का विकास तथा Founders of Science in India उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

7

स्वामी जी का विज्ञानी रूप उनके शोध निबन्धों में सन्निविष्ट है। उनका शोध विषय कोलाइड रसायन रहा है। इसी पर शोधकार्य करते हुए डी० एस-सी० उपाधि प्राप्त की। बाद में वे पराश्रव्यिकी (ultrasonics) की ओर आकृष्ट हुए और मजे की बात तो यह है कि इस दिशा में भी मौलिकता का परिचय दिया। उन्होंने तत्सम्बन्धी एक समीक्षात्मक पुस्तिका भी लिखी।

स्वामी जी की खोज का एक विषय पुरातत्व रसायन भी रहा है। यह प्राचीन संस्कृति के प्रति अनुराग एवं अध्ययन का द्योतक है। उनका ध्यान सिक्कों, प्राचीन अवशेषों के रासायनिक विश्लेषण की ओर गया और उन्होंने एक पुस्तक Coinage in Ancient India भी लिखी।

8

स्वामी जी को उद्योगों के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। 1947 में भी उन्हें भारत के चीनी उद्योग पर भाषण देते हुये सुना जा सकता था। लेखों तथा रेडियो वर्ताओं में भी इस झुकाव के संकेत प्राप्त हैं। सम्भवतः वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित उपकरणों एवं उद्योगों ने उन्हें प्रेरणा दी थी। वे देश में रसायनों के निर्माण के पक्ष में रहे हैं। उन्होने औद्योगिक साहित्य की श्रीवृद्धि हेतु ग्लीसरीन, साबुन, स्याही पर पुस्तकें लिखीं। रसायन दीपिका, एकक संक्रियायें आदि अन्य आधारभूत ग्रन्थ हैं।

9

स्वामी जी ने प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक साहित्य के अभाव और उसके सृजन की आवश्यकता का अनुभव किया है। सामान्य विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों से ले करके Rare elements जैसी गूढ़ विषयक पुस्तक उनकी लेखनी से प्रस्फुटित हुईं। वे अपनी पुस्तकें बड़े ही श्रम से लिखते, उनके प्रूफ देखते और बारम्बार उनका संशोधन करके छात्रोपयोगी बनाने का दुष्कर कार्य करते रहे हैं। वे अत्यन्त भाग्यशाली रहे हैं कि इन पुस्तकों से उन्हें प्रभूत धन भी प्राप्त हुआ। इनकी एक पुस्तक अमरीका में से पुनर्मुद्रित हुई है।

10

सम्पादक के रूप में स्वामी जी का योगदान कम नहीं। 'विज्ञान' के सम्पादन से लेकर 'मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश', 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' तथा 'भारत की सम्पदा' उनके सम्पादकत्व की घोषणा करते हैं। उन्होंने अनेक तरुणों को लेखन के लिए प्रोत्साहित किया और देश में वैज्ञानिक लेखन का वातावरण तैयार किया।

11

सन्यास ग्रहण करने के बाद स्वामी जी ने वेदों के अध्ययन, व्याख्या आदि की ओर अपना पूरा समय दिया है। वेद में सचित ज्ञान के प्रचार हेतु विदेशों का भ्रमण किया है। वे जो कुछ भी कर रहे हैं उससे उन्हें सन्तोष है।

12

स्वामी जी को अक्षय यश मिला है। उनके शिष्यों की शृंखला देश भर में व्याप्त है। स्वामी जी को चारों ओर सम्मान ही सम्मान मिला है। वे आर्य समाज के द्वितीय दयानन्द हैं। गेरुवे वस्त्र में स्वामी जी विवेकानन्द-जैसी छाप छोड़ते हैं।

आजतक ऐसा वैविध्यपूर्ण लेखक देखा-सुना गया तो वह जान्सन ही था। स्वामी जी चलते-फिरते विश्वकोश हैं। हिन्दी उन्हें पाकर धन्य हुई है।

'विज्ञान' में प्रकाशित लेखों की समग्र सूची 1923 से 1970

		सन्	पृष्ठ
107.	हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य कोश	दिसम्बर 1938	111
108.	ग्रंथियों के अन्त: स्राव—हारमोनों के चमत्कार	जनवरी 1938	11
109.	प्रकृति की प्रयोगशाला में राक्षसी भूलें	जनवरी 1938	32
110.	शिशुओं और बालकों के भोजन का प्रश्न	जुलाई 1940	121
111.	सुगन्धित तैल	जनवरी 1939	34
112.	नकली सोना	सितम्बर 1940	213
113.	समुद्र की कहानी	मई 1939	79
114.	पर्दे की ओट से	नवम्बर 1939	79
115.	अल्युमीनियम के धातु संकर	अक्टूबर 1941	6
116.	रासायनिक खाद्य	अगस्त 1942	164
117.	विश्व ज्ञान	नवम्बर 1942	78
118.	सृष्टि की उत्पत्ति ओर जीवन विकास	अक्टूबर 1947	13
119.	कार्य कारणवाद्	अक्टूबर-दिसम्बर 1948	
120.	वैज्ञानिक वर्षा	जून-जुलाई 1948	193
121.	संयुक्त प्रान्त के उद्योग धंधे	जनवरी-मार्च 1949	
122.	हवाई जहाज	अगस्त-सितम्बर 1949	38
123.	भारत में रसायन की परम्परा और उद्योग-धन्धे	अक्टूबर-नवम्बर 1949	1
124.	हिन्दी गद्य का विकास और दर्शन	अक्टूबर-नवम्बर 1950	6
125.	शून्य की ओर	अप्रैल 1951	3
126.	वेद में पुष्प	जुलाई 1953	97
127.	बीज गणित और बुक कीपिंग की परम्परा	फरवरी 1956	133
128.	भारत की खनिज सम्पदा	जनवरी 1956	120
129.	द्रव्य, अणु और परमाणु	अप्रैल 1956	9
130.	आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि में क्या विज्ञान विघ्न स्वरूप है	अगस्त-सितम्बर 1959	
131.	आधुनिक रसायन की प्रगित	जुलाई 1958	

132.	रुद्रयामल तंत्र और रसायन	जनवरी 1960	97
133.	दक्षिण अफ्रीका की सोने की खानें	जून 1970	
134.	आस्तिकता	नवम्बर 1964	29
135.	विज्ञान के मूल उद्देश्य	दिसम्बर 1964	61
136.	परलोक वासी दो वैज्ञानिक—डा० बी० एन० प्रसाद, तथा होमी जहाँगीर भाभा	मार्च 1966	
137.	स्वर्गीय डा० कर्य्यमाणिक्यं कृष्णन	सितम्बर 1961	138

1957 से 1969 के बीच की रेडियो वार्तायें भी प्रकाशित हैं।

स्वामी जी के लेखों की सूची का विश्लेषण

स्वामी जी ने 135 से अधिक लेख 'विज्ञान' के लिये लिखे हैं। ये लेख अनुवाद, बाल विज्ञान, वैज्ञानिक की डायरी, जीवनी साहित्य, पाठ्य-पुस्तक के अंश, छात्रोपयोगी, रेडियो वार्तायें तथा भाषण के रूप में 1926 से 1970 तक सम्बद्ध हैं।

जीवनी सम्बन्धी लेख

1. हिन्दी के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद बाबू महावीर प्रसाद श्रीवास्तव दिसम्बर 1938 पृष्ठ 79
2. लुई पास्तुर — फरवरी-मार्च, 1928 पृष्ठ 203, जून 1954 पृष्ठ 65
3. एमिल फिशर — फरवरी 1930 पृष्ठ 204
4. आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के रासायनिक अन्वेषण — जुलाई 1932 पृष्ठ 123
5. कलकत्ते में उनसे समागम (डा० गणेश प्रसाद) — अक्टूबर 1935 पृष्ठ 11
6. हिन्दी साहित्य में गौड़ जी का स्थान — दिसम्बर 1937 पृष्ठ 113
7. स्वर्गीय महामहोपाध्याय डा० सर गंगानाथ झा — जनवरी 1942
8. प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव — फरवरी 1961 पृष्ठ 185
9. स्व० डा० गोरख प्रसाद जी और वैज्ञानिक साहित्य — जुलाई 1961 पृष्ठ 39
10. डा० प्रफुल्लचन्द्र राय — नवम्बर 1956 पृष्ठ 46
11. प्रो० प्रशान्त चन्द्र महलनवीस — मई 1957 पृष्ठ 33
12. प्रो० कृष्णन — सितम्बर 1961

(देखें रेडियो वार्ताओं के अन्तर्गत भी)

बाल विज्ञान

1. जल से बिजली विज्ञान — जून 1955 पृष्ठ 91
2. बेतार का तार — अगस्त 1955 पृष्ठ 151
3. – – – – – — दिसम्बर 1956 पृष्ठ 85
4. भाप से चलने वाले जहाज — नवम्बर 1954 पृष्ट 59
5. ऋतु सम्बन्धी विविध बातें — अगस्त 1956 पृष्ठ 23, सितम्बर 1956 पृष्ठ 24

विज्ञान के नये चरण

1. स्वयं चालित मशीनें विज्ञान मार्च 1953 पृष्ठ 163

(देखें रेडियो वार्ताओं के अन्तर्गत)

वैज्ञानिक डायरी

1. विज्ञान अक्टूबर 1951 पृष्ठ 11

(देखिये रेडियो वार्ताओं के अन्तर्गत)

स्वामी जी की रेडियो वार्तायें

● संकलित

स्वामी जी की 1949 से लेकर 1975 के बीच 5 दर्जन से अधिक रेडियो वार्तायें प्रसारित हुई हैं। इनका सम्बन्ध विविध विषयों से है। ये विचारपूर्ण वार्ताओं से लेकर सामयिक वार्ताओं के क्षेत्र से सम्बद्ध हैं। इन वार्ताओं में बहुत सी मासिक 'विज्ञान' नामक पत्रिका में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। शेष का तो आस्वाद ही शेष है।

इन वार्ताओं की सूची आगे दी जा रही है। आवश्यकता है कि विज्ञान परिषद या कोई अन्य संस्था इन वार्ताओं का सम्पादन एवं प्रकाशन करे जिससे हिन्दी संसार को उनकी सेवाओं का पता चल सके। वार्ताओं के समक्ष उनकी तिथियाँ भी अंकित हैं।

स्वामी सत्य प्रकाश जी सरस्वती की रेडियो वार्तायें

□ संकलित

	विषय	वार्ता तिथि
1.	विज्ञान कौतुक : हवाई जहाज सम्बन्धी नई-नई बातें	27-5-49
2.	,, ,, : राडार	29-7-49
3.	,, ,, टेलीफोन और बेतार के तार	23-6-49
4.	वैज्ञानिक की डायरी (Monthly Science review in Hindi) (विज्ञान अक्टूबर 1951)	10-9-49
5.	हिन्दी साहित्य की आवश्यकतायें : (5) वैज्ञानिक साहित्य	6-9-50
6.	कैमरा हमारी फोटो कैसे खींच लेता है (बच्चों के लिए वार्ता) (विज्ञान मई-जून 1951)	31-3-50
7.	संस्कृत में विज्ञान : गणित और खगोल (विज्ञान अगस्त 1951)	18-5-50
8.	विज्ञान समीक्षा (Monthly Science review in Hindi)	12-8-50
9.	हम क्या पढ़ें (Review of latest Hindi publications of particular interest of women)	3-8-50
10.	वैज्ञानिक की डायरी (Monthly Science review in Hindi)	16-6-50
11.	हिन्दी गद्य विकास : विज्ञान और दर्शन (विज्ञान अक्टूबर-नवम्बर 1950)	31-8-50
12.	हिन्दी का नव निर्माण : साहित्य का सर्वाङ्गीकरण	21-11-50
13.	ईंधन का सवाल : अन्वेषण शालाओं में	22-11-50
14.	प्रकृति और विज्ञान : (1) मिट्टी का भी विज्ञान है	15-1-51
15.	भारतीय संस्कृति : प्राचीन रसायन	17-1-51
16.	विज्ञान की प्रगति	17-3-51
17.	हमारे खनिज पदार्थ : (iii) अबरक	20-3-52
18.	औद्योगिक शक्ति के साधन : जल (विज्ञान मार्च 1957)	10-12-52
19.	सूर्य का जीवन : (विज्ञान अक्टूबर 1954)	29-4-53
20.	मानव की सेवा में : (6) टेलीफोन (विज्ञान जुलाई 1954)	14-9-53

21. विज्ञान के महारथी : (12) लुइस पाश्चर (देखें विज्ञान फरवरी-मार्च 1928 विज्ञान जून 1954) 5-4-54
22. अंक और रेखायें : (2) EUCLID का अप्रमाणीकरण (विज्ञान अप्रैल 1957) 13-12-54
23. विश्व कलेंडर 12-1-55
24. कृत्रिम वर्षा के प्रयोग 13-4-55
25. विज्ञान के नये चरण (Science review in Hindi) 19-12-55
26. भारत के प्रमुख वैज्ञानिक : (2) सर पी०सी० रे (विज्ञान नवम्बर 1956) 18-6-56
27. विज्ञान के नये चरण (Quarterly Science review in Hindi) (विज्ञान अक्टूबर 1956) 30-8-56
28. कृत्रिम तारे (विज्ञान फरवरी 1957) 12-12-56
29. भारतीय वैज्ञानिक (1) पी०सी० महालनोबिस 8-1-57
30. प्रकृति की चुनौती : (iii) अनावृष्टि और सूखा 8-3-5
31. विश्वविद्यालयों के लिए : आधुनिक विज्ञान (1) आधुनिक रसायन शास्त्र की प्रगति : (विज्ञान जुलाई 1958) 11-4-58
32. आधुनिक विज्ञान की प्रगति : आध्यात्मिक सत्यों की उपलब्धि में विघ्न स्वरूप है : 17-2-59
33. संसार की तीव्र गति से बढ़ती हुई आबादी का नियन्त्रण केवल परमाणु युद्ध द्वारा ही सम्भव है 16-12-59
34. एकमे द्वितीयम् : विज्ञान दर्शन का एकत्ववाद 4-3-60
35. भारत के प्रमुख उद्योग : रसायन 4-1-61
36. क्या पौराणिक कल्पनायें सत्य थीं : जल-प्लावन 13-1-61
37. कुछ ऐतिहासिक प्रतिभाओं का तुलनात्मक अध्ययन : "Charak Aur Hypocrites" 11-8-61
38. प्राचीन भारत (3) वैज्ञानिक अनुसंधान 22-8-61
39. विज्ञान हमारे लिए है : घर बैठे मनोरंजन 6-9-61
40. विज्ञान के नये चरण 28-9-61
41. विज्ञान के नये चरण 29-3-62
42. परमाणु और उनकी शक्ति : परमाणु के आविष्कार का इतिहास और उनके मूल तत्व (विज्ञान मई-जून 1962) 16-5-62

43. भौतिक विज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर : नक्षत्रों का विकिरण और पदार्थ की अन्तिम स्थिति (जनवरी फरवरी 1964) 6-9-62
44. कोयला, कालिख और हीरा 2-11-62
45. विश्वविद्यालयों के लिए Science today (2) The neutron 11-11-62
46. वैज्ञानिक अनुसंधान और हमारे विश्वविद्यालय 6-12-62
47. प्रस्तुत प्रश्न : Brains Trust Programme 10-3-63
48. प्राचीन चिकित्सा पद्धतियां : (3) प्राचीन और आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन 10-6-63
49. प्रस्तुत प्रश्न 'Brains Trust Programme' 25-8-63
50. सामयिकी : वर्तमान संकट और वैज्ञानिक अनुसंधान (विज्ञान नवम्बर 1963) 14-8-63
51. मानव जीवन एक ही जीवन में समाप्त नहीं होता 16-4-64
52. परमाणु शक्ति और भारत (3) क्या भारत चाहने पर परमाणु बम तैयार कर सकता है 23-6-67
53. प्रस्तुत प्रश्न Brains Trust programme 23-8-64
54. धर्म और विज्ञान (2) विज्ञान का मूल उद्देश्य 16-10-64
55. नये माध्यम : नई सम्भावनायें (3) विज्ञान के क्षेत्र में 21-1-65
56. विज्ञान के नये चरण (विज्ञान समीक्षा) 31-1-66
57. भूभौतिकी (1) भूभौतिकी और उसकी उपयोगिता 14-5-65
58. अणुशक्ति के शान्तिमय उपयोग 21-1-75
59. जल प्रदूषण 9-12-74
60. Spectrum of Secularism (i) Religious Congregations 20-1-73
61. परलोकवासी दो वैज्ञानिक : डा० बद्रीनाथ प्रसाद तथा डा० होमी जहांगीर भाभा (मार्च 1966 में विज्ञान में प्रकाशित)

स्फुट: Contract with B. B. C., Broadcasting House, London, Science Survey, 28-7-60

हमारे आप उत्तरदायी हैं—वैज्ञानिक (लखनऊ रेडियो पर डा० सत्य प्रकाश और डा० हीरालाल दुबेके बीच वार्ता)

(विज्ञान नवम्बर 1947 पृ० 28 में प्रकाशित)

कीटाणु जगत—(विज्ञान दिसम्बर 1963 पृ० 65)

स्वामी जी की कृतियाँ–एक परिचय

□ डा० शिव गोपाल मिश्र

स्वामी जी ने दो दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त अल्पकाय हैं तो कुछ वृहदाकार; कुछ हिन्दी में हैं तो कुछ अंग्रेजी में; कुछ सामान्य कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप में हैं तो कुछ उच्चतम कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों के रूप में; कुछ ऐतिहासिक हैं तो कुछ दर्शन एवं धर्म से सम्बन्धी; कुछ सम्पादित हैं तो कुछ निरी मौलिक। इन कृतियों के माध्यम से स्वामी जी के लेखन में जो त्वरा, जो मोड़ आये हैं तथा उनकी विचार धारा ने जिन जिन तलों का स्पर्श किया है वे सहज ही में समझे जा सकते हैं।

एक ओर स्वामी जी ने विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियों को कोटि कोटि छात्रों के लिए सुगम बनाने का यत्न किया है तो दूसरी ओर प्राचीन भारत की बौद्धिक उपलब्धियों की अनूठी व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनके वैदिक साहित्य सम्बन्धी अध्ययनों से उनका समूचा कृतित्व प्रभावित है। यहाँ तक कि सन्यासी होने के बाद भी जो कुछ लिख रहे हैं वह भी उसी से अनुस्यूत है।

समग्र रूप से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि स्वाम जी बहुपठित, मननशील विद्वा रहे हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति को अपनी दृष्टि से पल भर को भी ओझल नहीं होने दिया। उनका लेखन प्रायः उन सैकड़ों लेखों का समाकलित रूप है जो समय समय पर प्रकाश में आते रहे हैं।

प्रारम्भिक लेखन

1. आधुनिक आवागमन
2. सृष्टि कथा (मूल्य 1 रु०)
3. कुछ आधुनिक आविष्कार
4. बीज ज्यामिति

पाठ्य पुस्तकें

1. हाई स्कूल तथा इंटर के लिए रसायन शास्त्र सम्बन्धी कृतियाँ
2. जूनियर स्कूलों के लिए कृतियाँ

3. विश्वविद्यालयों के लिए—
   - (क) A Textbook of Analytical chemistry (B.Sc)
   - (ख) Advanced Inorganic calculations
   - (ग) Advanced Chemistry of Rare elements
   - (घ) A Textbook of Engineering Chemistry
   - (ङ) रसायन दीपिका (1960)
   - (च) सामान्य रसायन शास्त्र (सं० 2008)
   - (छ) भौतिक रसायन

मौलिक कृतियाँ

1. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा (राष्ट्र भाषा परिषद विहार)
2. प्राचीन भारत में रसायन का विकास (1960)
3. Founders of Science in Ancient India (1965)
4. Ultrasonics and Colloids (एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई)
5. साबुन और ग्लीसरीन (हिन्दी समिति लखनऊ)
6. Coinage in Ancient India (1968)
7. आपतस्तम्भ शुल्ब सूत्रम (1968)
8. बौधायन शुल्ब सूत्रम (1968)
9. Brahma Guptas and his works (1968)
10. Chemical Studies of Archaelogical findings (एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई)
11. रासायनिक·शिल्प की एकक संक्रियायें (1973)

वैदिक विचार धारा एवं धर्म सम्बन्धी कृतियाँ

1. Vincit veritas (1971)
2. Agnihotra (1974)
3. Light within (1974)
4. Patanjal Rajyoga (1975)
5. Nectareal Songs of Vedas (1975)
6. Dayanand's Outline of Vedic Philosophy (1975)
7. मनुष्य और मानवधर्म (1975)
8. वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप

सम्पादित

1. वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली (1930)
2. पारिभाषिक शब्दावली (1945)
3. मानक अंग्रेजी हिन्दी कोष (1971)
4. भारत की सम्पदा 4 भाग

लेखक के रूप में, चाहे हिन्दी के माध्यम से, अथवा अंग्रेजी में, स्वामी जी सफल रहे हैं। उनकी कृतियों का स्वागत हुआ है। उनकी शैली, उनकी भाषा ने नये आयाम दिये हैं। अपने कृतित्व से सैकड़ों तरुण लेखकों को प्रेरित किया है।

आगे उनकी कृतियों का समालोचनात्मक विवरण प्रस्तुत है।

1. **प्राचीन भारत में रसायन का विकास :** प्रकाशक हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश। मूल्य 14 रुपये, पृष्ठ संख्या 840 प्रथम संस्करण 1960

इस पुस्तक में 39 अध्याय हैं जो पाँच खण्डों में विभक्त हैं—वैदिक और ब्राह्मण काल, आयुर्वेद काल; नागार्जुन काल और रसतन्त्र का प्रारम्भ, रसतन्त्र का उत्तर काल तथा रसायन के मूलभूत दार्शनिक विचार। स्वामी जी से 50 वर्ष पूर्व स्वर्गीय आचार्य प्रफुल्ल चन्द्रराय ने 'हिन्दू केमिस्ट्री' नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें उनका ध्यान तांत्रिक रसायन की ओर अधिक रहा है। श्री यादव जी त्रिविक्रम आचार्य ने भी अनेक रसग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। स्वामी जी ने समस्त उपलब्ध सामग्री का अपने ढंग से विवेचन करते हुए पुस्तक के विविध खण्डों के प्राक्कथनों द्वारा देश में रसायन की परम्परा का जो उत्थान-पतन हुआ उसका मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। अन्तिम खण्ड में मूलभूत दार्शनिक विचार तथा रसायन की व्यावहारिक परम्परा का उल्लेख किया है। यह पुस्तक स्वामी जी के गहन अध्ययन एवं विवेचनात्मक वुद्धि की परिचायिका है : सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में यह अत्यन्त सूचनाप्रद है।

2. **Founders of Science in Ancient India :** प्रकाशक रिसर्च इंस्टीच्यूट आफ ऐंशिएंट साइंटिफिक स्टडीज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1965, पृष्ठ संख्या 675, मूल्य 60 रुपये।

इस पुस्तक में 13 अध्याय हैं। इसमें प्राचीन भारत के विज्ञान संस्थापकों के वर्णन के साथ ही विश्व के अन्य भागों में जो प्रगति हुई उसका उल्लेख है। इस पुस्तक में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध किया गया है कि अग्नि की खोज तथा ज्योतिष का विकास नितान्त भारतीय है। पुस्तक का प्रत्येक कथन आधारभूत पाठ उद्धरणों द्वारा पुष्ट किया गया है।

इसका अनुवाद हिन्दी में हो चुका है।

3. Coinage in Ancient India : प्रकाशक रिसर्च इंस्टीच्यूट आफ ऐंशिएंट साइंटिफिक स्टडीज, नई दिल्ली । प्रथम संस्करण 1968, पृष्ठ संख्या 546, मूल्य 100 रुपये ।

इस पुस्तक में 23 अध्याय हैं । इसमें भारतीय सिक्कों की तिथियाँ, उनके पुरातात्विक तथा धातुकर्मीय अध्ययन दिये गये हैं । पुरातत्ववेत्ताओं के लिए वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत करने में यह सर्वथा सक्षम कृति है ।

4. रासायनिक शिल्प की एकक संक्रियायें : प्रकाशक : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी उत्तर प्रदेश । प्रथम संस्करण 1973, पृष्ठ संख्या 623, मूल्य 18 रुपये ।

यह पुस्तक सहयोगी लेखन का फल है । इसमें 25 अध्याय हैं । रासायनिक शिल्प के अध्ययन से सम्बन्ध रखने वाले स्नातक कक्षीय विद्यार्थियों के लिए यह अनिवार्य विषय है । इस सम्बन्ध में हिन्दी ही नहीं किसी भी भारतीय भाषा में कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं था । यह पुस्तक इस अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से लिखी गई है । इसमें विषय विस्तार को सीमित रखने के कारण गणितीय परिकलन यथेष्ठ मात्रा में नहीं दिये जा सके । पुस्तक के अन्त में उपयोगी अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची दी हुई है । पुस्तक में यथास्थान चित्र एवं आरेख भी हैं ।

5. Brahmagupta and his works प्रकाशक Indian Institute of Astronomical Sanskrit Research, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1968, पृष्ठ संख्या 344, मूल्य 50 रुपये ।

ब्रह्मगुप्त विख्यात ज्योतिषविद तथा गणितज्ञ थे । यह पहली पुस्तक है जिसमें ब्रह्मगुप्त के सम्बन्ध में समस्त सामग्री संजोई गई है । यह स्वामी जी के पठन एवं चिन्तन का परिणाम है ।

यदि इसका हिन्दी अनुवाद भी छप जावे तो हिन्दी जगत उनका आभारी होगा ।

6. आपस्तम्ब शुल्व सूत्रम : प्रकाशक रिसर्च इंस्टीच्यूट आफ ऐंशिएंट साइंटिफिक स्टडीज, नई दिल्ली । प्रथम संस्करण 1968 पृष्ठ 472 मूल्य 50 रुपये ।

इस पुस्तक में 21 अध्याय हैं । इसमें कपर्दिभाष्येव , करविन्द सुन्दरराज शुल्व सूत्रों के सम्बन्ध में की गई टीकायें दी हैं और स्वामी जी ने सूत्रों का अंग्रेजी अनुवाद स्वयं कया है ।

7. बौधायन शुल्ब सूत्रम : प्रकाशक उपरोक्त, प्रथम संस्करण 1968 पृष्ठ संख्या 207 मूल्य 50 रुपये ।

इसमें 10 अध्याय हैं । इसमें बौधायन शुल्व सूत्रों के सम्बन्ध में संस्कृत व्याख्या

श्री द्वारकानाथ गज्जर का अंग्रेजी अनुवाद तथा प्रो० जी० थीबों की टीका का सम्पादन स्वामी जी द्वारा हुआ है। प्राचीन ग्रन्थों को लोकप्रिय बनाने की दिशा में यह प्रयास सराहनीय है।

8. **मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश** : प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रथम संस्करण 1970-71, मूल्य 60 रुपये।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 1953 में एक कोश निर्माण परामर्श समिति का गठन किया था किन्तु अनेक व्यवधानों के कारण 1967 तक जब यह कोश कार्य सुचारु रूप से आगे न बढ़ पाया तो यह कार्य डा० सत्य प्रकाश जी को सौंपा गया। उनके निदेशों के अनुसार सम्पूर्ण कोश सामग्री का सम्पादन तथा प्रेस कापी बनाने और संशोधन आदि का महत्वपूर्ण कार्य सम्मेलन के पूर्व प्रधानमन्त्री पं० वलभद्र प्रसाद जी मिश्र को सौंपा गया।

इस कोश की 46 पृष्ठ की भूमिका अत्यन्त सारगर्भित है........."यह स्मरण रखना चाहिये कि यह कोश पारिभाषिक शब्दावली का नितान्त सहायक कोश नहीं। सामान्य साहित्य में प्रचलित पारिभाषिक शब्दों का ही इसमें समावेश किया गया है"। इस भूमिका में मानव वाङ्मय का प्राचीनतम शब्द कोश—वैदिक संहिताएँ, उणादि सूत्र या कोष, ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक शब्दों की निरुक्ति, प्राचीनतम वैदिक कोश निघण्टु, यास्क का निरुक्त, कुछ प्रचलित कोश; भारतीय भाषाओं के 19वीं शती तक के प्रकाशित शब्द कोश; बीसवीं शती के प्रकाशित कतिपय अंग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी भाषा में पुराने कोश, अंग्रेजी भाषा, डिक्सनरियों के विविध वर्ग, यूरोपीय शब्द कोषों का इतिहास, वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली, शब्द निर्माण में कठिनाइयाँ आदि के अन्तर्गत सूचनाप्रद सामग्री दी गई है। अन्त में मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश की विशेषतायें दी हुई हैं। इस कोश में एक ही कमी रह गई है कि अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी उच्चारण नहीं दिए गए।

9. **भारत की सम्पदा** : प्रकाशक पब्लिकेशंस एण्ड इन्फार्मेशन डाइरेक्टरेट, नई दिल्ली

'भारत की सम्पदा' अंग्रेजी में प्रकाश्य Wealth of India का हिन्दी अनुवाद है जिसे कई खण्डों में क्रमशः प्रकाशित होना है। स्वामी जी ने इस अनुवाद कार्य के सम्पादन का भार डा० आत्माराम के महानिदेशन-काल में स्वीकार किया था। इसके लिए भारत भर के विद्वानों के सहयोग से अनुवाद कार्य सम्पन्न कराकर उसको सुव्यवस्थित करके प्रकाशित करने के लिए एक हिन्दी विशेषाधिकारी के निरीक्षण में कार्य प्रतिपादित किया गया। अभी तक इसके 4 खण्ड प्रकाश में आये हैं। इस प्रकार स्वामी जी हिन्दी को संदर्भ ग्रन्थों तक में प्रविष्ट कराने में समर्थ रहे हैं यही उनका योगदान है। भारत की सम्पदा में आधुनिकतम आँकड़े दिये गए हैं और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का पालन किया गया है। जब यह पूरा सेट छप जावेगा तो प्रत्येक पुस्तकालय के लिए आवश्यक सन्दर्भ ग्रंथ होगा।

10. Vincit Veritas वैदिक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण 1971 पृष्ठ 326 मूल्य 15 रुपये।

इस पुस्तक में 26 अध्याय हैं जिनमें विज्ञान और धर्म, आर्य समाज तथा उसके ध्येय, वेद वेदान्त तथा गीता के निचोड़ पर निबन्ध हैं। ये स्वामी जी द्वारा अफ्रीका में दिए गए भाषण हैं।

11. अग्निहोत्र : प्रकाशक दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली; द्वितीय संस्करण 1974 पृष्ठ संख्या 106 मूल्य 10 रुपये।

इस पुस्तक में 5 अध्याय हैं। इसमें अग्निहोत्र विधान का विस्तृत वर्णन है। यह बताया गया है कि धूम्र के साथ ऐसे पदार्थ निकलते हैं जो कीटाणुनाशी होते हैं। इस विधि से आर्य स्वस्थ एवं स्वच्छ रह सके।

12. Light Within प्रकाशक पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय प्रकाशन मन्दिर, आर्य युवक समाज, अबोहर, प्रथम संस्करण 1974 पृष्ठ 92, मूल्य 2 रुपये 50 पैसे।

इसमें 17 परिच्छेद हैं जिनमें वेदों के 17 श्लोकों की खुलकर व्याख्या है। स्वामी जी की शैली द्रष्टव्य है। इसका अन्य संस्करण Nectareal Songs of Vedas के नाम से है जो दयानन्द संस्थान नई दिल्ली से प्रकाशित है जिसमें 45 पृष्ठ हैं और मूल्य 4 रुपये है।

13. Dayanand's outline of Vedic Philosophy : प्रकाशक—दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975 पृष्ठ संख्या 218 मूल्य 8 रुपये तथा 15 रुपये।

इस पुस्तक में 24 अध्याय हैं।

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम अध्याय में जो विचार व्यक्त किये हैं उसको ध्यान में रखते हुए उनकी वैदिक विचारधारा की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

14. पातंजलि राजयोग : प्रकाशक एस० चाँद एंड कम्पनी, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण 1975 पृष्ठ संख्या 341 मूल्य 40 रुपये।

इस पुस्तक में कुल 20 अध्याय हैं। यद्यपि इसमें योग सूत्रों की टीका नहीं की गई किन्तु राजयोग समझने के लिए यह पुस्तक उत्तम साधन है। स्वामी जी का विचार है कि पातंजलि का राजयोग ऐसा विज्ञान है जो सबों के हेतु है किन्तु जिसका अभ्यास सतर्कता के साथ करना होगा। योग को चित्तवृत्ति निरोध कहा गया है जो अभ्यास तथा वैराग्य से प्राप्त किया जा सकता है।

15. **मनुष्य तथा मानव धर्म :** प्रकाशक वैदिक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1975 पृष्ठ 102 मूल्य 3 रुपये ।

इसमें 16 अध्याय हैं ।

इसका अंग्रेजी संस्करण नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका) के आर्य समाज द्वारा प्रकाशित है । इसमें विविध विषयों पर निबन्ध हैं जिनके द्वारा आत्मबोध, ईश्वर, धर्म, विद्वान, प्रार्थना, पूजा, अंधविश्वास आदि पर विचार प्रकट किए गए हैं ।

स्वामी जी के भाषण-1

1935 से 1975 के बीच स्वामी जी ने कम से कम छः महत्वपूर्ण भाषण दिये हैं जो प्रकाशित रूप में प्राप्य हैं। ये भाषण जहाँ वैज्ञानिक जानकारी से ओतप्रोत हैं, वहीं हिन्दी में रचे गये वैज्ञानिक साहित्य के मूल्यांकन, हिन्दी की स्थिति, हिन्दुस्तानी एवं इंग्लिस्तानी जैसे वाद-विवादों पर प्रकाश डालने वाले हैं। इन भाषणों में से फरवरी 1941 में पूना में तथा अक्टूबर 1944 में जयपुर में दिये गये भाषण ऐतिहासिक महत्व के हैं। पाठकों के मनोरंजनार्थ उनके महत्वपूर्ण अंशों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। वे स्वयं बोलते हैं।

स्वामी जी के भाषण (वैज्ञानिक)

1. नये परमाणुओं की रचना-विज्ञान मार्च 1939 पृ० 94

   विज्ञान परिषद की रजत जयंती के अवसर पर (21 फरवरी 1935) श्री सम्पूर्णानन्द जी शिक्षा मंत्री की उपस्थिति में विजयानगरम हाल में दिया गया भाषण

2. आजकल का पारस-विज्ञान नवम्बर 1935 पृ० 49

   विज्ञान परिषद के वार्षिक उत्सव पर 15.11.35 को दिया गया भाषण

3. परमाणु बम की काट : विज्ञान नवम्बर 1945 पृ० 57

   हिन्दू बोर्डिंग हाउस में 1 अक्टूबर 1945 को डा० श्री रंजन के सभापतित्व में दिया गया भाषण

4. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पूना की विज्ञान परिषद के सभापति के पद से दिया गया भाषण फरवरी 1941

5. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 32 वें अधिवेशन के विज्ञान परिषद के सभापति पद से दिया गया भाषण अक्टूबर 1944

6. 'विज्ञान गोष्ठी' के समक्ष दिया गया अध्यक्षपदीय भाषण जनवरी 1975

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पूना की विज्ञान परिषद के सभापति पद से दिया गया भाषण

(फरवरी 1941)

वैज्ञानिक परिषदें

संसार की वैज्ञानिक परिषदों के समक्ष आज दो प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं। पहला तो यह है कि अपने देश की आर्थिक सम्पन्नता किस प्रकार बढ़ाई जाय और दूसरा युद्ध के लिये क्या-क्या तैयारियाँ की जावें। इन दोनों समस्याओं का समाधान राष्ट्रीय और वैज्ञानिक परिषदें पारस्परिक सहयोग से करती हैं। पर दुर्भाग्य तो हमारे देश का है। हमारे देश में कई वैज्ञानिक परिषदें हैं, इण्डियन साइंस कांग्रेस, इण्डियन एकेडेमी आफ सायन्सेज, नेशनल एकेडेमी आफ सायन्सेज, इडिण्यन केमिकल सोसायटी, विज्ञान-परिषद और अनेक संस्थायें, पर युद्ध के इस महत्वपूर्ण अवसर पर हमारे राष्ट्रीय कर्णधार और सूत्रधार इन संस्थाओं के प्रति जिस उदासीनता का परिचय दे रहे हैं वह देश के लिये लज्जा की बात है। एक तो यूरोप के वे देश हैं जहाँ आजकल युद्ध सामग्री तैयार करने के लिए वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त युवक कठिनता से मिल रहे हैं, और एक हमारा देश है, जहाँ हमारे शिक्षित युवकों को छोटी-छोटी नौकरियाँ भी नहीं मिल रही हैं। यदि हमारा देश अपनी समस्या पर स्वयं विचार करने के लिए स्वतंत्र होता तो कदाचित् साहित्य सम्मेलन की आज की यह विज्ञान परिषद सम्मेलन के अन्तर्गत अन्य परिषदों की अपेक्षा अधिक मूल्य रखती और हम आज जिन बातों पर विचार करते उसका प्रभाव देश की समस्याओं पर पड़ता। पर हमें तो वह सौभाग्य ही नहीं प्राप्त है कि अपनी परिषदों में उन गूढ़ समस्याओं पर विचार करें जिनका सम्बन्ध हमारे राष्ट्रीय जीवन से है। मैं तो उस दिन का स्वप्न देखना चाहता हूँ जब कि साहित्य सम्मेलन की इस परिषद के संकेतों पर राष्ट्र का जीवन निर्भर हो। इस वैज्ञानिक युग में राष्ट्रों का परिचालन वैज्ञानिक परिषदों द्वारा ही हो सकता है। पर यह तभी संभव है जब शासकों और शासितों का दृष्टिकोण और लक्ष्य एक हो; अथवा दूसरे शब्दों में जब राज्य-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम दोनों शब्द एक ही भाव के द्योतक हों।

मराठी-साहित्य

महाराष्ट्र प्रान्त के मुख्य केन्द्र पूना में साहित्य सम्मेलन का होना हमारे लिए गौरव की बात है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लिये महाराष्ट्र ने जो सेवायें की हैं वे इतिहास में अमर रहेंगी। मराठी भाषा के साहित्य-पुजारियों ने अपने भाषा-भंडार के परिपूर्ण करने में जिस अध्यवसाय का परिचय दिया है वह सबके लिए एकोंउदाहरण है। उनका

इतिहास और पुरातत्व प्रेम अद्वितीय है। महाराष्ट्र-राज्यों के इतिहास की जो प्रागतिक सामग्री उन्होंने एकत्र की वह हमारे लिये अनमोल है। इसी नगर का भाण्डारकर अन्वेषणालय हमारे लिये एक तीर्थ स्थान हो गया है। यही नहीं इस पूना के 'महाराष्ट्र-कोश-मण्डल' में सात भागों में जो विशाल 'महाराष्ट्र शब्दकोश' प्रकाशित किया है, वह भी विशेष महत्व का है। कुछ दिन हुए इस मंडल के संचालकों में मुझे यह भी पता लगा था कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का एक प्रमाणिक संग्रह भी वे निकालने जा रहे हैं और संभवतः यह प्रकाशित भी हो गया होगा।

मराठी में वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति भी प्रायः सन्तोषजनक है। मैं इनमें से कुछ का उल्लेख करना चाहता हूँ। श्री मराठे की 'रसायन शास्त्र-प्राइमर', प्रो० मोडक का 'निरिन्द्रीय रसायन शास्त्र' और 'सेन्द्रिय रसायन शास्त्र', श्री कालेजों का 'भारतीय रसायन शास्त्र' और डा० आप्टे की 'रसायन-भूमिका' और 'इन्द्रिय-रसायन' आदि पुस्तकें उपयोगी हैं। प्रो० मोडक और श्री आप्टे ने भौतिक विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विषयों पर भी अच्छी पुस्तकें लिखीं हैं। प्रो० मटंगे का 'अपेक्षावाद' ग्रन्थ भी महत्व का है। भौतिक और रसायन की अनेक शालोपयोगी पुस्तकों का उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है। मराठी भाषा में गणित की उच्च पुस्तकों का अभाव है। शालोपयोगी ग्रन्थ तो अवश्य हैं। ज्योतिष सम्बन्धी कुछ अच्छी पुस्तकें निकली हैं, जैसे श्री दीक्षित जी का 'ज्योतिर्विलास' और 'भारतीय ज्योतिष शास्त्र', ढवले जी का 'विश्व की रचना और उत्क्रान्ति', और श्री कोल्हटकर, देशपाण्डे आदि के ग्रन्थ। वनस्पति शास्त्र में, श्री भाटवडेकर, सांवारे और दामले जी की पुस्तकें एवं ताम्हने और कान्हेरे का 'सुलभ वनस्पति शास्त्र' इस विषय के संतोषजनक ग्रन्थ हैं। अन्य विषयों पर भी छोटी-छोटी पुस्तकें हैं। विज्ञान सम्बन्धी स्वतन्त्र पत्रिकाओं का अभी अभाव है। पहले मैकेनिकल इंजीनियर अथवा इंजीनियर नामक एक पत्रिका अंग्रेजी और मराठी दोनों में निकलती थी। इधर 'उद्यम' नामक एक उपयोगी पत्रिका प्रकाशित होने लगी है।

महाराष्ट्रियों ने हिन्दी साहित्य की भी कम सेवा नहीं की। श्री छत्रपति शिवाजी का हिन्दी-प्रेम सबको विदित है जिनका आश्रय भूषण जैसे कवि को प्राप्त हुआ। मराठी और हिन्दी दोनो की लिपि एक होने के कारण इन दोनों भाषाओं का सम्बन्ध तो दृढ़ हो गया है। मैंने अपने संपादन-काल में 'विज्ञान' में अनेक महाराष्ट्र युवकों के लेख प्रकाशित किये जिनसे उनके हिन्दी प्रेम का परिचय मिलता है। डा० वा० वि० भागवत का एक ग्रन्थ 'प्रकाश रसायन' प्रयाग की विज्ञान परिषद ने प्रकाशित किया है। श्री शंकरराव जोशी ने हिन्दी की जो सेवाएँ की हैं, वह अद्वितीय हैं। इन्होंने कृषि और वनस्पति विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं। अभी बम्बई के प्रो० रा० ना० भागवंत की एक पुस्तक का अनुवाद श्री गजानन जागीरदार ने 'रसायन-शास्त्रान्तर्गत-नवल कथा' नाम से किया है। श्री केशव अनन्त पटवर्धन जी का 'बनस्पति-शास्त्र' विषयक ग्रन्थ उल्लेखनीय है। हमें यह आशा है कि हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य के उत्थान में हमें अपने महाराष्ट्र बन्धुओं का

पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा । राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी से जितनी ममता हमें है, उतनी ही सब प्रान्त वालों को होनी चाहिये । हम तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब हिन्दी में ग्रन्थ लिखना सभी प्रान्तों में उतने गौरव का समझा जायगा जितना कि अंग्रेजी में लिखना इस समय समझा जाता है ।

पारस्परिक सहयोग

मुझे हिन्दी के प्रति जितनी निष्ठा है उतनी ही अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति भी, और मैं यह चाहता हूँ कि सभी भाषाएँ एकसमान फूलें फलें । पर मैं साथ-साथ यह भी चाहता हूं कि शक्ति का दुरुपयोग न हो । जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, मेरी यह अभिलाषा है कि समस्त भारतीय विद्वान हिन्दी के प्रति कम से कम उतना तो राग प्रकट करें जितना कि वे अंग्रेजी के प्रति प्रकट करते हैं । मैं यह नहीं कहता कि बंगाली भाई बंगाली भाषा का परित्याग करें और मराठी या गुजराती सज्जन अपनी भाषा की सेवा न करें । पर मैं यह चाहता हूं कि उच्च साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी में लिखना वे अपना गौरव मानें क्योंकि हिन्दी उनकी और उनके राष्ट्र की भाषा है । यह तो हम सब जानते हैं कि समस्त भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति बहुत धीमी है । अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए हिन्दी में ही अब आठ-दस से अधिक अच्छी पुस्तकें वर्ष भर में नहीं छप पाती हैं तो अन्य प्रान्तीय भाषाओं में तो और भी कम छपती होंगी । इस दृष्टि से हम संसार की दौड़ का कभी साथ नहीं दे सकते । सन् 1940 में हमारी प्रान्तीय भाषाओं में जिस कोटि की जितनी संख्या में पुस्तकें निकल रही हैं उनसे अधिक तो यूरोप में 1740 में ही निकली थीं । आजकल तो हिन्दी में अच्छे और बुरे सभी प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि कठिनता से एक-डेढ़ हजार पृष्ठों की होती होगी । इससे कहीं अधिक वृद्धि यूरोपीय देशों में छोटे से छोटे प्रकाशक द्वारा होती है । ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम सब मिलकर वैज्ञानिक साहित्य की ओर ध्यान दें और अलग-अलग शक्तियों का दुरुपयोग न करें ।

मैं अन्य प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग दो प्रकार से चाहता हूँ । एक जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हम करें उन्हीं का प्रयोग सब प्रान्तों में हो । यह बात कुछ अधिक कठिन नहीं है । दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूं वह यह है कि उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य के लिए सब प्रान्त हिन्दी को माध्यम बनावें । हिन्दी से मेरा अभिप्राय सर्वसम्मत राष्ट्र भाषा से है । मैं इस बात को कुछ और स्पष्ट कर देना चाहता हूं । हाई स्कूल या मैट्रिक्युलेशन तक की परीक्षा के सब ग्रन्थ प्रान्तीय भाषाओं में हों और इन सब भाषाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हो । पर आगे कालेज की शिक्षाओं में ग्रन्थ हिन्दी भाषा में हों । बी० एस-सी०, एम० एस-सी० आदि कक्षा की शिक्षा का माध्यम समस्त प्रान्तों में हिन्दी होना चाहिए और सभी प्रान्तों के आचार्यों को हिन्दी में लेखन, अध्ययन एवं अध्यापन करने में अपना गौरव समझना चाहिए । सारांश में मेरी यह उत्कट इच्छा है कि निकट भविष्य में हिन्दी को वह स्थान मिले जो इस समय अंग्रेजी को प्राप्त है । अनुसन्धानों एवं अन्वेषण की पत्रिकाओं का माध्यम भी हिन्दी हो ।

यदि समस्त प्रान्तों के व्यक्ति परस्पर सहयोग से हिन्दी के उच्च साहित्य का भण्डार बढ़ावें तो धन, समय और शक्ति तीनों का ह्रास नहीं होगा। इसके साथ-साथ लाभ भी अनेक होंगे। आज हमें यदि न्याय या वेदान्त के किसी विषय को पढ़ाने के लिए एक आचार्य की नियुक्ति करनी होती है, तो हम किसी भी योग्य पंडित को रख लेते हैं चाहे वह काशी का हो, या गया का, या नवद्वीप का मद्रासी हो या महाराष्ट्री। इस प्रकार इस समय विश्वविद्यालय में जीव-विज्ञान, गणित, भौतिक या रसायन का अध्यापक नियुक्त करने में हमें प्रोफेसर रामन्, कृष्णन्, घर, साहा, साहनी, देशपांड़े आदि किसी की नियुक्ति करने में कोई कठिनता नहीं प्रतीत होती। यदि बंगलोर और कलकत्ता दोनों की उच्च शिक्षा का माध्यम एक न होता तो प्रो० रामन् कलकत्ते और बेंगलोर दोनों में कैसे काम करते ? जिस रसायन विभाग में मैं काम करता हूँ उसमें दो पंजाबी, दो काश्मीरी, दो संयुक्त प्रान्तीय और पाँच बंगाली हैं। हमारे एक अध्यापक पंजाब, पटना, उड़ीसा और ढाका में अध्यापक रह चुके हैं। अतः इस प्रकार की परिस्थिति को देखते हुए हमें यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के स्थान पर प्रान्तीय भाषा को माध्यम बनाना है तो सब प्रान्तों में उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही होना चाहिए।

अहिन्दी भाषियों का वैज्ञानिक विभागों पर प्रभुत्व होना हिन्दी के माध्यम बनाने में सदा बाधक रहा है। कहीं-कहीं तो यह प्रभुत्व इस सीमा तक बढ़ गया है कि हिन्दी भाषियों को न तो उच्च वैज्ञानिक कार्य करने की सुविधा और अवसर दिया जाता है और न ऊँचे पद पर पहुंचने की कोई संभावना प्रतीत होती है। राष्ट्रीय भावना के अभाव में भिन्न प्रान्तियों से हिन्दी के प्रति राग रखने की आशा करना भी अस्वाभाविक है।

मैं यह समझता हूं कि अहिन्दी प्रान्तों में उच्च शिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जाना सर्वथा वांछनीय होते हुए भी दूर की बात है। अतः हिन्दी भाषी प्रान्तों में विश्वविद्यालयों में उच्चाध्यापकों की नियुक्ति करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वे हिन्दी भाषी हों। हिन्दी भाषी अपने ही प्रान्तों में कुछ ऐसे व्यूह में फंसे हुए हैं कि उन्हें प्रोत्साहन मिलना तो अलग, अपने ही विश्वविद्यालयों में निरुत्साहित होना पड़ता है। न तो उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है और न फिर उनकी योग्य पदों पर नियुक्ति ही हो सकती है। हिन्दी-भाषी प्रान्त में एक अहिन्दी भाषी अध्यापक की नियुक्ति हिन्दी माध्यम के प्रश्न को बीस वर्ष आगे ढकेल देती है। अतः इस सम्बन्ध में हिन्दी-भाषी प्रान्तों में जनता का ध्यान आकर्षित होना चाहिए।

हिन्दी भाषियों का उत्तरदायित्व

कुछ थोड़ी सी अनुवादित पुस्तकें अथवा सर्व साधारण की रुचि की पुस्तकें प्रकाशित कर देने से ही हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषियों का गौरव नहीं बढ़ सकता। जब तक उच्च कोटि के वैज्ञानिक कार्यों में हमारे हिन्दी भाषी भाग न लेंगे और संसार के समक्ष

अपनी योग्यता का परिचय न देंगे, तब तक हिन्दी को गौरव नहीं मिल सकता। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूं, कुछ तो असुविधाओं और बाधाओं के कारण हिन्दी-भाषी वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अभी नहीं बढ़ सके हैं, पर ऐसे भी अनेक सज्जन हैं जिन्होंने अपने स्थान और पद का पूरा लाभ नहीं उठाया है। वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रति उनकी उपेक्षाओं ने उन्हें प्रगति में पीछे डाल रक्खा है। यही कारण है कि हिन्दी भाषियों में रामन्, रामानुजम्, कृष्णन्, प्रफुल्ल राय, जगदीश वसु, मेघनाद साहा आदि के टक्कर के व्यक्तियों का नितान्त अभाव है। केवल एक दो अपवाद हैं। अध्यापक के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि संयुक्त प्रान्त के हिन्दी भाषी विद्यार्थी योग्यता और अध्यवसाय में किसी भी प्रान्त के विद्यार्थियों से पिछड़े नहीं हैं, पर सारा प्रश्न तो प्रवृत्ति का है। हमारे योग्य विद्यार्थियों में मौलिक अनुसन्धानों के प्रति प्रवृत्ति जागृत नहीं होने दी गई। व्यक्तियों के गौरव से समाज एवं साहित्य का गौरव होता है। यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव मिलना है तो यह तभी हो सकता है जब हिन्दी-भाषियों की गणना भारत के प्रमुख वैज्ञानिकों में तो कम से कम हो। प्रमुख वैज्ञानिकों का विश्वविद्यालयों पर प्रमुत्व सरलता से हो सकता है और जब तक हिन्दी भाषा-भाषियों का प्रमुत्व हमारे विश्वविद्यालयों पर न होगा तब तक हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य की वास्तविक वृद्धि नहीं हो सकती।

अध्यापकों की ओर से अड़चनें

हमारे प्रान्त में हाई स्कूल की परीक्षा तक के लिए वैज्ञानिक शिक्षण का माध्यम हिन्दी स्वीकार किया जा चुका है। पहले तो यह कहा जाता था कि हिन्दी को माध्यम बनाने में सरकार की ओर से सारी अड़चनें हैं, पर इधर मेरे अनुभव में आया है कि सरकारी अड़चनें तो दूर भी हो सकती हैं, पर अध्यापकों की ओर से और अधिक बाधाएं प्रस्तुत की जा रही हैं। जब मैं स्कूल में पढ़ता था मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि सायन्स अध्यापक तो केवल बंगाली ही हो सकता है, अथवा बंगालियों को ही सायन्स आ सकती है यह बात थी कि लगभग सभी स्कूलों में सायन्स के अध्यापक बंगाली थे। पर अब यह बात नहीं है। इस समय हाई स्कूलों में गणित और विज्ञान के जितने अध्यापक हैं वे अधिकतर अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षित हैं। वैज्ञानिक विषयों को हिन्दी में पढ़ाने में कुछ कठिनता अवश्य होगी, पर थोड़े से अभ्यास से उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। खेद की बात यह है कि हमारे अध्यापक थोड़ा-सा भी परिश्रम नहीं उठाना चाहते। वे अनेक निर्मूल शंकाएं प्रस्तुत किया करते हैं। मैं चाहता हूं कि वे समस्त प्रश्नों पर सहानुभूति से विचार करें और अपनी थोड़ी असुविधाओं के कारण राष्ट्र के इस महान यज्ञ में बाधक न हों।

कांग्रेस की अनुचित नीति

देशी भाषाओं के प्रचार में कांग्रेस ने जितनी उत्सुकता प्रकट की उतनी बुद्धिमता का परिचय नहीं दिया। जितना उन्होंने मुसलमानों का न्याय विरुद्ध पक्षपात किया, उतना

ही अत्याचार हिन्दी के साथ भी किया। काका कालेलकर जी की पवित्र भावनाओं का सत्कार करते हुए भी हम उनकी नीति का पूरा समर्थन नहीं कर सकते हैं। हमारे और उनके विचारों में भेदक-भित्ति स्थापित करना तो संभव नहीं है, संभव है कि हम दोनों का आदर्श एक ही हो, पर उस आदर्श तक पहुंचने की जो विधि उन्होंने निकाली है वह अस्वाभाविक है और काम बनने की अपेक्षा बिगड़ता अधिक है। साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत राष्ट्र की दृष्टि से मैं यह चाहता हूं कि भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रधानता उत्तरोत्तर अधिक होती जावे। मैं जब हिन्दुओं से कहता हूं कि तुम बच्चों को स्कूलों में उर्दू के स्थान में हिन्दी दिलवाओ, तो इसलिए नहीं कि उन्हें मुसलमानों से पृथक करना चाहता हूं। मैं तो मुसलमानों से भी यह कहता हूं कि तुम भी उर्दू छोड़कर हिन्दी पढ़ो। पर मैं जानता हूं कि इसमें हित होते हुए भी वे मेरी बात सुनने को आज तैयार नहीं हैं। हिन्दू लोगों पर मेरे कथन का प्रभाव अधिक पड़ सकता है। हिन्दी में फारसी शब्दों का अपनाना एक बात है, और हिन्दी की प्रतिद्वन्दिता में जिस ढंग की उर्दू चल रही है उसको ग्रहण करना दूसरी बात है। यदि हम फारसी शब्द अपनावेंगे तो उसी प्रकार जैसे गुजराती में अपनाये गये हैं। मैं उर्दू को समानान्तर अलग महत्व देने के पक्ष में नहीं हूं।

हिन्दी या उर्दू का एकीकरण 'हिन्दुस्तानी' नहीं है। 'हिन्दुस्तानी' बाजारू, कामचलाऊ चीज है और उसकी रूप-रेखा निर्धारित करने के लिये किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं है। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, नागपुर, प्रयाग, लखनऊ और दिल्ली के बाजार की हिन्दुस्तानी जो वहाँ के निवासियों की सुविधा की दृष्टि से स्वतः बन गयी हो, एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न होगी। उर्दू शिक्षित मुसलमानों के सम्पर्क से बोलचाल की भाषा में जो अन्तर आया हो उसे ही क्यों हिन्दुस्तानी कहा जाय ? महाराष्ट्र प्रदेश की हिन्दुस्तानी के लिए महाराष्ट्र भाषियों की सुविधा से कुछ परिवर्तन स्वतः हो जायेंगे। बंगाल में सर्वसाधारण की हिन्दी में बंग-पदावली और मुहावरे प्रविष्ट हो जायेंगे। ऐसा होना तो सर्वथा वांछनीय है : उर्दू शिक्षित मुसलमानों की सुविधा की हमें अवहेलना नहीं करनी है। जीवन में एवं अपने प्रतिदिन के व्यवहार में परस्पर हम काम निकाल लेते हैं और किसी को एक दूसरे की भाषा के प्रति शिकायत का अवसर नहीं मिलता। फिर क्यों ऐसी साधारण-सी बात के लिए समितियाँ और आयोजनायें बनाकर पारस्परिक अन्तर के बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है ? मुसलमानों को हमारे साथ रहते-रहते अब पांच सौ (500) वर्ष हो गये। हम दोनों ने बोलचाल की दृष्टि से अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है।

बोलचाल की भाषा से साहित्य का काम नहीं निकल सकता, यह एक परम सत्य है। सृष्टि के आदि से अब तक दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों की बात तो अलग विशुद्ध ललित-साहित्य भी केवल बोलचाल की भाषा पर निर्भर नहीं रह सकता। जो

लोग इस प्रकार का भगीरथ-प्रयत्न करना चाहते हैं उनका उद्यम सराहनीय है, पर सर्वथा अवांछनीय भी।

वस्तुतः 'हिन्दुस्तानी' का वितंडा व्यर्थ है। सब की सुविधाओं को सहानुभूति से देखते हुए स्वतः सर्वसाधारण की अवश्यकतानुसार एक बोली बन जाती है, उसके लिए देशभक्तों और साहित्यिकों के उद्गार और वितण्डा की कोई आवश्यकता नहीं। रही साहित्यिक भाषा की बात, उसमें तो उर्दू और हिन्दी अपनी निश्चित रूप-रेखा पर अलग-अलग विकसित होंगी और उन्हें होने दिया जाय।

पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दों का ग्रहण

हमारी भाषा में प्रतिदिन पाश्चात्य शब्दों की संख्या बढ़ रही है। इसके कई कारण हैं जिनमें प्रमुख कारण पाश्चात्य देशों में बनी हुई अथवा पाश्चात्य संस्कृति पर भारत में बनायी गयी वस्तुओं का प्रचार देश में बढ़ रहा है। प्रत्येक वस्तु अपने साथ अनेक शब्दों को ला रही है, और ये शब्द प्रतिदिन हमारी भाषा में घुलमिल रहे हैं। आज से कुछ शताब्दियों पूर्व मुसलमान शासकों के समय में इसी प्रकार के अनेक फारसी और अरबी शब्दों का प्रवेश इस देश में हुआ था, जिसने आज उर्दू की रूप-रेखा बनायी। पाश्चात्य शब्दों के संसर्ग से हमारी भाषा की रूप-रेखा परिवर्तित हो रही है, और इस प्रकार जिस भाषा या बोली के बनने की संभावना है, उसका नाम मैंने 'इंगलिस्तानी' दिया है। इस विषय का कुछ विशद विवेचन मैं अपने लेखों में कर चुका हूं। आवागमन के साधन, जलयान एवं वायुयान के सुलभ होने से और रेडियो की व्यापकता के कारण संसार के दूरस्थ देशों में भी सामीप्य स्थापित होता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में शब्दों का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है। खेद की बात है कि हमें इस समय दूसरे देशों से लेना ही अधिक है, अपने शब्द देने को बहुत कम।

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में भी यह स्पष्ट है कि हमें अनेक पाश्चात्य शब्द ज्यों के त्यों अपनाने पड़ रहे हैं। इन शब्दों के अपनाने में अनेक सुविधाएं हैं। देश-विदेशों के पदार्थ पाश्चात्य नामों पर बिकते हैं, जैसे मशीनें और उनके भाग, दवाएं, रासायनिक वस्तुएं। दूसरी सुविधा यह है कि नये शब्द बनाने के परिश्रम से बचत होती है, विशेषतया इस दृष्टि से कि नये शब्द के सर्वमान्य होने का भरोसा भी नहीं रहता है। तीसरी बात यह है कि भारत की सब प्रान्तीय भाषाओं में और उर्दू में भी, इनका एक-समान व्यवहार हो सकता है। और चौथी बात यह है कि इनमें से अनेक शब्द सब पाश्चात्य देशों में एकसमान प्रचलित होते हैं। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखते हुए हमारे विश्वविद्यालय के वाइसचान्सलर श्री अमर नाथ झा ने सेन्ट्रल एडविजरी बोर्ड आफ एज्युकेशन की सायंटिफिक टर्मिनालाजी कमिटी के समक्ष जो विचार प्रस्तुत किए उनसे हम निम्न परिणाम पर पहुंचते हैं।

जिस प्रकार पाश्चात्य शब्दों का त्याग करना संभव नहीं हो रहा है, उसी प्रकार पाश्चात्य शब्दों का सर्वथा ग्रहण करना भी संभव नहीं है। यूरोप में ही तीन प्रकार की शब्दावलियां प्रचलित हैं – (1) अंग्रेजी की (2) जर्मन की और (3) रूस की। यह कहना ठीक नहीं कि समस्त यूरोप में वैज्ञानिक शब्दावली लगभग एक ही है। मैं यहां कुछ अंग्रेजी और जर्मन शब्दों की सूची देता हूं। दोनों भाषाओं में सहस्रों शब्दों की भिन्नता है। यदि ये दिन युद्ध के न होते तो मैं यह कहने की धृष्टता करता कि यदि पाश्चात्य शब्द अपनाने ही हैं तो वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमें अंग्रेजी की अपेक्षा जर्मन शब्द अपनाने चाहिए। मेरा अभिप्राय यह है कि हममें से बहुतों को यह भ्रान्ति है कि यूरोप की भाषाओं की वैज्ञानिक पारिभाषिक पदावली सर्वथा एक-सी है। जिस सीमा तक हम अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं, उतनी सीमा तक जर्मन, इटली और रूस वाले नहीं होते। हममें से बहुत से अंकगणित और साधारण ज्योतिष के शब्दों को अपनाने में भी हिचकिचाते हैं। अक्षांश, विषुवत्, व्याज, भिन्न, सम, विषम, धन, ऋण, चक्रवृद्धि, व्यास, वृत, कर्ण आदि अनेक शब्द हमें परम्परा से प्राप्त हैं। इनको छोड़ कर बोलचाल के शब्द गढ़ना अथवा पाश्चात्य शब्द लेना अपने परम्परागत साहित्य से संबंध तोड़ना है। इसी प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्र के अनेक शब्द हमारे प्राचीन साहित्य में पाये जाते हैं, जिनका अब फिर प्रचार किया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दों के संबन्ध में मेरी नीति

इस विषय को अधिक विस्तार न देते हुए पारिभाषिक शब्दों के संबंध में मैं निम्न नीति का प्रस्ताव करूँगा :—

(1) हिंदी और उर्दू के समझौते की आशा व्यर्थ है। हम चाहते हैं कि जिन्हें उर्दू से निष्ठा हो वे उसके साहित्य की अभिवृद्धि करें। जिस प्रकार संसार की अन्य भाषाओं से हमारा विरोध नहीं, उसी प्रकार इससे भी विरोध नहीं है। पर हां, हम अपनी शक्ति हिंदी की सेवा में लगा देंगे और इसकी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए।

(2) जितने शब्द संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं, उनका तदर्थ में व्यवहार करना चाहिए।

(3) ऐसे पाश्चात्य शब्द जो यूरोप की सब भाषाओं में समांतर हों, उनको सुविधा के लिए ग्रहण किया जा सकता है यदि इनके कोई पर्याय हमारे यहां नहीं हैं। पर ये सब विशेष परिभाषाओं के लिए हों, न कि साधारण शब्दों के लिए।

(4) अपनी भाषा की मर्यादा एवं रूप-रेखा पर दृष्टि रखते हुए फारसी-अरबी शब्द (यदि नितान्त आवश्यक हों तो) भी अपनायें जांय, पर अपनाते समय भावना किसी के साथ समझौते की न हो।

(5) कहां पर संस्कृत शब्द लेने चाहिए और कहां प्राकृत, अंग्रेजी, जर्मन या फारसी इसके लिए कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है। यह बात विशेषज्ञों और जनता दोनों के अधीन है। संभव है कि कुछ शब्दो के हिन्दी, उर्दू और पाश्चात्य पर्याय तीनों ही प्रचलित होते रहें। जैसे (1) दूरदर्शक, दूरबीन, टेलस्कोप। (2) वायुयान, हवाई जहाज और एयरोप्लैन। (3) डाकखाना और पोस्ट आफिस। (4) कोर्ट, कचहरी और न्यायालय। ये पर्याय अमर हो गये हैं और जनता ने सबको स्वीकार कर लिया है। एक के लिए कई पर्यायों के उपयोग होने में कोई हानि भी नहीं। जर्मन भाषा में कई पर्यायों का भी उपयोग होता है।

(6) जब तक रासायनिक व्यापार पर हमारा अधिकार नहीं है और जब तक हमारा राष्ट्र अपने शब्दों को यथोचित महत्व न देगा, तब तक व्यापारिक पदार्थों के लिए हमें विदेशी शब्द ही ग्रहण करने होंगे। जर्मनी में बने हुए रासायनिक पदार्थों की बोतलों पर जर्मन, अंग्रेजी, इटैलियन आदि पर्याय छपे होते हैं और यदि हमारा आग्रह हो तो वे हमारे देश में भेजे गए पदार्थों पर हिंदी नाम भी छाप सकते हैं।

(7) मुझे सबसे अधिक खेद इस बात का रहता है कि हिंदीं में विज्ञान सम्बन्धी लेखकों का अभाव तो है ही, इससे भी अधिक अभाव विज्ञान विषयों के पाठकों का है। यही नहीं विज्ञान विषय पर लिखने वाला नवागत युवक कभी पूर्ववर्ती लेखकों के लेखों को पढ़ने का न कष्ट उठाना चाहता है, और न ऐसा करना आवश्यक ही समझता है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक लेखक नयी शब्दावली बनाने लगता है। यदि इस प्रकार की प्रथा बन्द न की गई तो अच्छे से अच्छा शब्द भी कभी प्रचलित न हो पावेगा। अन्य भाषाओं में तो निरर्थक एवं विपरीत अर्थ के शब्द भी प्रचलित हो गये हैं। इसका फल यह है कि चालीस वर्ष के प्रयत्न के उपरान्त भी हमारे पारिभाषिक शब्द उतने ही कच्चे है जितने की प्रारम्भ में थे। पारिभाषिक शब्दों का ऐतिहासिक महत्व होता है और जब तक कोई विशेष कारण न हो इनमें परिवर्तन न करना चाहिए।

मुझे तो खुसरो, रहीम, इंशा और जायसी की याद आ जाती है। मैं तो समझता हूँ कि हम हिन्दी की साहित्यिक रूप-रेखा को विकृत न करते हुए इसके भण्डार को समस्त ज्ञान-विज्ञान से भरपूर कर दें। जिस भाषा के प्रवाह को चंद, सूर, तुलसी, रहीम, जायसी, देव, केशव और बिहारी ने पद्य में, इंशा, लल्लू लाल आदि ने गद्य में हम तक पहुंचाया, नानक, कबीर, मीरा, दादू, पलटू ने जिसके द्वारा आत्मज्ञान और भक्ति का प्रचार किया, दयानन्द ने भिन्न प्रान्तीय होते हुए भी जिस रूप-रेखा की हिन्दी को राष्ट्रीय रूप दिया और जिसे

23

इस युग में हरिश्चन्द्र, द्विवेदी, श्याम सुन्दर दास, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने पुष्ट किया है, जिस भाषा में शंकर, गुप्त, हरिऔध से लेकर वर्मा-त्रय, प्रसाद, निराला, पन्त आदि अनेक कवि तक अपना कार्य करते रहे हैं, जिसके वैज्ञानिक साहित्य को सुधाकर द्विवेदी, लक्ष्मी शंकर मिश्र, रामदास गौड़, महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, ओंकारनाथ शर्मा, निहालकरण सेठी, फूलदेव सहाय वर्मा, अत्रिदेव गुप्त, मुकुन्द स्वरूप वर्मा, गोरख प्रसाद, आदि लेखकों ने इस सीमा तक पहुंचाया है, उस भाषा को हम विकृत होने से बचावें और परमात्मा हमें शक्ति दे कि हम उत्तरोत्तर उसकी अधिक सेवा कर सकें।

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 32 वें अधिवेशन, जयपुर के विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिये गये भाषण का सारांश

उपस्थित साहित्यानुरागी देवियो और सज्जनो,

आज से लगभग चार वर्ष पूर्व इसी अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के 29 वें अधिवेशन में जो पुणे में हुआ था मुझे इस विज्ञान-परिषद् के सभापति होने का गौरव प्राप्त हुआ, और आज फिर जयपुर के इस अधिवेशन में मुझे उसी प्रकार की सेवा का अवसर दिया जा रहा है, उससे सम्मेलन का मेरे ऊपर अनुग्रह स्पष्ट है। इस कृपा के लिए धन्यवाद तो दिया जा सकता है, पर इतने शीघ्र ही इस आसन पर मुझे दोबारा विठा देने से यह अभिप्राय भी व्यंजित होता है, कि हिन्दी साहित्य के वैज्ञानिक क्षेत्र में सेवा करने वालों की संख्या बहुत सीमित है और संकुचित। हिन्दी भाषा प्रान्त में इस समय 8 विश्वविद्यालय हैं। इस दृष्टि से हिन्दी भाषियों को एक विशेष सुविधा प्राप्त है। ऐसी परिस्थिति में जहाँ वैज्ञानिक विभागों में सैकड़ों विशेषज्ञ हिन्दी प्रान्तों में कार्य कर रहे हों, हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में इतने कम वैज्ञानिकों का सहयोग होना देश के लिए कुछ अधिक गौरव की बात नहीं है। इसके तीन कारण रहे हैं। हिन्दी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक विभागों पर अन्य भाषा वैज्ञानिकों का प्रभुत्व, जो अब शनैः शनैः कुछ कम अवश्य हो रहा है, हिन्दी-भाषा वैज्ञानिकों में भी भाषा-ज्ञान का कुछ अभाव और अंग्रेजी के होते हुए हिन्दी के प्रति उनकी उदासीनता। 20 वर्ष पूर्व की अपेक्षा इस समय परिस्थिति कुछ उन्नत अवश्य हुई है, और यह संतोष की बात है, पर अभी हमें इस ओर बहुत कुछ करना है।

पुणे के अधिवेशन में जिस समय मैंने भाग लिया था, उस समय इस विश्वव्यापी युद्ध की परिस्थिति कुछ और थी, और इन चार वर्षों में युद्ध अब दूसरी स्थिति में आ गया है। मैंने युद्ध सम्बन्धी परिस्थिति की ओर इसलिए निर्देश किया कि आजकल के युद्ध का बहुत कुछ संचालन वैज्ञानिकों के हाथ में है। सफल युद्ध के लिए सफल वैज्ञानिकों का शिक्षण का होना अनिवार्य है। युद्ध जब तक भारतीय जन-समूह का युद्ध नहीं होगा, तब तक भाड़े के टट्टू सैनिकों, स्वार्थ में निरत व्यवसायियों, चलतू सहयोग देने वाले वैज्ञानिकों से इसमें वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती। सफल युद्ध के लिए केन्द्रस्थ स्वराष्ट्रीय परिषद् की जहां आवश्यकता है, वहां उसके लिए स्वदेशीय भाषा द्वारा उत्पन्न साहित्य

और उसके द्वारा किये गये वैज्ञानिक शिक्षण की भी आवश्यकता है। कोई भी राष्ट्रीय संस्था तब तक पूर्णरूपेण राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती, जब तक वह अपने समस्त दृष्टिकोण में राष्ट्रीय न हो।

युद्धानन्तरीय योजनाओं में हमें बार-बार यह स्मरण दिलाया जा रहा है कि यह देश "कृषि-प्राधान्य" है और कृषि के उद्योग को युद्ध के अनन्तर प्रोत्साहन देने की आयोजना हो रही है। बाह्यदृष्टि से यह बात कोई बुरी नहीं प्रतीत होती, पर इस भावना के अन्तर्गत एक कुटिल नीति भी है। इस भावना का अर्थ यह है कि हमारा देश केवल कच्चे माल की पूर्ति का क्षेत्र बना रहे, और देश के उद्योगों और कारखानों को युद्ध के अनन्तर बन्द कर दिया जाय। युद्ध के इन पांच वर्षों में अनेक सामग्रियों के कारखाने देश में खुले हैं। और इन्होंने गौरव भी प्राप्त किया है, व्यवसायियों ने प्रचुर लक्ष्मी इनके कारण कमायी है, और युद्ध के अनन्तर कारखानों और उद्योगों का इस देश में पाश्चात्य ढंग पर प्रसार करने के लिए उत्सुक भी हैं। इन कारखानों को शासन सत्ता की ओर से जहां संरक्षण मिलना चाहिए था, वहां इनके मार्ग में विभिन्न प्रकार के अवरोध प्रस्तुत किये जायेंगे। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि यूरोप और अमेरिका से हमारे देश में रासायनिक पदार्थ और यांत्रिक सामग्री पूर्वापेक्षया बहुत अधिक मात्रा में आने लगेगी, जिसका निश्चित परिणाम यह होगा कि हमारे नवस्थापित कारखाने बन्द हो जायेंगे। इन कारखानों में इस समय वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त युवक संलग्नता से काम कर रहे हैं, वे बेकार हो जायेंगे। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक शिक्षण की आयोजना को धक्का पहुंचेगा। आवश्यक तो यह था कि हम युद्ध के अनन्तर अपनी शिक्षण योजनाओं में क्रान्ति उत्पन्न करते, पर संभवतः हमारे भाग्य में ऐसा अवसर आना अभी दूर-भविष्य की बात है। अभी हमें विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना है। वैज्ञानिक शिक्षा के दृष्टिकोण को परिवर्तित करना है। मेरा विश्वास तो यह है कि युद्धानन्तरीय काल में भारत का यदि गौरवपूर्ण सहयोग वांछित समझा गया तो यहां की वैज्ञानिक शिक्षण पद्धति में विशेष परिवर्तन करने पड़ेंगे और इन परिवर्तनों में सबसे मुख्य परिवर्तन होना चाहिए हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक शिक्षण। जनता में वैज्ञानिक प्रवृत्ति जागृत करने के लिए हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य की बृहद परिणाम में सृष्टि करना नितान्त आवश्यक होगा।

हैदरी समिति

पुणे के अधिवेशन में मैंने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत किए थे, इधर गत चार वर्षों में इस सम्बन्ध में कुछ विशेष कार्य तो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नहीं हो सका है, पर यह संतोष का विषय है कि किसी न किसी रूप में इसकी विशेष चर्चा रही है। मैंने गत भाषण में "सेन्ट्रल-एडवाइज़री बोर्ड आफ एज्युकेशन की" साइंटिफिक टर्मिनालाजी कमेटी का, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय सर अकबर हैदरी थे,

थोड़ा सा निर्देश किया था। उस समय तक इस कमेटी की पूरी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई थी। सन् 1941 ई० में यह प्रकाशित हुई।

इस कमेटी के निश्चयों का सारांश उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है :

1. दैट इन आर्डर प्रोमोट दि फर्दर डेवलपमेंट आव् सायंटिफिक स्टडीज इन इंडिया, इट इज़ डिजाइरेवल टु एडोप्ट ए कामन टर्मिनालोजी सो फ़ार एज़ में वि प्रेक्टि-केवल एण्ड फुल रेगार्ड शुड वी हैड टु एटेम्प्स् व्हिच हैव आल रेडी वीन कैरिट आउड विथ दिस आब्जैक्ट इन व्यू।

2. दैट इन आर्डर टु मेनटेन दि नेसेसरी काण्टैक्ट विट्वीन सायंटिफिक डेवलपमेंट इन इंडिया एण्ड सिमिलर डेवलमेंट्स इन अदर कन्ट्रीज़ दि सायंटिफिक टर्मिनालोजी एडाप्टेड फार इण्डिया शुड एस्सिमिलेट व्हेरेवर जनरल इंटरनेशनल एक्सेप्टेन्स। इन व्यू, हाउएवर, आव् दि वेराइटीज़ इन यूज़ इन इंडिया एण्ड आव् दि फैक्ट दैट दीज़ आर नॉट डिराइव्ड फ्राम वन कामन पैरेंट स्टाक, इट विल वि नेसेस्सरी टु इम्प्लाय, इन ऐडिशन टु ऐन इंटरनेशनलन टर्मिनालोजी, टर्म्स बारोड एण्ड एडाप्टेड फ्राम दि मेन स्टाक्स टु व्हिच मोस्ट इंडियन लैंग्वेजेज़ बिलांग ऐज़ वेल ऐज़ टर्म्स व्हिच आर इन कामन यूज़ इन इंडिविडु-अल लैंग्वेजेज़।

ऐन इंडियन सायंटिफिक टर्मिनोलोजी विल, देयरफोर कन्सिस्ट आव् :

(1) ऐन इंटरनेशनल टर्मिनालोजी, इन इट्स इंग्लिश फार्म, व्हिच विल वि इम्प्लो-येव्ल थ्रू आउट इंडिया :

(2) टर्म्स पिक्यूलियर टु इंडिविडुअल लैंग्वेजेज़ हुज़ रिटेन्शन ऑन दि ग्राउन्ड आव् फैमिलयारिटी मे वि इसेंशल इन दि इंटरेस्ट आव् पापुलर एजुकेशन। इन दि हायर स्टेजेज़ आव् एजुकेशन टर्म्स फ्राम कैटिगोरी (1) मे वि प्रोग्रेसिवली सब्सटिट्यूटेड फार दोज़ इन कैटिगोरी (2)

हैदरी कमिटी के ये परामर्श न तो नये हैं, और न इनमें कोई विशेषता ही है। पर तब भी इस कमिटी के निश्चयों से कई बातें ऐसी प्रतिभासित होती हैं, जो हमारे परिवर्तित दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इस कमेटी में तीन तो डाइरेक्टर शिक्षा विभाग के थे, एवं श्री जान सारजेंट भारतीय सरकार के एजुकेशनल कमिश्नर थे और उनकी ओर से इस प्रकार के परामर्शों का आना इतना तो प्रमाणित करता है कि ये सब सज्जन इस मत के पक्ष में हैं कि वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा (या भाषायें) बना दी जाय, अंग्रेजी द्वारा दी जाने वाली वैज्ञानिक शिक्षा भारत के हित में नहीं है। दृष्टिकोण में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाना हमारे लिए गौरव और सन्तोष की बात है।

अन्तर्जातीय शब्द क्या हैं ?

हैदरी कमेटी के परामर्शों में इस प्रकार के शब्द हैं--"टर्म्स व्हिच हैव ऑलरेडी सीक्योर्ड जनरल एक्सेप्टैन्स" ऐन इंटरनेशनल टर्मिनोलोजी"--इन स्थलों पर प्रयुक्त 'इन्टरनेशनल' या अन्तर्जातीय शब्द से मैं सदा घबराया करता हूं। मुझे तो ऐसे स्थलों पर "अन्तर्जातीय" शब्द का प्रयोग अनेक देशों के लिए अपमान का सूचक प्रतीत होता है। कोई शब्द केवल इतने से ही कैसे "अन्तर्जातीय" हो जायगा यदि उसका प्रयोग यूरोप के कुछ देशों और अमरीका में ही होता हो। इनके शब्दों को जब कोई अन्तर्जातीय घोषित करता है, तो उसे इस बात का ध्यान विस्मृत हो जाता है कि संसार के किसी कोने में वे जातियां भी जीवित हैं जिनकी भाषा में हेमेटिक, सेमेटिक, इंडोएरियन, ड्रैविडियन, मंगोलियन आदि वंश की हैं उन जातियों के मानव प्राणियों की संख्या यूरोपीय और अमरीकन प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों से अधिक है, उनकी भी भाषायें हैं, संस्कृति है, और उनके पास भी साहित्य है, उनकी अपनी एक पृथक् परम्परा है एवं उनको भी जीवित रहने का अधिकार है।

अस्तु मेरी धारणा यह है कि कोई भाषा या कोई शब्द अन्तर्जातीय नहीं है। हमारे इस मानव समाज में इतना समुचित विस्तार है कि इसमें तीन-चार पद्धतियों पर प्रचलित शब्दावली सुगमता से चल सके। सबके लिए मुक्त क्षेत्र विद्यमान है।

(1) एक यथाशक्य समान शब्दावली अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन आदि भाषाओं की हो।

(2) समान शब्दावली मिश्र, अरब, तुर्क फारस और अफ़गानिस्तान वालों की हो, और हमारे उर्दू के प्रेमी इसको अपनाना चाहें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और न हमें उनसे प्रतिस्पर्धा ही है।

(3) तीसरी शब्दावली आर्य्यदेशस्थ भारतीय भाषाओं की हो।

(4) चीन-जापान वालों की मंगोलियन शब्दावली हो।

उर्दू वालों की प्रवृत्ति

मेरी धारणा यह है कि उसमानिया यूनिवर्सिटी का कार्य उर्दू-क्षेत्र की दृष्टि से ठीक ही मार्ग पर हो रहा है, और हिन्दी क्षेत्र को लगभग उसी नीति पर अपने क्षेत्र में काम करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पर यह आशा रखना कि उर्दू की यह शब्दावली हिन्दी क्षेत्र में भी व्यवहृत हो सकेगी, प्रवंचना मात्र है।

क्रियाओं के समान होने पर भी अपने शब्द भंडार के कारण उर्दू हिन्दी से बहुत पृथक हो चुकी है, और साहित्यिक हिन्दी और साहित्यिक उर्दू में क्रियायें तो अपना महत्वपूर्ण स्थान खो चुकी हैं,--है था, रहा, गया आदि कुछ साधारण क्रियायें ही रह गयी

हैं, सर्वनाम अब भी समान हैं। यह आश्चर्य की बात है कि सर्वनाम और क्रियाओं के भिन्न होने पर भी वर्तमान हिन्दी से अवधी, बुन्देलखण्डी, ब्रजभाषा, राजपूतानी और यही नहीं, बंगाली, गुजराती और मराठी भी, अधिक निकट प्रतीत होती हैं पर फारसी, अरबी और तुर्की के भंडार से लदी हुई उर्दू सर्वनाम और क्रियाओं के समान होने पर भी हमसे दूर जा पड़ी है।

मेरे इस दृष्टिकोण के आधार पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी तो अपने पूर्व प्रवाह की परम्परा में अब भी आगे बढ़ रही है और हिन्दी उर्दू के पार्थक्य का संपूर्ण उत्तरदायित्व उर्दू लेखकों पर है। स्वभावतः यह पार्थक्य अब इस सीमा तक पहुंच गया है—उर्दू वालों ने अपने को हमसे और अपने मूल परम्परा के रूप से इतना अलग कर लिया है कि उनको अब पहचानना भी कठिन हो गया है। यह सोचने में मस्तिष्क को बल देना पड़ता है कि कभी वे भी हम में ही थे, पर दुराग्रहता के कारण वे आज हमसे पृथक हो गये हैं।

दक्षिणात्य भाषाओं की शब्दावली

लगभग सभी दक्षिणात्य भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य थोड़ा बहुत अग्रसर अवश्य हुआ है। पुस्तकें अब तक स्कूली कक्षाओं के योग्य ही अधिक लिखी गयी हैं, और उनमें प्रयुक्त शब्दावली उनके साहित्य में बहुत कुछ स्थायी रूप प्राप्त कर चुकी हैं। उनकी मासिक पत्रिकाओं में लोकप्रिय एवं तात्विक लेख भी यदाकदा प्रकाशित होते रहते हैं और कुछ लोकप्रिय ग्रन्थों की भी रचना हुई है। शब्दावली के स्थिरीकरण के लिए भी उन्होंने लगभग 25 वर्षों से कुछ न कुछ प्रयत्न किया है। सरकार की ओर से पारिभाषिक शब्दों के संबंध में 1923 से प्रयत्न किया जा रहा है।

जून 1940 में सरकार की ओर से सरकारी और गैरसरकारी सदस्यों की एक समिति परिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी नीति निर्धारण करने के लिए बनी जिसके संयोजक माननीय श्रीनिवास शास्त्री नियुक्त हुए।

जहां तक मेरा विचार है, सभी समितियां इस विषय में अब एकमत है कि जहां तक आर्य-द्राविड़ भाषाओं का सम्बन्ध है, कुछ शब्द अपनी भाषा के लिए जायें कुछ संस्कृत के आधार पर नये बनाये जायें और कुछ अंग्रेजी से अपनाये जायें। अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों को लेने में किसी को आपत्ति नहीं होगी, इससे अपनी भाषाओं का व्यक्तित्व जीवित रहता है, पर परिभाषिक शब्दकोष के अगाध भंडार में ऐसे शब्दों की संख्या 1-5 प्रतिशत से अधिक न होगी। अंग्रेजी में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द ज्यों के त्यों कितने लिये जायें, इसका निश्चय किसी नियम के आधार पर नहीं किया जा सकेगा। विज्ञान के प्रत्येक विभाग की कठिनाइयां अलग-अलग हैं और प्रत्येक विभाग में एक पृथक नीति ही निर्धारित करनी होगी। मेरे विचार में ऐसे अंग्रेजी शब्द ले लेने में कोई आपत्ति नहीं है, जिस शब्द के अन्य

व्याकरण रूप हमें बनाने न पड़ें। जिन शब्दों के अनेक रूपान्तरों का हमें अपनी वैज्ञानिक भाषा में प्रयोग करना पड़े, उनके लिए अंग्रेजी या विदेशी रूप ग्रहण करना भाषा की क्षमता में बाधा डालना है। शब्दों के रूपान्तर तो प्रत्येक भाषा में अपने-अपने व्याकरण के आधार पर ही बनाये जायेंगे। हम विदेशी भाषा के किसी एक रूप को तो ग्रहण कर सकते हैं, पर उसके ग्रहण करने के अन्तर शेष भावात्मक रूप अपने व्याकरण अथवा अपनी भाषा-परिपाटी के अनुसार बनाने की हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए। विदेशी गृहीत शब्दों में रूपान्तरित होने की क्षमता कम हो जाती है। क्योंकि हमें साहित्य में इलेक्ट्रिकल, इलेक्ट्रिसिटी, इलेक्ट्रोफाइड, डायलेक्ट्रिक आदि एक शब्द के अनेक रूपों की आवश्यकता होगी और स्पष्टतः ऐसे स्थलों पर हम अंग्रेजी के सभी रूपों का व्यवहार नहीं कर सकते हैं, अतः यह शब्द हमें संस्कृत से ही लेने पड़ेंगे। यही अवस्था एक्शन, रिएक्शन, एक्टिविटी, एटिवेटेड एक्टिवेशन, इनेक्शन, आदि शब्दों के लिए भी है। यदि हम 'एक्शन' शब्द को अपना लेवें तो क्या साहित्य में रिएक्शन के लिए प्रत्येक्शन शब्द बनाने की स्वतंत्रता होगी। यदि हम ऐक्टिविटी अपनाते हैं तो क्या हम इससे ऐक्टिवेटित, ऐक्टिवीकरण, अनैक्टिव आदि रूप बना सकेंगे ?

विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण

प्रयाग विश्वविद्यालय अथवा काशी विश्वविद्यालय हिन्दी भाषा को माध्यम बनाने में अभी सफल नहीं हो सके हैं। मेरा अपना अनुभव यह है कि बी० एस-सी० कक्षा में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों का हिन्दी-उर्दू भाषा सम्बन्धी ज्ञान बहुत कच्चा होता है। यदि उनके लिए हिन्दी पढ़ने की कुछ सुविधायें विश्वविद्यालयों में दी जांय और उनसे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखवाये जांय, तो आगे हिन्दी को माध्यम बनाने में बहुत सुविधा होगी। प्रयाग विश्वविद्यालय में जनरल-इंग्लिश का जो स्थान है, लगभग वैसा ही स्थान हिन्दी का हो जाना चाहिए।

विश्वविद्यालयों की आवश्यकता की दृष्टि से "भारतीय हिन्दी परिषद्" ने भी अच्छी आयोजना तैयार की है। इस परिषद् ने एम० एस-सी० के विद्यार्थियों और अध्यापकों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाले अंग्रेजी-हिन्दी-वैज्ञानिक कोष के कार्य को प्रारम्भ कर दिया है। नमूने के कुछ पृष्ठ भी "हिन्दी-अनुशीलन" में प्रकाशित हुए हैं। परिषद् के प्रधान और मंत्री दोनों डा० वर्मा (श्री धीरेन्द्र जी एवं रामकुमार जी) इस कार्य के लिए धन का संचय भी कर रहे हैं। ये सब आशा के चिन्ह हैं, जिनसे हिन्दी-गौरव की वृद्धि हुई है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी भी इस प्रकार के कार्य के लिए उत्सुक प्रतीत होती है और जिस प्रगति से वातावरण हमारे अनुकूल हो रहा है, वह हमारे सौभाग्य की बात है।

अनेक लिपियों का प्रयोग

अंग्रेज साहित्य में रोमन लिपि के साथ-साथ ग्रीक अक्षरों का भी बहुत प्रयोग

होता है,—हमारे स्कूल के विद्यार्थी रेखागणित और बीजगणित में अंग्रेजी के ए बी सी एक्स वाई जेड आदि वर्णों का प्रयोग करते हैं। रासायनिक समीकरणों में शब्दों के संकेत भी रोमन लिपि में लिखना एक प्रकार से सर्वमान्य हो गया है। इसका फल यह है कि हिन्दी में लिखे गये वैज्ञानिक साहित्य में नागरी, रोमन और ग्रीक तीन की वर्णमालाओं का प्रयोग करना पड़ेगा। मेरा विचार यह है कि छापेखाने की सुविधा की दृष्टि से जहाँ तक संभव हो।

(1) अंग्रेजी वर्णमाला का कम से कम उपयोग किया जाय—बीजगणित और रेखागणित में नागरी अक्षरों से काम आसानी से निकाला जा सकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पास गणित की जो पुस्तकें प्रकाशनार्थ आयी हैं, वे इस बात के लिए आदर्श हैं। श्री सुधाकार द्विवेदी जी ने अपने चलन-कलन, समीकरण-मीमांसा आदि ग्रन्थों में सर्वत्र नागरी अक्षरों का ही प्रयोग किया है।

(2) जिन स्थलों पर कोई अक्षर रूढ़ हो गया हो (जैसे ग्रीक का 'पाई' अक्षर व्यास और परिधि के सम्बन्ध के लिए) उसको छोड़कर यथाशक्य ग्रीक अक्षरों का प्रयोग किया ही न जाय। ऐलफा किरण बीटा किरण, गामा किरण ये शब्द ले लिए जांय, पर इन्हें उच्चारण सहित नागरी लिपि में ही लिखा जाय, इसी प्रकार एक्स किरण लिखना शुद्ध माना जाय न कि X-किरण।

(3) समीकरण सूत्रों में जहां नागरी लिपि के अक्षरों में कुछ विभिन्नता करनी आवश्यक प्रतीत हो वहाँ बंगाली लिपि के अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है। यदि उच्चारण के लिए ध्वनि-भेद भी आवश्यक हो तो वहाँ उच्चारण करते समय आकार, मकार, गकार इस प्रकार का उच्चारण किया जाय, अर्थात् बोलते समय नागरी 'अ' को अ कहा जाय और बंगाली के 'अ' को 'अकारे' बोला जाय इस प्रकार बोलने में वह अन्तर उत्पन्न किया जा सकता है जो ए और एलफा, बी और बीटा, जी और गामा में है। यदि और आवश्यक हो गुजराती की लिपि के अक्षर भी अपनाये जा सकते हैं।

(4) श्री सुधाकर द्विवेदी ने जैसा अपनी समीकरण मीमांसा में किया है, ए ए ए ए में ऊपर लगाये गये डैशों को मात्राओं द्वारा व्यक्त किया जाय—क, का, कि, की। डैशों की अपेक्षा यह पद्धति हिन्दी में बहुत सफल रही है और इसका अनुसरण किया जा सकता है।

सारांश यह कि यथाशक्य नागरी लिपि से काम निकाला जाय, और अनिवार्य परिस्थितियों में ही इतर लिपियों का उपयोग किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि रासायनिक समीकरणों में रोमन संकेतों का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का वर्णानुक्रम

हमें अपने लेखों में बहुत सी विदेशी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग करना पड़ता है। ये शब्द अंग्रेजी में वर्णानुक्रमित होकर हमारे सामने आते हैं। अंग्रेजी वर्णमाला की

ध्वन्यात्मक कला इतनी अनिश्चित है कि उस वर्णमाला में वर्णानुक्रमित किसी शब्द उच्चारण क्या होना चाहिए यह कोई नहीं कह सकता। कहने को तो यूरोप के सभी देशों में वर्णमाला एक ही प्रकार की है और इसके आधार पर भ्रमवश लोग रोमनलिपि को सर्वसम्मत लिपि घोषित कर भी देते हैं। पर यदि अक्षरों का उच्चारण भी एक हो तो तब लिपि समान कहला सकती है, अथवा नहीं। (पेरिस) लिखा गया शब्द फ्रान्स में पेरि उच्चरित होता है, और अंग्रेजी में पेरिस। (माइन) शब्द अंग्रेजी में माइन है और जर्मन में मिने। इतना अन्तर होने पर भी यह कहना कि रोमन लिपि सर्वमान्य है, इसका कोई अर्थ नहीं।

उच्चारण का यह अन्तर व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में बहुत खटकता है। (यूरोप) शब्द को हिन्दी में योरुप लिखता है, और कोई यूरोप, कोई योरोप। लिपझिग को भूगोल की पुस्तकों में लीपज़िग लिखा जाता है, यद्यपि इसका शुद्ध उच्चारण लाइपत्सिग है। फ्रैंच वैज्ञानिक का नाम कोई लवाजिये लिखता है, लवाशिये, कोई लिवोइसिये, यद्यपि इसका उच्चारण लाव्वासिए है। चीनी-जापानी नगरों के नाम भी हमारे सामने अंग्रेजी वर्णानुक्रम में आते हैं, और हम उनका मनमाना उच्चारण करने लगते हैं। अंग्रेजी वर्णानुक्रम के आधार पर उच्चारण करना और तदनुकूल नागरी में लिप्यन्तरित करना कोई गौरवपूर्ण पद्धति नहीं है। साहित्य सम्मेलन से मेरा अनुरोध है कि वह एक ऐसा कोष प्रकाशित करे जिसमें भूगोल में प्रयुक्त नगरों, प्रान्तों, सरिताओं, पर्वतों आदि के नामों की आदर्श सूची हो। शुद्ध से मेरा अभिप्राय उस उच्चारण से है, जो वहाँ का देशवासी करता हो। एक सूची ऐतिहासिक और वैज्ञानिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले पुरुषवाचक नामों की भी होनी चाहिए। जब से रेडियो का व्यवहार बढ़ा है तबसे हमें सभी देशों के मौलिक उच्चारण सुनने का अवसर प्राप्त होने लगा है। पर अब हमें अपना अंग्रेजी लिपि द्वारा सीखा गया भ्रष्ट उच्चारण बहुत खटकने लगा है।

हिन्दी में अनुसन्धानों की पत्रिका

एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करके मैं अपने इस भाषण को समाप्त करने का प्रयास करूँगा। अब तक हमने 'विज्ञान' पत्रिका द्वारा लोकप्रिय अथवा पाठ्य-पुस्तक सम्बन्धी साहित्य ही प्रकाशित किया है। इस प्रकार का कार्य करते हुए हमें 30 वर्ष हो गये। अब आवश्यकता है कि हम एक पग आगे बढ़ें। मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दी में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका आरम्भ करनी चाहिए। जापान में तो जापानी भाषा में अनेक अनुसन्धान पत्रिकायें अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही हैं। हमें भी यह काम किसी दिन आरंभ करना है। जापान वाले इन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का सारांश अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच भाषाओं में भी प्रकाशित करते हैं जिससे यूरोप वाले इनकी प्रगतियों से परिचित रहें। मैं हिन्दी में इस प्रकार की पत्रिका के लिए उत्सुक हो रहा हूं। मैं इसके संपादन का भार अपने पर लेने को तैयार हूं, यदि साहित्य सम्मेलन 500) वार्षिक के लगभग इस पर व्यय

करने को तैयार हो तो नागरी प्रचारिणी पत्रिका के समान एक त्रैमासिक पत्रिका से आरंभ किया जाय। भारतवर्ष में इस समय अंग्रेजी में कई अनुसन्धान पत्रिकाएं निकल रही हैं, और जो समस्त विदेशों में जाती हैं, पर उन पर कहीं भी किसी भारतीय भाषा या लिपि का चिन्ह तक नहीं होता। ये पत्रिकायें विदेश में यही भावनायें उत्पन्न करती होंगी कि हमारे देश की न कोई भाषा है, और न कोई लिपि ही। इस दृष्टि से चीनी और जापानी पत्रिकायें हमसे कहीं अधिक गौरव अपनी भाषा को देती हैं। मैंने उनकी अंग्रेजी पत्रिकाओं पर भी पत्रिका का नाम एवं उनके परिषद् के पत्राधिकारियों के नाम उनकी ही वर्ण माला में प्रकाशित देखे हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि हमारी भाषा का सर्वतोमुखी गौरव बढ़े। भाषा में हमारी मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब पड़ता है। राष्ट्रीय भाषा की सेवा राष्ट्र की एक परमोच्च सेवा है।

स्वामी जी के भाषण-2

□ संकलित

1971 में सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् स्वामी जी ने देश-विदेश में आर्य समाज, वेद, धर्म तथा ज्ञान के सम्बन्ध में अनेक भाषण दिये हैं। प्राय: ही आर्य समाज कटरा तथा चौक में स्वामी जी के भाषणों की माला चलती है। जिज्ञासु तथा आर्य समाज प्रेमी व्यक्ति एवं शिष्य स्वामी जी के भाषणों का अत्यन्त मनोयोग से श्रवण करते एवं लाभ उठाते रहे हैं।

यहाँ पर आर्य समाज शती समारोह के अवसर पर दिये गये भाषणों में से कुछ अंश उद्धृत हैं। इनसे न केवल स्वामी जी की विचार धारा का पता चलता है वरन् यह भी सिद्ध हो जाता है कि स्वामी जी ने आज की परिस्थितियों के अनुसार नये सिरे से चिन्तन करते हुये व्यवहारिक एवं तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की है।

आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर दिये गये भाषणों में से निम्नांकित उल्लेखनीय हैं

1. मेरठ सम्मेलन, 25 मई 1973
2. लुधियाना सम्मेलन, नवम्बर 1974
3. कलकत्ता सम्मेलन, अप्रैल 1975
4. हैदराबाद सम्मेलन, मई 1975
5. सर्वधर्म विश्वशान्ति सम्मेलन नई दिल्ली, 27 दिसम्बर 1975
6. वेद सम्मेलन वाराणसी, 27 फरवरी 1976

3 वर्षों के अन्तराल में इन सम्मेलनों में दिये गये भाषणों में स्वामी जी की विचार धारा में जो अखण्डता है वह दृष्टव्य है। वे जनता के हृदय में आर्य समाज, स्वामी दयानन्द तथा वेदों के सम्बन्ध में दो-टूक विचारों को प्रस्तुत करने में तनिक भी नहीं हिचके।

"दयानन्द ने जिस जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया है वह यथार्थतावाद है-न जगत मिथ्या है, और न यह जीवन। महर्षि दयानन्द का तत्व ज्ञान वेद का तत्व ज्ञान है-यह जीवन की पूर्ण व्याख्या है और पूर्णता की प्राप्ति ही इसका उद्देश्य है। इस जीवन दर्शन और विज्ञान में कोई विरोध नहीं। दोनों का उद्देश्य सत्य की जिज्ञासा और जीवन का मूल्यांकन है" • • •

"वेद मानव मात्र की मूल्यवान सम्पत्ति हैं। वेद के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने हमें नया आलोक प्रदान किया। वेद का अभिप्राय मानव मात्र में स्नेह और एका प्रोत्साहित करना था न कि साम्प्रदायिक द्वेष और वैमनस्य फैलाना।"

"आर्य समाज की गतिविधि की दो धारायें हैं —अन्तर्राष्ट्रीय विश्व बन्धुत्व की और भारत की राष्ट्रीय एकता। सम्पन्न एवं प्रबल भारत ही विश्व बन्धुत्व का स्वप्न देख सकता है। आर्य समाज के सदस्य भारत को समर्थ राष्ट्र के रूप में देखना चाहते हैं। स्वामी दयानन्द ने हमें राष्ट्रीय भावनायें दीं और स्वदेश प्रेम दिया।"

"हमें इस बात का गर्व है कि हमारे आर्य बन्धु भारतीय संस्कृति, आर्य धर्म और ऋषि दयानन्द के सन्देश देश-देशान्तरों में समुद्र के पार दूर दूर तक ले गये। बर्मा, थाईलैंड, फिजी, गायना, वेस्ट इंडीज, मारिशस, दक्षिणी अफ्रीका, मलेशिया, पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अमरीका—जहाँ कहीं भी भारतीय पहुँचे, उन्होंने आर्य समाजों की स्थापना की।"

"आर्य समाज के कार्य को अब आगे किस नई दिशा में बढ़ाया जाय, इसके सम्बन्ध में हमें विचार करना है ... भारतीय जनता के दैन्य दूर करने के लिये हमें अपनी आयोजनायें बनानी होंगी। आर्य समाज की संस्थाओं को धन संकट का सदा सामना करना पड़ा है किन्तु हमारा कोई भी काम धन की कमी से रुका नहीं है। सेवा भाव से कार्य करने वाले व्यक्तियों को हमें दीक्षित और प्रशिक्षित करना पड़ेगा। ... दयानन्द सेवाश्रमों की संस्थापना हमें अगले वर्षों में उत्साह से करनी होगी जिससे हमारे व्यक्तियों में सेवा भाव प्रस्फुटित हो।"

(भाषण 1 से)

"मैंने पूर्वी अफ्रीका की दो बार यात्रायें की हैं। मैंने आर्य परिवार के लोगों से बराबर यह बात कही है कि हमें अब कनाड़ा तथा इंगलैंड में कार्य करने का अच्छा सहयोग प्राप्त हो गया है। पंजाब प्रदेश के काफी सम्पन्न परिवार इन देशों में पहुँचे गये हैं, उन्हें आर्य समाज के प्रति स्नेह और श्रद्धा है पर उनकी भी कठिनाइयाँ हैं। वे प्रचारक और पुरोहित चाहते हैं जो अंग्रेजी अच्छी जानते हों, फ्रांसीसी भाषा से परिचित हों और विदेशी संस्कृति से भी। यही हमारी कमजोरी है ... हमें नये ढंग के पुरोहित, पंडित और उपदेशक तैयार करने होंगे, जो इन देशों में कार्य करने की योग्यता रखते हों, विदेशी भाषाओं से परिचित हों और विदेशी जीवन से भी। आप अपने अगले कार्य-क्रमों में इस बात का ध्यान रखें ... अभी तक आर्य समाज का प्रचार उत्तर भारतीय हिन्दी भाषी हिन्दुओं के बीच में ही विशेष हो पाया है। इस संकीर्णता से हमें बाहर आना पड़ेगा। पंजाब के आर्य भाई जिन देशों में गये हैं, वहाँ वे आर्य समाज की परम्परा को ले गये हैं पर ये परम्परायें उन्होंने अपने परिवारों के बीच में ही सीमित रखी हैं। चाहे नैरोबी में हो, चाहे मारिशस में

अथवा दक्षिणी अफ्रीका में।· · · आज यह अवस्था है कि ईसाई और मुसलमान तो सभी वन सकते हैं पर वैदिक धर्म या हिन्दुत्व तो केवल भारतीयों तक ही सीमित रह गया है। इस प्रकार से तो काम नहीं चलेगा। एक समय था जब हमारे देश में गिरजों के उच्चाधिकारी यूरोपीय थे, ये योरोपीय अब हमारे देश से चले गये पर उन्होंने ईसाइयत भारतीयों को दी और इस लिये उनके गिरजे आज भी पूर्ववत् सक्रिय हैं। हम भी विदेशों से निकाले जावेंगे पर क्या वहाँ से निकलने पर हम अपने मन्दिर वहाँ के लोगों को सौंप सकेंगे ? हमने वैदिक धर्म का प्रचार अभारतीयों के बीच किया ही नहीं अतः हमारा भविष्य संकटमय है।"· · · आर्य समाज परिवारों के व्यक्तियों में भी पौराणिकता का बहुत कुछ रुधिर है और वही हमारे मार्ग में बाधक है। · · · आर्य समाज केवल हिन्दुओं के लिये है—यह भावना हमको अपने भीतर से निकाल देनी होगी—महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण कुछ भिन्न था · · · यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अगली शती में श्री आर्य समाज का प्रसार होगा, उसका दृष्टिकोण का अधिक व्यापक होना चाहिए। · · · विदेशी सम्पन्न देशों में असन्तोष और अशान्ति बढ़ रही है। नये वैभव से कुछ लोग ऊब भी उठे हैं। नई परिस्थिति का लाभ उठा कर हमारे भारतीयों ने वहाँ कुछ प्रपंच धन कमाने के बना लिये हैं—ये प्रपंच योग-प्राणायाम-आसन आदि के नामों से अथवा भक्ति के नये आवकरणों के रूप में हमारे सामने आ रहे हैं। आर्य समाज को इस दिशा में सचेत रहना है। · · · सभी व्यक्ति छद्मी नहीं हैं, बहुत से निष्ठावान और सच्चे भी होंगे पर योग आत्म अनुभूति के व्यापकीकरण से हमें जनता को सावधान करना है।"

(भाषण 2 से)

"अब तो पुराने अवतारों और पैगम्बरों की प्रतियोगिता में देश विदेशों में नये पैगम्बर बनते जा रहे हैं, नये नये अवतार हो रहे हैं; नये योगी, नये महर्षि। इनमें से कतिपय हमारी श्रद्धा के पात्र हैं पर अनेक तो व्यापार के रूप हैं · · · इन नवीन रूपों के प्रति हमें जनता को सावधान रहने की सिखाना है। योग उपासना, कीर्तन आज नया धन्धा बनता जा रहा है। · · · "

(भाषण 3 से)

"कहा जाता है कि कलकत्ता में महर्षि दयानन्द की बाबू केशवचन्द्र सेन से अनेक विषयों पर बातचीत हुई और इस वार्ता के अन्तर्गत केशव बाबू ने स्वामी दयानन्द का ध्यान जनता की भाषा (आज की हिन्दी) की ओर दिलाया। तब से स्वामी दयानन्द ने हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने आरम्भ किये और 1874 में उन्होंने अपना अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" हिन्दी में ही लिखा और आर्य समाज के नियम और उपनियम हिन्दी में ही निर्धारित किये। महर्षि दयानन्द देश की इस मान्य भाषा को 'आर्य भाषा' कहते थे, देश के निवासियों को 'आर्य' और देश का नाम 'आर्यवर्त' स्वीकार करते थे।"

(भाषण 3 से)

"आर्य समाज उन्नीसवीं शती का सबसे बड़ा आन्दोलन था। इस जन आन्दोलन में हमारे भजनोपदेशकों का स्थान बड़ा ऊँचा है • • • आर्य समाज व्यक्ति का भी हित चाहता है और समष्टि का भी। आर्य समाज आर्यों की संस्था है अर्थात् ऐसे व्यक्तियों की जो श्रेष्ठ बनना चाहते हैं। हममें से कोई पूर्ण पुरुष नहीं है और न हो सकता है • • • हम केवल इतना कर सकते हैं कि परस्पर के सम्पर्क से हम कुछ ऊपर उठ सकें। मैं आर्य समाज के संगठन में इसलिये आया हूँ कि आपकी सहायता और स्नेहमयी सहानुभूति से कुछ ऊँचा उठ सकूँ और मेरे साथ रहकर शायद आपको भी कुछ लाभ हो सके। • • • हममे से कौन ऐसा दूध का धोया है जिसमें कोई दुश्चरित्र न हो अतः आर्य समाज में परस्पर प्रीति से धर्मा-चरण की चेष्टा करनी चाहिए।"

(भाषण 4 से)

"धर्म और विज्ञान दोनों के एक ही उद्देश्य हैं—मानव का उच्चतम स्तर तक विकास अभ्युदय की प्राप्ति जिससे संसार सुखमय बन सके और पारस्परिक सम्बन्धों में स्नेह और प्रेम का संचार।" • • • विज्ञान और शिल्प ने तो अपनी दायित्व निभाया और जिन बातों की उनसे अपेक्षा की जाती थी उन्होंने हमें वह दिया पर क्या धार्मिक संस्थाओं ने अपना उत्तरदायित्व अपने क्षेत्र में निभाया ? धर्माधिकारियों का यह कर्त्तव्य था कि वे नैतिकता के स्तर के प्रति सावधानी वर्तते। • • • मुझे यह देखकर दुखपूर्वक कहना पड़ता है कि धर्म और धार्मिक संस्थाओं से जिन बातों की हमारे समाज को अपेक्षा थी, वह उसे नहीं मिली • • • दुर्भाग्य इस युग का यह है कि मैत्री और सौहार्द का कार्य आज राज नीतिज्ञ ने हथिया लिया है। उसके संकेतों पर कभी हम शान्ति और सन्धि कर बैठते हैं और कभी युद्ध। राजनीति आज हमारे जीवन पर छायी है, मानव स्वातन्त्र्य और मानव अधिकार की दुहाई देखकर हमें परस्पर लड़ाया-भिड़ाया जा रहा है। इस वातावरण में विश्व शान्ति की बात करना अरण्य रोदन मात्र प्रतीत होता है।" • • • यह स्मरण रखना चाहिये कि मूढ़ या अबोध जनता को अन्ध विश्वासों के प्रलोभन दिलाकर छलने का नाम धर्म नहीं है। अविद्या और असत्य के आधार पर शान्ति स्थापना नहीं की जा सकती। • • • मेरी सदा से आस्था रही है कि तथाकथित धर्मों को चाहिये कि वे बुद्धि, मेधा और तर्क पर अपनी मान्यताओं को प्रशस्त करें।"

(भाषण 5 से)

"आर्य समाज चारों वेदों को एक वेद मानता है, न कोई वेद निम्नकोटि का है, न उच्चकोटि का। ऋग, यजु और साम (ज्ञान, कर्म, उपासना) क्रियायें चारों वेदों में हैं। चारों वेदों की समष्टि ही ईश्वर ज्ञान है"

(भाषण 6 से)

डा० सत्य प्रकाश की ही लेखनी से

'प्राचीन भारत में रसायन का विकास' से उद्धरण

(1)

प्राक्कथन

मनुष्य ने सभ्यता के विकास में यव और धान्यों को प्राप्त किया। इसने न जाने कहाँ से तिल और अन्य सस्य उपलब्ध किए। इसने गौ और अश्व की संस्कृति का विकास किया। दूध से दही और दही से घृत निकाला। मधुमक्खियों से मधु प्राप्त किया और मधुर फलों का आस्वादन आरम्भ किया। यज्ञ को उसने अपने में समस्त आविष्कार अर्पित कर दिए—यज्ञ में आहुतियाँ घृत, यव, तिल और मधु की दी। यज्ञ के समस्त परिधान पारिवारिक उपकरण के प्रतिनिधि बने। सोप-याग में उन सब परिक्रियाओं का प्रयोग मिलेगा, जो एक ओर तो आयुर्वेद-शाला की परिक्रियाओं का आधार बनीं और दूसरी ओर पारिवारिक पात्रशाला की। यज्ञशाला में शूर्प, उलूखल, मुश्ल, प्रोक्षणी, शमी, शम्या, मन्थनी, स्रुक्, स्रुव, दृषद्-उपल, अधिषवण, आस्पात्र, कुम्भ, ग्रह, नेत्र, (रज्जु) और न जाने कितने उपकरणों का प्रयोग हुआ, जो आज भी किसी न किसी रूप में रसायन शालाओं में विद्यमान हैं।

(2)

आयुर्वेद काल

अथर्व के एक मंत्र में संकेत है कि वराह, नकुल, सर्प, सुपर्ण, रघट, हंस, पतत्री मृग, गौ, अजा और अवि, न जाने कितनी वनस्पतियों, ओषधियों एवं वीरुधों से परिचित हैं जिनका उपयोग वे नैसर्गिक रूप से अपने रोगों को दूर करने के लिए करते हैं। इस प्रेरणा ने आयुर्वेद काल में मानव से एक-एक औषधि और वनस्पति का संग्रह कराया। आयुर्वेद काल वनस्पतियों एवं उनसे प्राप्त रसों के उपयोग का युग है। रोगों को इस समय वर्गीकृत किया गया और वनस्पतियों को भी।

दीर्घायु की कामना करने वाले मनीषी अभी सोना बनाने की आकांक्षा से मुक्त थे। ओषधियों में भी धातु-भस्म प्रयोग करने का प्रचलन संकेत मात्र ही था। गन्धक और पारद आयुर्वेद के प्रांगण से अभी दूर थे। यज्ञ के उपकरण और यज्ञशाला के क्रिया-कलाप आयुर्वेदशाला के आधार बन गये...महर्षि भरद्वाज, आत्रेय, पुनर्वसु, चरक और अग्निवेश ने आयुर्वेद की बिखरी परम्परा का संकलन किया।

(3)

रसतन्त्र का आरम्भ

आयुर्वेद धारा नवीन रूप धारण कर रही थी... राष्ट्र के व्यवस्थित होते ही, सुवर्ण का पण्य मूल्य इस युग की नयी देन हो गई। स्वभावतः स्वर्ण के प्रति आकांक्षायें बढ़ीं। वैदिक काल के अनेक आचार-विचार समाज में रूढ़ि बन गये, जिनके विपरीत एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई। आयुर्वेद के क्षेत्र में भी विप्लव और क्रान्ति के चिन्ह विकसित होने लगे। पारद और गन्धक ने नई पद्धति को जन्म दिया। इस युग का प्रवर्तक और आचार्य नागार्जुन था। पारद का शास्त्र इतना बढ़ा कि पारद शब्द का पर्याय ही रस शब्द बन गया और रसायन बहुत समय तक पारद का ही शास्त्र रहा। · · · मनुष्य सोना तो न बना पाया पर उसकी खोज में उसे तरह-तरह के पदार्थ तैयार करने पड़े जिनका स्वयं भी महत्वपूर्ण उपभोग था ···

···कौटिल्य का अर्थ शास्त्र कोई रसायन का ग्रन्थ तो नहीं है पर प्रसंगवश इसमें बहुत सी ऐसी बातें आ गई हैं जिनसे उस समय के रासायनिक प्रसंगों पर प्रकाश पड़ता है।

···बौद्ध और आर्य तान्त्रिकों ने रसायन का अवलम्बन क्यों लिया, यह एक विचारणीय विषय है। ऐसा प्रतीत होता है कि रसाचार्यो के आविर्भाव के समय भारतीय जनता परोक्ष, परलोक और मृत्यु के अनन्तर मुक्ति प्राप्त करने के लिए अधिक उत्सुक थी और उसके लिए यज्ञ-याग आदि करती थी। उसकी प्रतिक्रिया में रस तंत्र का उदय हुआ। मरने के बाद मुक्ति हुई तो क्या लाभ। शरीर जीवित रहते ही अमरत्व मिले तो वास्तविक कल्याण हो सकता है।··· मरने के बाद किसने देखा है कि क्या होगा! इस दृष्टि से प्रेरित होकर तांत्रिकों ने रस विद्या के विकास में रुचि दिखाई

··· हो सकता है कि मूढ जनता पर आतंक जमाने के लिए चमत्कार दिखाना और प्रलोभन देकर अपनी ओर आकर्षित करना उन्हें अभीष्ट था। अथवा उस युग में समस्त देशों में सोना बनाने के प्रयोग हो रहे थे और उनके प्रभाव से तान्त्रिक भी मुक्त न रह सके।

···भारतीय रसायन के इतिहास में नागार्जुन का नाम परम उल्लेखनीय है। नागार्जुन कौन था और उसका अवधिकाल क्या था, यह इसके सम्बन्ध में विवाद है। रस रत्नाकर भी बौद्ध महायानियों का एक तन्त्र-ग्रन्थ है।

(4)

उत्तर काल

नागार्जुन द्वारा प्रत्यावर्तित रसधारा बहुत दिनों तक आयुर्वेद के साथ-साथ आगे

बढ़ी । दोनों ही धाराओं ने लोकप्रियता प्राप्त की, दोनों में आदान-प्रदान भी हुआ ... आर्य और बौद्ध दोनों के तंत्रों की मिली-जुली पद्धति चिकित्सा में सहयोग देने लगी । इस युग में अनेक यंत्रों का विकास हुआ, अनेक प्रकार प्रकार की मूषायें बनी, आग को नियन्त्रित करने के लिये अनेक प्रकार के पुट काम में आने लगे, रस बन्धन की पच्चीस शास्त्रीय विधियाँ प्रचलित हुईं...रस विद्या के विकास में 13 से 16वीं शती तक का समय स्वर्ण युग था । अपने हाथ से प्रयोग करने के प्रति लोगों में अभिरुचि थी... सोलहवीं शती के आस-पास इस देश के वासियों का फिरंगियों से संबंध हुआ । फिरंग रोग इस देश में आया और भी बहुत सी वस्तुयें आयीं । अहिफेन (अफीम) का इसी युग में चिकित्सा में उपयोग आरम्भ हुआ ।

सोलहवीं शदी तक भारत के रसायन ने संसार के अन्य देशों के रसायन का साथ किया । इस युग के बाद इस देश की प्रगति में जड़ता आ गई । इन तीन सौ वर्षों तक हमारा देश पुरानी रूढ़ियों से ग्रस्त रहा और पिछड़ गया । यह अब फिर आँखें खोल रहा है ।

दार्शनिक युग में ही कणाद ने परमाणुवाद को जन्म दिया जो रसायन क्षेत्र में समस्त संसार को भारत की एक महत्वपूर्ण देन है ।

...रसायन शास्त्र का सम्बन्ध जीवन के समस्त अंगों से है संस्कृति के विकास का रसायन ज्ञान के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है । भोजन, वस्त्र और रहने के भवन—इनकी व्यवस्था में रसायन ने प्रत्येक युग में सहयोग दिया । मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति भी इसने की और उसकी कलात्मक एवं विलासमय आकांक्षाओं में भी इसने सहायता दी । युद्ध और शान्ति दोनों के साधनों को इसने प्रोत्साहन दिया । भारतीय इतिहास के प्राचीनतम भग्नावशेष रसायन के युग-युग के इतिहास की आज भी साक्षी बने हुए हैं...

———

डा० सत्य प्रकाश की लेखनी से :

मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश से उद्धरण

१ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली

19वीं शती में भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य कुछ विशेष न था। जो कुछ संस्कृत साहित्य था, वह पुरानी परम्परा का (आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, दर्शन तथा समाजशास्त्र के क्षेत्र का) था। यूरोपवासी 16वीं शती से तो भारत में आने लगे थे पर वे अपने साथ आधुनिक विज्ञान का संदेश इस देश में लाने में असमर्थ रहे। यह इतिहास की विचित्र घटना है। यूरोप में भौतिक और रसायन एवं शिल्प में इतना विकास हो गया किन्तु भारत में इस नवीन विचारधारा का संकेत भी न पहुँचा, यह एक प्रकार का चमत्कार है। न्यूटन, बायल, डार्विन आदि की खोजों के प्रति यह देश उदासीन क्यों रहा, यह कहना कठिन है।

उन्नीसवीं शती के अन्त से वैज्ञानिक शिक्षा के पठन-पाठन का कुछ क्रम शिक्षा-संस्थाओं में आरम्भ हो गया था अतः यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों को व्यक्त किया जाय। इस दृष्टि से पारिभाषिक शब्द बनाने के कई प्रयास देश में आरम्भ हुए। सम्भवतः इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास बम्बई प्रेसीडेन्सी में हुआ जिसका उल्लेख एन० वी० राणाडे ने अपने अंग्रेजी-मराठी कोश में किया है। दूसरा प्रयास बंगीय साहित्य परिषद का था। गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा का माध्यम हिन्दी था। इसके अधिकारियों की प्रेरणा से प्रोफेसर रामशरण दास ने एनेलेटिकल केमिस्ट्री से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकें रचीं और प्रो० महेश चरण सिंह ने रसायन और विद्युत शास्त्र विषयक पुस्तकें। सुधाकर द्विवेदी जी ने गणित सम्बन्धी कई पुस्तकें हिन्दी को दीं—चलन-कलन, चलराशि-कलन और समीकरण मीमांसा। लक्ष्मी शंकर मिश्र की सरल त्रिकोणमिति छपी।

उन्नीसवीं शती के आरम्भ में ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ध्यान इस ओर गया और उसने सात विषयों की शब्दावली का कार्य हाथ में लिया। सम्पादकों में थे—माधव राव सप्रे, महावीर प्रसाद द्विवेदी, सुधाकर द्विवेदी, श्याम सुन्दरदास और ठाकुर प्रसाद। कार्य में सहयोग देने के लिए अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया था। इस प्रयास के फलस्वरूप 1901 में श्याम सुन्दर दास का गणित विषयक, 1902

में महावीर प्रसाद द्विवेदी का दर्शन विषयक, ठाकुर प्रसाद खत्री का भौतिकी विषयक कोश प्रकाशित हुए। बाद को नागरी प्रचारिणी सभा ने भूगोल, रसायन आदि विषयों के शब्दों का भी संकलन करके पूरा कोश एक जिल्द में प्रकाशित किया। 1912 में ठाकुर प्रसाद खत्री का 'व्यापारिक पदार्थ कोश' प्रकाशित हुआ।

1913 से प्रयाग में विज्ञान परिषद संस्था की स्थापना हुई (गंगा नाथ झा, राम दास गौड़ तथा सालिग राम भार्गव के प्रयास से) और 1914 से विज्ञान पत्रिका प्रकाशित होने लगी जिसके आश्रय से हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी और सभी विषयों की शब्दावलियों की रचना की नीव पड़ी। 1930 में विज्ञान परिषद से **'वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली'** (सं० सत्य प्रकाश) प्रकाशित हुई।

बाद के प्रकाशित कोशों में एक प्रशंसनीय प्रयास सुख संपत्ति राय भंडारी का था जो 1926 में प्रारम्भ हुआ। भारतीय हिन्दी परिषद ने 1942 में फिर यह कार्य हाथ में लिया और **अंग्रेजी-हिन्दी वैज्ञानिक कोश** के दो भाग प्रकाशित किए (A से Hyp तक की 512 पृष्ठों की सामग्री) जिसके प्रधान सम्पादक डा० सत्य प्रकाश और सहकारी संपादकों में निहालकरण सेठी, फूलदेव सहाय वर्मा, व्रज मोहन, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव प्रभृति लोग थे। इस कोश के प्रकाशन का कार्य फिर बन्द कर दिया गया क्योंकि केन्द्रीय शासन ने बड़े परिमाण पर इस कार्य को आरम्भ किया था। इस कोश की संकलित सामग्री के आधार पर प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (उत्तर प्रदेश) की ओर से निहाल करण सेठी की **भौतिक शब्दावली** प्रकाशित हुई और व्रजमोहन में गणित शब्दावली **गणितीय कोश** नाम से प्रकाशित की (चौखम्भा संस्कृत सिरीज, बनारस 1954)।

...रघुवीर ने इस क्षेत्र में स्तुत्य प्रयास किया। 1950 में आपकी Indian Dictionary of Technical Terms प्रकाशित हुई। 1955 में रघुवीर और लोकेश चन्द्र द्वारा संपादित एक और कोश तथा 1958 में जी० एस० गुप्त के सहयोग से एक तीसरा कोश निकला। रघुवीर के इस साहित्यिक प्रयास से बहुत समय तक हमें सहायता मिलती रहेगी। रघुवीर यूरोपीय शब्दों को आत्मसात कर लेने के पक्ष में न थे अतः उनके शब्दों को स्वीकार करने में बहुतों को बहुत संकोच हुआ। फिर भी रघुवीर के कोशों का अपना आदरणीय स्थान है।

...1947 में देश स्वतन्त्र हुआ। 1950-51 में भारत सरकार ने देश भर के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली और एक पारिभाषिक शब्दकोश तैयार करने के लिए भाषा शास्त्रियों और वैज्ञानिकों का एक बोर्ड बनाया। 'पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड' के विचारार्थ विषय निम्न थे :

(1) हिन्दी और देश की प्रमुख साहित्यिक भाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली अपनाने के बारे में केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के प्रस्ताव पर अमल करना

(2) ऐसे सिद्धान्त निर्धारित करना जिनके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावली को भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप बनाया जा सके

(3) विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रचलित शब्दावली के संग्रह का प्रबन्ध करना, ज्ञान की जिन शाखाओं में विदेशी शब्दों का प्रयोग उचित न हो, उनके लिए भाषाओं के आधार पर उचित शब्दावली का निर्माण करना

(4) वैज्ञानिक विषयों पर आदर्श पुस्तकें तैयार करने के लिए नीति निश्चित करना और उसका पालन करना।

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली बोर्ड ने निम्न सिद्धान्त निर्धारित किये—

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली से हमारा अर्थ उन वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों से है जो समय-समय पर वैज्ञानिक संघों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद की कार्रवाइयों में प्रकाशित किये जाते हैं

(2) यह बोर्ड युनिवर्सिटी कमीशन और केन्द्रीय शिक्षा परामर्श बोर्ड के विचारों से सहमत है कि जहाँ तक हो सके हिन्दी और भारत की दूसरी प्रमुख भाषाओं की पुस्तकों में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाय। वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान और भूगर्भ शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय शब्द ज्यों के त्यों ले लिए जायें।

(3) गणित और अन्य विज्ञानों में प्रयोग किए जाने वाले प्रतीक चिन्ह और सूत्र बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण कर लिए जायें अर्थात् रोमन लिपि में लिखे हुए अक्षर और अंक ही हिन्दी में प्रयुक्त किए जायें।

(4) वैज्ञानिक शब्दावली कोश तैयार करने में अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों का नागरीकरण किया जाय और उसका मूल रूप रोमन लिपि में कोष्ठक में दिया जाय। जहाँ कहीं जरूरी हो, शब्दों का अनुवाद और व्याख्या भी दी जाय।

इस बोर्ड ने विभिन्न विशेषज्ञों की अनेक समितियाँ बनाईं और उन समितियों ने कार्य प्रारम्भ किया। पहले तो प्रस्तावित सूचियाँ प्रकाशित हुईं और बाद की अनेक विषयों की अधिकृत सूचियाँ भी अलग-अलग छपीं। प्रारम्भ में कार्य हाई स्कूल स्टैण्डर्ड का पूरा किया गया और फिर धीरे-धीरे इसे बढ़ाकर विश्वविद्यालयों के उच्चतम स्टैंडर्ड तक पहुँचाने का प्रयास किया गया। प्रारम्भ से ही विशुद्ध विज्ञानों के साथ-साथ अनेक उपयोगी विज्ञानों की पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने का प्रयास किया गया।

1955 में वनस्पति शास्त्र, गणित, भौतिकी और रसायन की अधिकृत सूचियाँ, 1956 में कृषि विज्ञान की अधिकृत सूची सेकेंडरी स्कूलों के लिए प्रकाशित हुई।

…भौतिकी में भावनात्मक शब्द (concept वाले) अधिक हैं और रसायन में

द्रव्य या पदार्थ सम्बन्धी। भावनात्मक शब्द प्रत्येक की अपनी मातृभाषा में होने चाहिए, जिस भाषा में बालक को शिक्षा पानी है अतः इन शब्दों के अनुवाद का प्रयास किया गया। रसायन विज्ञान की स्थिति दूसरी थी। 97 (या 104) तत्वों में से केवल 8 ही ऐसे थे जिनके भारतीय नाम थे (स्वर्ण, रजत, लोह, यशद, वंग, ताम्र, सीस और पारद) अतः अन्य तत्वों के नामों के अनुवाद की आवश्यकता नहीं समझी गई और ये सब नाम अन्तर्राष्ट्रीय रूप में हिन्दी में (देवनागरी लिपि में) अपना लिए गए। जहाँ कहीं भी नाम ज्यों के त्यों अपनाये गये हिन्दी की प्रकृति का ध्यान रखा जाना आवश्यक समझा गया, जैसे litre लिटर, gramme ग्राम, erg अर्ग।

कुछ शब्द साहित्य में प्रचलित थे पर साधारणतया उन्हें पर्याय ऐसा माना जाता था। वैज्ञानिक शब्दावली में इनके सामान्य अर्थों को रूढ़ कर दिया गया।

Force बल, power शक्ति, work कार्य, heat ऊष्मा, temperature ताप।

वैज्ञानिक शब्दावली में यथार्थता की विशेष आवश्यकता होती है। ऊष्मा और ताप शब्द सामान्यतया पर्याय हैं किन्तु विज्ञान में ऊष्मा को heat और ताप को temperature के लिए रूढ़ किया गया...

जहाँ तक सम्भव हुआ अनेक प्रस्तावित शब्दों पर गहरा विचार करने के अनन्तर सरलतम शब्द को स्वीकार किया गया जैसे air pump को वाताकर्षक पम्प न कह कर वायु-पम्प कहना स्वीकार किया गया।

पारिभाषिक शब्दावली की लोच संकर शब्दों से भी प्रतीत होती है जैसे oxidation के लिए आक्सीकरण (आक्सीजन से आक्सि प्रत्यय लेकर हिन्दी के व्याकरण से आक्सीकरण बना लिया गया)।

पारिभाषिक शब्दावली बनाने का कार्य सरल नहीं है।...गणित की पुस्तकों में सम का प्रयोग equal के अर्थ में होने लगा। even को भी सम कहते हैं जबकि मोनियर विलियम्स में इसके लिए युग्म है। प्रश्न यह है कि इन दोनों में से कौन सा शब्द अपनाया जाय:

...जिन विदेशी शब्दों को ज्यों का त्यों लेने का परामर्श दिया गया है उनको देवनागरी लिपि में लिखना भी साधारण कार्य नहीं है। गुरुमुख से बहुत शब्दों के उच्चारण हमने गलत सीखे हैं। जैसे glucose ग्लूकोज नहीं है ग्लूकोस है, ethyl methyl शब्द इथाइल, मिथाइल नहीं हैं ये एथिल मेथिल हैं...oxidase का शुद्ध उच्चारण आक्सिडेस है न कि आक्सिडेज, शुद्ध उच्चारण के लिए वेब्सटर की पुरानी डिक्शनरी देखनी चाहिए।

...इसी प्रकार Fluorine के लिए फ्लुओरीन शब्द ठीक होने पर भी सरल करना पड़ेगा क्योंकि क्लोरीन और ब्रोमीन के समान इसका फ्लोरीन रूप ही सुविधाजनक होगा।

अंग्रेजी लिपि में उच्चारण की अनिश्चितता के कारण व्यक्ति वाचक संज्ञाओं (विदेशी नामों) के ठीक उच्चारण का पता चलना भी आसान नहीं है। Dulong and Petit में दोनों व्यक्तिवाचक नाम फ्रेंच हैं अतः ये ड्यूलां और पेती ऐसा लिखना होगा।

भारतीय भाषा में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण का संभवतः प्रथम प्रयास बड़ौदा में 1888 ई० में हुआ जिसके लिए महाराजा सयाजीराव गायकवाड ने 50,000) का दान दिया था और प्रो० गज्जर ने पुस्तकों की रचना प्रारम्भ की। फिर अगले प्रयास बंगीय साहित्य परिषद, गुरुकुल कांगड़ी, नागरी प्रचारिणी सभा, विज्ञान परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भारतीय हिन्दी परिषद आदि संस्थाओं द्वारा हुये। शब्दावली के सिद्धान्तों के निर्धारण में सदा मतभेद रहा और प्रयोग किए गए। इस विषय का आलोचनात्मक अध्ययन सर्वप्रथम 'विज्ञान' में प्रकाशित "वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली" शीर्षक लेखों में (सत्य प्रकाश जी द्वारा) हुआ। रासायनिक तत्वों के अनुवाद करने के प्रयास की निरर्थकता के सम्बन्ध में निहालकरण सेठी ने एक लेख 'विज्ञान' में दिया। हिन्दी-उर्दू मिली हुई 'हिन्दुस्तानी' के पोषक व्यक्तियों ने आम फहम की भाषा में शब्दावली बनाने का प्रयास किया जिसकी विफलता की ओर मैंने (सत्य प्रकाश) कुछ संकेत पूना के साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में विज्ञान गोष्ठी के अध्यक्षीय भाषण में किया था।...इधर हाल में ही आगरा विश्वविद्यालय से कई विद्वानों ने गणित और रसायन शब्दावलियों पर आलोचनाएँ लिख करके डाक्टर उपाधियाँ भी लीं (उपाध्याय ने गणित पर, ओंप्रकाश शर्मा और सक्सेना ने रसायन विज्ञान पर)।

...वस्तुतः पिछले पचास वर्षों के प्रयास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अब प्रश्न सिद्धान्तों का नहीं है। प्रश्न है व्यावहारिकता का और ऐसे शब्दों के प्रयोग का जिन्हें देश भर में मान्यता प्राप्त हो सके और जिसके उपयोग से साहित्य आसानी से जनता को उपलब्ध कराया जा सके।

२. अंग्रेजी भाषा

अन्य भाषाओं के समान अंग्रेजी भाषा का भी एक प्रवाह है और आजकल की जीवित भाषा होने के कारण इसे अब भी स्थिरता नहीं मिली है। देश और काल दोनों से ही यह निरन्तर प्रभावित होती आई है। भूमण्डल के दूरस्थ कोनों तक पहुंच जाने के कारण इसका शब्द भंडार भी बढ़ गया है, और न जाने कितनी बोलियों के शब्द इसमें प्रविष्ट या आत्मसात हो गये हैं। विभिन्न देशों के लोगों की बोलचाल में आने के कारण इसके शब्दों के उच्चारण भी अब मानक नहीं रह गये। भारत में पंजाबी,

उत्तर प्रदेशी, बंगाली, तमिल भाषी, सबकी अंग्रेजी अपनी विचित्रता लिये हुये है। उच्चारण में तो बहुत ही अन्तर है। अव्ययों से प्रयोगों में भी यह भिन्नता देखने को मिलती है। इंगलैंड की अंग्रेजी स्काटलैंड से भिन्न है। अमरीका की अंग्रेजी क्या है, यह कहना कठिन है।

अंग्रेजी भाषा से साधारणतया अभिप्राय उस भाषा से है जो इंगलैंड में (लंदन के शाही घराने में) बोली जाती है, और हमारी दृष्टि से यह वह भाषा है जो अंग्रेज अपने साथ भारत में लाया और जिसको उसने भारत के शासन की भाषा बनाया। इस भाषा का उद्गम 8 वीं शती में माना जा सकता है। इसके इतिहास को हम सुविधा की दृष्टि से तीन खण्डों में विभाजित कर सकते हैं—प्राचीन अंग्रेजी, मध्यकालीन अंग्रेजी, आधुनिक अंग्रेजी।

प्रारम्भ में अंग्रेजी गम्भीर साहित्य, शास्त्रीय साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्म की भाषा न थी और न कोई विद्वान इस भाषा के माध्यम से शिक्षा दीक्षा ही पाता था। विश्वविद्यालयों का प्रारम्भ धर्मशास्त्र के अध्ययन के निमित्त हुआ और इस शिक्षा का माध्यम लैटिन था। न्यूटन ऐसे वैज्ञानिक ने अपना ग्रंथ प्रिंसिपिया लैटिन भाषा ही में लिखा। प्राचीन अंग्रेजी पर जर्मन (गोथिक) का प्रभाव था। - - - - - नार्मन विजय होने पर देश पर विदेशी शासन हो गया। फ्रांसीसी भाषा की नार्मन बोली सम्पर्क की भाषा बन गई। फ्रांसीसी भाषा का प्रभाव उत्तोरोत्तर बढ़ता गया। प्राचीन अंग्रेजी लोग भूलने लगे - - - - - शब्दों के उच्चारण में भी परिवर्तन हो गया। मध्य-युगीन अंग्रेजी में बोलचाल या ग्राम्य भाषा की प्रधानता रही। 14 वीं शती तक तो अंग्रेजी को सरकारी भाषा की मान्यता प्राप्त ही नहीं हुई थी। प्रत्येक जिले का लेखक अपने स्थान की बोली में लिखता था (जैसे हमारे प्रदेश में कोई ब्रजी में लिखे, और कोई अवधी में, कोई भोजपुरी में) - - - - - धीरे धीरे अंग्रेजी पर फ्रेंच भाषा का प्रभाव कम होने लगा। 15 वीं शती में फ्रेंच युद्धों ने इंगलैंड में अनुशासनहीनता फैला दी। शब्दों में अराजकता रही। भाषा के लिये यह प्रबल संक्रमण का काल था। - - - - छापेखानों की सुविधा होने पर प्रकाशित पुस्तकें देश के कोने कोने तक पहुंचने लगीं और साधारण जनता की भी इनके प्रति रुचि बढ़ी। इसका प्रभाव यह हुआ कि भाषा की उच्छृंखलता समाप्त होने लगी और इसे कुछ स्थिरता प्राप्त हुई। व्याकरण में भी सरलता आने लगी। स्थिति यह हो गई कि एक ही शब्द संज्ञा, विशेषण और क्रिया तीनों के के रूप में प्रयुक्त होने लगा। यथा iron, clean.

यूरपवासियों की प्रवृत्ति समुद्र यात्रा में बढ़ने लगी थी। 16 वीं शती में स्पेन-वासियों के अनेक शब्द नाविकों के सम्पर्क के फस्वरूप अंग्रेजी भाषा में आ गये।

अंग्रेजी भाषा के इतिहास में 1611 का वर्ष महत्व का है। यह वर्ष शेक्सपियर की साहित्यिक रचनाओं के अन्त का है। इस वर्ष बाइबिल का अधिकृत अनुवाद जनता

के समक्ष ग्राया। ऐसा कहा जाता है कि ट्यूडर अंग्रेजी की समाप्ति का यह वर्ष है। इस समय अंग्रेजी भाषा को शब्दों और वाक्य विन्यासों की दृष्टि से आधुनिक स्थिरता प्राप्त हो गई थी। यही युग था जब वैज्ञानिक साहित्य भी नये परिवेश में हमारे सामने आ रहा था, जिसने अपनी शब्दावली के लिये ग्रीक और लैटिन उपसर्गों का आश्रय लिया। ...परिस्थिति ने अमरीका में एक नई राष्ट्रियता को जन्म दिया और उन्होंने अंग्रेजीको अपने देश की मान्य भाषा बना लिया ... आज तो अंग्रेजी की लोकप्रियता एवं उपोदयता अमरीकी प्रकाशनों के कारण अधिक है न कि इंगलैंड के प्रकाशनों के कारण।

वर्तमान युग विज्ञान और तकनीकी का है फलतः अंग्रेजी शब्द कोश में अब तो अधिकांश शब्द वैज्ञानिक या तकनीकी हैं। प्रत्येक नूतन अविष्कार अपने साथ नई शब्दावली लाता है . . . प्रत्येक महायुद्ध भी समाप्त होते होते साहित्य में अनेक नये शब्द छोड़ जाता है . . .।

३. डिक्शनरियों के विविध वर्ग

डिक्शनरी शब्द लैटिन के डिक्शन के शब्द से निकला है जिसका अर्थ है 'शब्द' या उच्चारण। अंग्रेजी भाषा में डिक्शनरी शब्द का प्रयोग ऐसे शब्दकोश या शब्दार्थ कोश के अर्थ में आता है जिसमें शब्दों का उच्चारण, उनकी निरुक्ति और उनकी व्याकृतियाँ इनके विभिन्न अभिप्राय या अर्थ, उनके वर्तनी, उनके पर्याय और विपर्याय और उनसे सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न प्रयोग दिए हों। अंग्रेजी साहित्य में कुछ और भी शब्दों का प्रयोग होता है जो महत्व के हैं—इनसाइक्लोपीडिया (विश्वकोश) कानकार्डेन्स (पदानुक्रमणिका), ग्लोसरी (शब्द सूची), गजेटियर (भौगोलिक नामावली), थिसौरस (शब्द भण्डार) तथा इण्डेक्स (अनुक्रमणिका)।

. . . एक अन्य प्रकार की शब्द सूची व्यक्तियों के नामों और उनके परिचय की होती है (बायोग्रेफिल डिक्शनरी) अथवा परिचय शब्द कोश। . . . वैज्ञानिक क्षेत्र में अनुसन्धान करने वाले व्यक्तियों की नामावली भी इस युग में बड़े महत्व की मानी जाती है। प्रत्येक वैज्ञानिक ग्रंथ के अन्त में एक विषय सूची होती है और एक लेखक सूची जिससे पता चल सके कि उक्त लेखक (वैज्ञानिक) का नाम किस किस पृष्ठ पर आया है जिससे कि उस वैज्ञानिक के कार्य का अध्ययन किया जा सके।

आजकल ऐसे भी अनेक कोश प्रति वर्ष प्रकाशित होते हैं जिनसे पता चल सके कि किस किस अनुसन्धान पत्रिका में कौन सा निबन्ध प्रकाशित हुआ है। वैज्ञानिक साहित्य इस युग में इस तीव्र गति से विशाद मात्रा में प्रकाशित हो रहा है कि इस प्रकार की संक्षिप्तियों और सूचियों के बिना कार्य का पता लगाना असम्भव है।

डिक्शनरियों या शब्द कोशों के चयन के शास्त्र को भाषा शास्त्र का एक आवश्यक उपांग माना जाने लगा है। इस अंग का नाम लेक्सिकोग्राफी या शब्दकोश शास्त्र है। हम इसे निघण्टु शास्त्र कह सकते हैं।

सहयोगी पीढ़ी

● संकलित

हिन्दी के माध्यम से विज्ञान जगत की सेवा करने वालों की संख्या अल्प होकर भी उल्लेखनीय है। इससे विकास की ऐतिहासिक परम्परा का बोध होता है और अगली पीढ़ी के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। लगभग एक शती पूर्व जब इस देश में वैज्ञानिक साहित्य का लेखन हिन्दी में प्रारम्भ हुआ उस समय वह राष्ट्रीयता का सूचक होता था, बिना किसी पुरस्कार या पारिश्रमिक के बहुजन हिताय और स्वान्त सुखाय होता था। किन्तु उसका प्रति फल अच्छा रहा है। देश में अनेक लेखक प्रकट हुए, उनमें से जो कार्य में लगे रहे उन्होंने ख्याति अर्जित की। डा० सत्य प्रकाश ने जब 1928 के आस पास लेखन प्रारम्भ किया, उसके पूर्व हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन प्रारम्भ हो चुका था फलस्वरूप उन्हें कार्य करने के लिए अच्छी पृष्ठभूमि प्राप्त हुई। एक प्रकार से वे वैज्ञानिक साहित्य सृजन के दूसरे चरण में हुए और उनके बाद जो पीढ़ी आई उसे मणि-कांचन संयोग प्राप्त हुआ क्योंकि दूसरे चरण के लेखकों से उन्हें विरासत में पारिभाषिक शब्दावली मिल सकी। फलस्वरूप इधर का जो लेखन हुआ—चाहे अनुवाद हो या मौलिक— वह अधिक व्यापक एवं विकसित रहा—नव-नव खोजों से पूर्ण और सुगठित भाषा के लिबास में।

स्वामी सत्य प्रकाश जी वैज्ञानिक साहित्य के स्रष्टाओं में अग्रगण्य हैं। उनके पूर्व-वर्ती तथा परवर्ती लेखकों की यथार्थ सूची प्रस्तुत कर सकना कठिन है किन्तु यहाँ पर लघु प्रयास किया जा रहा है।

स्वामी जी की पूर्ववर्ती पीढ़ी में श्री सुधाकर द्विवेदी, प्रोफेसर फूल देव सहाय वर्मा, स्वामी हरिशरणानन्द, श्री गोपाल स्वरूप भार्गव, प्रो० सालिगराम भार्गव, महावीर प्रसाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वामी जी की पीढ़ी के उज्ज्वल नक्षत्रों में डा० ब्रजमोहन (गणित), डा० आत्मा-राम (प्रौद्योगिकी), डा० संत प्रसाद टंडन (रसायन), डा० निहाल करण सेठी (भौतिकी) आदि हैं।

स्वामी जी की पीढ़ी के बाद के प्रमुख लेखकों में श्री रामेश वेदी, नन्दलाल जैन, सुरेश सिंह, रामचन्द्र तिवारी, डा० रामचरण मेहरोत्रा, हरिश्चन्द्र, डा० देवेन्द्र शर्मा (1942) डा० रामदास तिवारी (1945), प्रो० कृष्णाजी, डा० अमर सिंह (1946), श्री नारायण

सिंह परिहार, डा० रमेश चन्द्र कपूर, डा० हीरालाल निगम, डा० कृष्ण बहादुर (1945), कुलदीप चड्ढा (1948), डा० दिव्यदर्शन पन्त के नाम लिए जा सकते हैं।

किन्तु सबसे सशक्त पीढ़ी 1960 के आसपास आई।

स्वामी जी या उससे पूर्व की पीढी के लेखकों को बनाने में 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका का प्रमुख योगदान रहा है। अब तो अनेक वैज्ञानिक पत्र एवं पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं। अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकायें भी लेखकों को वैज्ञानिका साहित्य लेखन के लिए प्रोत्साहित करती हैं। 1960 के बाद की पीढ़ी के लिए लिखने और छपाने के लिए प्रचुर साधन प्राप्य रहे हैं फलतः उन्हें साहित्य सृजन की दिशा में गति प्राप्त हुई हैं, अर्थ-लाभ हुआ है और इस प्रकार देश में प्रचुर वैज्ञानिक साहित्य की सृष्टि हो सकी है। 1960 के दशक के लेखकों में से डा० शिवगोपाल मिश्र (1952), रमेशदत्त शर्मा, श्याम सरन विक्रम हरीश अग्रवाल, सुधांशु कुमार जैन (1950), रमेश वर्मा, रमेशचन्द्र वर्मा, जयप्रकाश भारती श्याम सुन्दर शर्मा, मनमोहन सरल, योगेन्द्र कुमार, दयाल सिंह कोठारी, उमाशंकर सिंह, डा० सत्य कुमार, डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री, प्रेमानन्द चन्दोला, देवेन मेवाड़ी, प्रमोद जोशी, डा० लूथरा के नाम अग्रणी हैं। इधर के नवीन लेखकों में जिनसे आशायें हैं, डा० रमेशचन्द्र तिवारी (1963), डा० देव नारायण पाण्डे, डा० प्रेमचन्द्र मिश्र, श्री प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव, श्याम मनोहर व्यास, रामलखन सिंह, श्याम सुन्दर पुरोहित, डा० शिव प्रकाश, श्री मुकुलचन्द पाण्डेय, सुरेश चन्द्र आमेटा, शमीम अहमद, श्यामलाल काकानी (1968), निरंकार सिंह (1971), महावीर सिंह मुडिया, सीरवाणी, महेन्द्र सिंह, श्री शुक देव प्रसाद तथा अन्य अनेक नवयुवक प्रमुख हैं।

उपर्युक्त में से द्वितीय-तृतीय पीढ़ी के लेखकों ने न केवल वैज्ञानिक पत्रिकाओं के माध्यम से योगदान दिया है वरन अनेक मौलिक पुस्तकें भी लिखी हैं। इनमें सूझबूझ रही है, इनका पठन क्षेत्र एवं लेखन क्षेत्र विशाल रहा है, इनकी भाषा में निखार पाया जाता है और इनकी भिन्न भिन्न शैलियाँ रही हैं। ये भौतिकी, गणित, रसायन, वनस्पति शास्त्र आदि के क्षेत्र के विशेष लेखक रहे हैं। इन्होंने नई पीढ़ी के लेखन के लिए प्रेरित किया है। वे साहित्य के विभिन्न अंगों की पूर्ति के लिए सचेष्ट रहे हैं। बाल विज्ञान, सन्दर्भ ग्रन्थ, विश्व कोश आदि के निर्माण में इनका सहयोग अतुलनीय है। उल्लेखनीय बात यह भी है कि कुछ विज्ञान वेत्ता न होकर भी वैज्ञानिक लेखन की ओर उन्मुख हुए और विज्ञान को हिन्दी के द्वारा लोकप्रिय बनाने का अद्‌भुत कार्य किया। ऐसों में श्री जगपति चतुर्वेदी, श्यामसरन विक्रम के नाम उल्लेखनीय हैं।

डा० सत्य प्रकाश, डा० गोरखप्रसाद, प्रो० फूल देव सहाय वर्मा, डा० ब्रजमोहन, श्री निहाल करण सेठी आदि ने पारिभाषिक शब्दों के निर्माण एवं विश्व कोश की आयोजना में स्तुत्य कार्य किया है। नई पीढ़ी इस कार्य के लिए उनकी ऋणी रहेगी।

हमारे देश में उच्च कोटि के वैज्ञानिकों की कमी नहीं रही। इनके जीवन परिचय एवं इनके कार्यों से परिचित कराने वाली पुस्तकों का अभी भी अभाव है। अपने देश में होने वाली वैज्ञानिक उन्नति से परिचित हुए बिना स्वस्थ वातावरण नहीं बन सकता। सौभाग्य से अनेक लेखक वैज्ञानिक संस्थानों एवं व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करके इस दिशा में लेखन कार्य करने की ओर प्रवृत्त हुए हैं। अनुवाद कार्य भी हुआ है। आज विश्वविद्यालयों के लिये जो स्तरीय ग्रन्थ लिखे जा सके हैं उसमें द्वितीय-तृतीय पीढ़ी के लेखकों का सर्वाधिक योगदान रहा है।

आगे उन अनेक हिन्दी लेखकों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जिनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। वे हमारी श्रद्धा के पात्र हैं। उनकी साहित्य सेवा ने हमें बल दिया है।

1. **डा० आत्माराम** (जन्म 12 अक्टूबर 1908) : अत्यंत निर्भीक, गांधीवादी औद्योगीकरण के प्रति निष्ठावान, 1966 से 1971 तक वैज्ञानिक तथा औद्योगिक परिषद नई दिल्ली के महानिदेशक, विज्ञान परिषद के आजीवन सभ्य, 1957 में विज्ञान परिषद गोष्ठी के अध्यक्ष, 1968 में विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष। मूलभूत प्रविधि पर बल देने वाले, रसायन का इतिहास के लेखक। 1929 में 'विज्ञान' में पहला लेख प्रकाशित।

2. **ओंकार नाथ शर्मा** : 1934 में विज्ञान परिषद के फेलो निर्वाचित, अनेक पुस्तकों के लेखक, यांत्रिक चित्रकारी, वैद्युत ब्रेक, रेल इंजन परिचय प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ, आज भी सक्रिय।

3. **डा० कृष्ण बहादुर** : लोकप्रिय लेखक, उच्च शोधकर्ता, जीवन के विकास पर की गई खोज महत्वपूर्ण है। वैश्लेषिक रसायन तथा ऐंटीबायोटिक नामक पुस्तकें प्रकाशित।

4. **गोपाल स्वरूप भार्गव** (स्वर्गीय). विज्ञान के सम्पादक (1917-25), कुरैशी, रामप्रसाद आदि नामों से लिखते रहे, मनोरंजक रसायन प्रकाशित कृति है।

5. **डा० गोरख प्रसाद** (28 मार्च 1916—मई 1961) : मंगला प्रसाद पुरस्कार विजेता, विश्वकोश के सम्पादक, 1932 में विज्ञान परिषद के सभ्य, बाल साहित्य के प्रणेता, ज्योतिषविद, कुशल व्यावहारिक विज्ञानी, 1939 में साहित्य सम्मेलन के विज्ञान विभाग के, अध्यक्ष, विज्ञान के सम्पादक (1937, 1941-44), विज्ञान परिषद के सभापति (1960) विज्ञान परिषद की 30 वर्ष सेवा की; फोटोग्राफी, घरेलू डाक्टर, सरल विज्ञान सागर, नीहारिका, चन्द्र सारणी, भारतीय ज्योतिष का इतिहास नामक उत्कृष्ट कृतियों के लेखक।

6. **डा० नन्दलाल सिंह** : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी सेल के निदेशक, अनेक पाठ्य पुस्तकों के सम्पादक एवं लेखक, भौतिकी के सम्पादक।

7. **नन्दलाल जैन :** बाल आश्रम रायपुर में अध्यापक, बाल साहित्य के प्रमुख लेखक, अनूदित कृतियाँ प्रकाशित हैं।

8. **प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा :** (जन्म 1889) वृद्ध होते हुए भी सक्रिय, 1928 में प्रारम्भिक रसायन नामक पुस्तक लिखी। अनेक कृतियों के लेखक, अनेक बार पुरस्कृत, 1976 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा वैज्ञानिक साहित्य सृजन हेतु 15000 रु० से पुरस्कृत, अनेक समितियों के परामर्शदाता, पहले वैज्ञानिक जिन्होंने अपना 'आत्म जीवन' (1974) लिखा है। ईख और चीनी, पेट्रोलियम, कोयला, उर्वरक एवं खाद जैसी उत्तम कृतियाँ बहुचर्चित हैं। विश्व कोश के सम्पादक (1961-69 तक)।

9. **डा० ब्रजमोहन :** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के गणित विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष, 1947 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष, विज्ञान परिषद गोष्ठी के अध्यक्ष (1969), गणितीय शब्दावली पर अनेक लेख (1947); 'गणितीय कोश' कृति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 1956 में पुरस्कृत।

10. **महावीर प्रसाद श्रीवास्तव** (स्वर्गीय) : विज्ञान परिषद के मंत्री, हिन्द साहित्य सम्मेलन के विज्ञान विभाग के अध्यक्ष (1945), मंगला प्रसाद पुरस्कार विजेता (1944), भारतीय ज्योतिष तथा आर्य भट्ट की ज्योतिष पर सूर सिद्धान्त नामक भाष्य के लेखक।

11. **रामदास गौड़ एम० ए०** (मृत्यु 12-1-1937) : विज्ञान परिषद के जन्म दाता, विज्ञान के सम्पादक (1933-37), मंगला प्रसाद पुरस्कार विजेता, अब्दुल्ला नाम से लिखते रहे। विज्ञान हस्तामलक (1930) प्रकाशित कृति।

12. **डा० राम चरण मेहरोत्रा :** अधुना दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति, भारत के अग्रणी रसायनज्ञ, विज्ञान के सम्पादक (1947-49), 1944 से ही हिन्दी में लेखन, भौतिकी रसायन पर पहली पुस्तक के लेखक, अनेक पाठ्य पुस्तकों में प्रणेता।

13. **रमेश दत्त शर्मा :** 'खेती' के सम्पादक, लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखक, टेलीविजन पर वार्तायें प्रसारित, विशिष्ट शैली के जन्मदाता, वनस्पति विज्ञान के विशेष ज्ञाता।

14. **डा० रमेचन्द्र कपूर :** जोधपुर विश्वविद्यालय में रसायन विभाग के अध्यक्ष, विज्ञान परिषद के कई वर्षों तक प्रधान मन्त्री, 1948 से ही लेखन, विज्ञान गोष्ठी के अध्यक्ष (1973), परमाणु विखण्डन कृति पर मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदत्त।

15. **प्रो० सालिगराम भार्गव** (स्वर्गीय) : विज्ञान परिषद के जन्मदाताओं में से, परिषद के मन्त्री तथा प्रधान मन्त्री। विद्युत शास्त्र पर निवन्ध, 'चुम्बक' नामक कृति प्रकाशित।

16. **डा० सन्त प्रसाद टंडन :** इलाहावाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष, विज्ञान के सम्पादक (1944-46), अनेक पाठ्य पुस्तकों तथा मौलिक ग्रन्थों के लेखक, विज्ञान परिषद द्वारा पुरस्कृत।

17. **डा० शिव गोपाल मिश्र :** 12 वर्षों तका विज्ञान के सम्पादक; 1958 से ही अनुसंधान पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक, अनेक पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित; अनुवादक, मौलिक लेखक, साहित्यिक, कृषि रसायन के विशेषज्ञ, उत्तर प्रदेश सरकार तथा विज्ञान परिषद द्वारा पुरस्कृत, 'भारत की सम्पदा' के प्रथम सम्पादक, अनेक पाठ्य पुस्तकों तथा मौलिक ग्रन्थों के लेखक।

18. **स्वामी हरिशरणानन्द (स्वर्गीय) :** पंजाब आयुर्वेद फार्मेसी के संस्थापक, विज्ञान परिषद के आजीवन सभ्य, 1934 में विज्ञान के सम्पादक, आयुर्वेद सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के प्राचीन शैली के लेखक। परिषद को हरिशरणानन्द पुरस्कार हेतु राशि प्रदान की थी, आ-जीवन वैज्ञानिक साहित्य के प्रति प्रगाढ़ रुचि।

19. **डा० हीरालाल निगम :** इन्दौर विश्वविद्यालय में रसायन विभाग के अध्यक्ष, विज्ञान के सम्पादक (1950-56), कई पुस्तकों के लेखक, प्रकाश-रसायन पर प्रथम कृति के लेखक।

20. **डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री :** संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान, प्राचीन वैज्ञानिक साहित्य के मर्मज्ञ, नवयुवक, 'पृष्ठ रसायन' नामक कृति मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।

21. **श्री जगपति चतुर्वेदी :** विज्ञान प्रेमी, लोकप्रिय विज्ञान पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

22. **श्यामसरन विक्रम :** विज्ञान प्रेमी, सैकड़ों निवन्धों के लेखक, वैज्ञानिक संस्थाओं के जनक एवं संरक्षक।

23. **श्री शुकदेव प्रसाद :** उदीयमान लेखक जिससे आशायें हैं।

विज्ञान परिषद तथा अन्य संस्थायें

विज्ञान परिषद विद्वानों की दृष्टि में

"परिषद् का मुख-पत्र 'विज्ञान' हिन्दी में ही नहीं, भारत की सभी भाषाओं में अद्वितीय स्थान रखता है और अपने ढंग की अनूठी चीज है। वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का रूप स्थिर करने में भी इस परीषद् ने प्रशंसनीय कार्य किया है" . . .

डा० बाबूराम सक्सेना

"मैं विज्ञान का उस दिन से शुभचिन्तक हूँ जब वह पहले पहल अध्यापक श्री राम दास जी गौड़ के प्रयत्न से निकलना आरम्भ हुआ था। , . . मेरा विश्वास है कि जब तक भारतीय विद्वान अपनी भाषा में लिखने पढ़ने न लगेंगे तब तक देश और समाज में ज्ञान और विज्ञान का वास्तविक प्रचार न होगा। विदेशी भाषा द्वारा बनाये हुये विद्वानों की वही दशा रहेगी जैसी वर्षा रितु में जुगनुओं द्वारा आलोकित उद्यान की है।"

वा० शिव प्रसाद जी गुप्त

'विज्ञान परिषद से हिन्दी का गौरव है . . . उसकी उन्नति से हमारी उन्नति है।'

स्व० मैथिलीशरण गुप्त

उदित दिवाकर सदृश हो, हरे देश अज्ञान
विज्ञ बनावे लोक को, विज्ञार्जित विज्ञान

हरिऔध

'परिषद् ने हिन्दी में विज्ञान के सम्बन्ध में जो कार्य किया है वह किसी से छिपा नहीं है। विदेशी भाषाओं में होने वाले कार्य से इसकी तुलना भले ही न की जा सके किन्तु भारतीय भाषाओं के तत्सम्बन्धी कार्य में निश्चय ही इसका स्थान बहुत ऊँचा है।'

स्व० डा० धीरेन्द्र वर्मा

'विज्ञान परिषद् का आविर्भाव संसार के अद्भुत पदार्थों में गिना जा सकता है क्योंकि इसके आविर्भावकों में एक पंडित और मौलवी थे। मूल सूत्रपात करने वाले चार आदमी थे।'

गंगा नाथ झा 1939

विज्ञान परिषद

म्योर सेन्ट्रल कालेज के अध्यापक महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, प्रो० हमीद उद्दीन साहब, बाबू रामदास गौड़ और पं० सालगराम भार्गव ने 14 मार्च 1913 के दिन एक मीटिंग की जिसमें यह निश्चय हुआ कि देशी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रचार का काम सुसंगठित रूप से चलाने के उद्देश्य से "वर्नाक्यूलर साइंटिफिक लिटरेचर सोसाइटी" की स्थापना की जाय जिसका नाम डा० झा ने "विज्ञान परिषद्" और हमीद उद्दीन साहब ने 'अंजुमनसना-अ-व-फनून' रखा ।

इस संस्था के कार्य संचालन के लिये प्रिंसिपल जे० जी० जेनिंग्स ने म्योर कालेज में स्थान भी देने की कृपा की। 31 मार्च 1913 को की पहला अधिवेशन हुआ फिर मेम्बर बनाने के उद्देश्य से पत्र व्यवहार हुआ किन्तु असफलता मिली । अतः यह निश्चय हुआ कि कुछ आरम्भिक ग्रंथ तैयार किये जायें । पं० सालगराम भार्गव तथा प्रो० गौड़ ने 'विज्ञान प्रवेशिका' भाग 1 लिख डाली ।

संस्था का दूसरा अधिवेशन 30 जुलाई 1913 को हुआ । तब 43 सदस्य हो चुके थे । पारिभाषिक शब्दावली की समस्या उपस्थित होने पर रसायन, भौतिक, वनस्पति आदि विषयों की समितियाँ बना दी गईं । पहला व्याख्यान देने आये रायबरेली से श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव । विषय था आर्कीमिदिस का सिद्धान्त ।

विज्ञान प्रवेशिका छपी तो हाथोहाथ बिक गई । सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि हुई ।

परिषद् का जन्म दो उद्देश्यों से हुआ :

1. भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना और प्रकाशन
2. देश में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार ।

दूसरे ही वर्ष परिषद् का ध्यान पत्र प्रकाशन की ओर गया । पहले दो भाषाओं— हिन्दी तथा उर्दू—में पत्र निकालने का प्रस्ताव हुआ । किन्तु पत्र के प्रारम्भ करने की पहली शर्त यह थी कि कम-से-कम 250 स्थायी ग्राहक मिल जायें । हिन्दी के इससे अधिक ग्राहक मिल गये अतः 'विज्ञान' का प्रकाशन हिन्दी में आरम्भ हो सका ।

अब सम्पादक की तलाश होने लगी। लाला सीताराम ने गणित सम्बन्धी कई ग्रंथ लिखे थे, हिन्दी उर्दू के ज्ञाता थे और कवि थे, अतः उन्होंने प्रसिद्ध कवि श्रीधर पाठक के सहयोग से 'विज्ञान' निकालने का बीड़ा उठाया। किन्तु इन्हें विज्ञान विषयक ज्ञान न था। इसका भार स्वीकार किया प्रोफेसर रामदास जी गौड़ ने। उन्होंने 2-3 अंकों की सामग्री एकत्र की किन्तु अस्वस्थ होने के कारण पहाड़ चले गये तो पुनः समस्या उठ खड़ी हुई। पहला अंक अप्रैल 1915 में प्रकाशित हो सका। प्रारम्भिक काल में प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव ने विज्ञान का सम्पादन अबाध रूप से किया। यथावकाश प्रो० राम दास गौड़ इस कार्य में सहायता और परामर्श देते रहे। बाद में उन्होंने सम्पादन कार्य भी संभाला और आजीवन करते रहे।

इस प्रकार विज्ञान के जन्म से लेकर प्रायः 22 वर्ष तक प्रो० गौड़ ही संचालन की नीति के सूत्रधार रहे। इसके लिये हिन्दी साहित्य जगत सदा आभारी रहेगा। इसके बाद डा० सत्य प्रकाश, डा० गोरख प्रसाद, हरिशरणानन्द, डा० सन्त प्रसाद टंडन, डा० रामचरण मेहरोत्रा, डा० हीरालाल निगम, डा० देवेन्द्र शर्मा, डा० शिवगोपाल मिश्र, डा० हरिमोहन तथा डा० शिव प्रकाश ने विज्ञान के सम्पादन का कार्य किया। उसे प्रकाशित होते 60 वर्ष पूरे हो चुके हैं। हिन्दी में यह एकमात्र वैज्ञानिक पत्रिका है जिसे अधिक-से-अधिक संख्या में लेखक उत्पन्न करने का श्रेय प्राप्त है।

विज्ञान के कलेवर तथा उसकी सामग्री में यथासमय परिवर्तन होते रहे हैं। प्रो० भार्गव के सम्पादन काल में विज्ञान का रोचक अंग पुष्ट रहा। डा० सत्यप्रकाश के काल में पाठ्य विषयों पर ध्यान दिया गया, डा० गोरख प्रसाद के काल में औद्योगिक लेखों का महत्व रहा। कुछ काल तक 'आयुर्वेद विज्ञान' नामक पत्र का विलयन विज्ञान में हो गया था (1941 ई० में) जिससे उसमें चिकित्सा सम्बन्धी लेखों का आधिक्य हो गया।

प्रारम्भ में विज्ञान परिषद् को अपने सदस्यों से प्राप्त चन्दे के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार के शिक्षा विभाग से प्रति वर्ष 600 रु० की आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी जिससे विज्ञान का प्रकाशन होता था। इस आर्थिक सहायता को प्राप्त करने में लीडर के सम्पादक सी० वाई० चिन्तामणि का प्रमुख हाथ था। पहले विज्ञान 48 पृष्ठ का छपता था जिसकी एक प्रति का मूल्य चार आना था। बीच बीच में परिषद् को आर्थिक संकटों से गुजरना पड़ा जिससे विज्ञान के कलेवर में कमी की गई, संयुक्त अंक निकाले गये और एकाध बार तो ऐसा लगा कि प्रकाशन बन्द करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ "1920 से 1925 तक का समय परिषद् के लिये विशेष चिन्ताजनक रहा, विज्ञान बहुत पिछड़ गया, कई बार बन्द कर देने का; पृष्ठों को घटा देने अथवा अन्य प्रकाशकों को सौंप देने का विचार होने लगा . . . सन् 1927-28 से विज्ञान फिर समय से निकलने लगा"[1]

---

1. विज्ञान परिषद् का क्रमबद्ध इतिहास, विज्ञान का रजत जयन्ती अंक 1938, पृष्ठ 26

"मन्त्री ने कहा कि अक्टूबर 1923 से सितम्बर 1924 तक कोई काम नहीं हुआ विज्ञान छः मास पिछड़ गया" . . . ग्राहक संख्या घट रही है। गवर्नमेंट और एकेडमी दोनों ने सहायता देने से इंकार किया . . . (31 अक्टूबर 1928) . . . . . . विज्ञान की पृष्ठ संख्या 48 से घटाकर 32 की जाय, न कि विज्ञान बंद किया जा . . . (19 सितम्बर 1931 से) . . . निश्चय हुआ कि परिषद् के सदस्यों का चन्दा 12) से घटा कर 5) कर दिया जाय। आजन्म सभ्य 75) के हों (21 अक्टूबर 1937) . . . सरकार से 600) मिले स्वामी हरिशरणानन्द जी से 800), कवर इण्डियन प्रेस ने मुफ्त छापा . . ." [2]

परिषद् को बीच में पुस्तकें छापने के लिये सरकार से कुछ न कुछ आर्थिक सहायता मिलती रही जिसके फलस्वरूप 1938 तक प्राय 43 पुस्तकें प्रकाशित की जा सकीं। इनमें बहुत सी पुस्तकें थीं जिनके अंश विज्ञान में छपते रहते थे। इन पुस्तकों का लेखन सेवाभाव से प्रेरित हो लेखकों ने किया, परिषद् उन्हें इसके उपलक्ष में कोई रायल्टी आदि नहीं देता था। डा० गोरख प्रसाद के काल में कुछ अत्यन्त उपयोगी पुस्तकें छप सकीं—यथा घरेलू डाक्टर, उपयोगी नुस्खे एवं सरल विज्ञान सागर आदि। 1938 में परिषद् की रजत जयंती मनाई गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में नवोन्मेष हुआ। परिषद ने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली तैयार कराने में जो अथक प्रयास किया था, वह सफलीभूत हुआ। नवीन पुस्तकों के लेखन और नये लेखक बनाने में इसका उपयोग हुआ। किन्तु परिषद् के ऊपर आर्थिक संकट के मेघ छाये थे। 'विज्ञान' के प्रकाशन के लिये सरकार से 2000) की राशि (आवर्तक) प्राप्त होती थी उससे कार्यालय चलाने, पुस्तकों की सुरक्षा आदि का कार्य सुचारु रूप से नहीं चल पाता था। यह स्थिति 1957 तक बनी रही। धीरे-धीरे फिर सुधार हुआ।

जब परिषद् को स्वामी हरिशरणानन्द जी से विज्ञान के उन्नयन के लिये 1000) वार्षिक सहायता मिलने लगी तो विज्ञान के कलेवर में सुधार आया। पहली बार विज्ञान सजधज के साथ मोनोटाइप में, अच्छे कागज और मोटे कवर के साथ 1959 जुलाई में प्रकाशित हुई। इसका श्रेय उसके नये सम्पादक डा० शिवगोपाल मिश्र को था जो 1957 से परिषद् द्वारा प्रकाशित 'अनुसन्धान पत्रिका' के प्रबन्ध सम्पादक का कार्य कर रहे थे। फिर तो विज्ञान उत्कर्ष को प्राप्त हुआ, नवीन लेखकों को प्रोत्साहन मिला और 1971 तक 'विज्ञान' की धाक भारत के समस्त राज्यों पर रही। जब व्यस्तता के कारण डा० मिश्र ने 'विज्ञान' का सम्पादन छोड़ दिया तो विज्ञान के स्तर में गिरावट आई। किन्तु वे 'विज्ञान' के उन्नयन में सहयोग देते रहे। उन्हीं के प्रयास से 'विज्ञान' को अब राज्य सरकार के अतिरिक्त 9000) कौंसिल आफ सांइटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली से

---

2. वही पृष्ठ 28-34 तक

अतिरिक्त अनावर्तक राशि प्राप्त होने लगी है। फलस्वरूप 'विज्ञान' के कलेवर एवं स्वरूप में कुछ परिवर्तन सम्भव हो सका है, किन्तु अब भी विज्ञान के वाह्य एवं अन्तरंग में सुधार अपेक्षित है।

परिषद का भवन :

1925 में ही परिषद् ने क्रास्थवेट रोड पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के निकट इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट से जमीन खरीद ली। 1929 तक कुछ भाग बनकर तैयार हुआ और एक कोठरी किराये पर उठाई गई। किन्हीं कारणों से परिषद् ने इस भवन का त्याग कर दिया और डा० सत्यप्रकाश या डा० गोरख प्रसाद जी के घर पर ही 'विज्ञान' कार्यालय रहने लगा। फिर इसका कार्यालय म्योर सेंट्रल कालेज के रसायन विभाग में एक कमरे में आ गया।

प्रयाग विश्वविद्यालय ने परिषद् भवन बनाने के लिये भूमि दी तो उसपर भवन बनाने के लिये चन्दा एकत्र किया गया। प्रिंसिपल हीरा लाल खन्ना के अथक प्रयासों से परिषद् भवन की नींव पड़ी। भवन का शिलान्यास 1956 में भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने किया। फिर भवन का जितना अंश बना था, उसी में कार्यालय आ गया। धीरे-धीरे भवन का कार्य चलता रहा। उसमें एक बहुत बड़ा हाल 'आचार्य नरेन्द्र देव हाल" बनाने की योजना थी किन्तु समुचित धन एकत्र न होने के कारण उसका निर्माण स्थगित रहा। 1959 में उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री ने 20000) का अनुदान दिया जिससे परिषद् का ऊपरी खण्ड बन सका। हाल को पूरा करने के लिये प्रयास चलता रहा। इधर लोकमणि लाल जी ने 30000) दान दिये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य स्रोतों से भी धन एकत्र किया जा रहा है। अनुमान है कि इस हाल के बन कर तैयार होने में 2 लाख से अधिक धनराशि की आवश्यकता होगी। परिषद् के प्रान मंत्री प्रो० कृष्ण जी प्रयत्नशील हैं कि परिषद् का अधूरा हाल पूरा हो जाय।

परिषद् की गतिविधियाँ

1. व्याख्यानों का आयोजन

परिषद् के जन्म से ही वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में व्याख्यानों की योजना होती रही है। प्रारम्भ के कुछ वर्षों में इस ओर विशेष उत्साह रहा, किन्तु परिषद से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संख्या बढ़ जाने पर व्याख्यानों की संख्या में उतार आया। फिर तो वार्षिक अधिवेशन पर ही विशेष व्याख्यान होते रहे।

पहले हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने अधिवेशनों में गण्यमान हिन्दी ज्ञाता वैज्ञानिक को विज्ञान परिषद् का अध्यक्ष बनाकर उन्हें सम्मानित करता था। फलस्वरूप डा० सत्यप्रकाश, डा० गोरख प्रसाद, प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव,

आदि को इस मंच से हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की विविध आवश्यकताओं पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिलता रहा। यही नहीं साहित्य सम्मेलन ने कई विज्ञान सेवियों को तत्कालीन मंगला प्रसाद पारितोषिक से सम्मानित भी किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी साहित्यकारों को भी वैज्ञानिक गतिविधियों का परिचय प्राप्त हो सका।

2. **प्रकाशन*** : परिषद् ने अपने जन्म के पहले वर्ष में ही विज्ञान प्रवेशिका नामक पुस्तक छापी जिसका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। फिर तो एक एक करके उसने अनेक उपयोगी कृतियाँ प्रकाशित कीं। स्मरणीय बात यह है कि हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन की दिशा में अहिन्दी प्रान्त के भी लेखकों का सहयोग प्राप्त किया गया और सर्वग्राह्य पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण एवं प्रयोग पर बल दिया गया। परिषद् के पास उसकी रजत जयन्ती तक 44 पुस्तकें छप चुकी थीं। 1957 तक इनकी संख्या 65 तक बढ़ गई। 1960 में एक और पुस्तक प्रकाशित हुई, 'भारतीय कृषि का विकास'। उसके बाद से परिषद् का प्रकाशन कार्य ठप्प हो गया।

1963 तक परिषद् अपने प्रकाशनों की बिक्री का कार्य अपने जिम्मे रखता रहा किन्तु वी० पी० भेजने और लौटने पर आर्थिक हानि होने के कारण यह निश्चय हुआ कि परिषद् के सभी प्रकाशन श्री रामनारायण लाल बेनी प्रसाद, पुस्तक विक्रेता को इस अनुबन्ध के साथ दिये जायें कि वह हमारे प्रकाशनों का आवश्यकतानुसार परिवर्द्धित संस्करण छाप सकते हैं और बिकी हुई पुस्तकों की धनराशि में से हमें 35% देंगे। प्रारम्भ में परिषद् की पुस्तकें बिकीं, किन्तु बाद में कुछ शिथिलता आती रही फलस्वरूप बाध्य होकर अनुबन्ध के पूरा हो जाने के दो वर्ष बाद परिषद् को अनुबन्ध निरस्त कर देना पड़ा। अब परिषद् पुनः अपना प्रकाशन प्रारम्भ करने पर विचार कर रहा है।

3. **अनुसन्धान पत्रिका** : डा० सत्यप्रकाश ने अपने जयपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर 1944 में ई० में त्रैमासिक अनुसन्धान पत्रिका प्रकाशित किये जाने की कामना की। 1952 में ही यह योजना बन पाई कि हिन्दी में वैज्ञानिक अनुसन्धान सम्बन्धी शोधप्रपत्रों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से एक पत्रिका निकाली जाय। दुर्भाग्यवश यह योजना 1957 में जाकर फलीभूत हुई। उत्तर प्रदेश की वैज्ञानिक अनुसन्धान परिषद् की ओर से 2500 रु० की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई फलस्वरूप जनवरी 1958 से अनुसन्धान पत्रिका प्रकाशित होनी शुरू हुई। यह किसी भी भारतीय भाषा में प्रकाशित होने वाली अपनी कोटि की प्रथम पत्रिका है। इसमें विज्ञान की विविध शाखाओं में होने वाले शोधकार्य से सम्बन्धित उच्चकोटि के मौलिक शोधपत्र प्रकाशित होते हैं। यह त्रैमासिक के रूप में है। पहले तो

---

* देखें, शिलान्यास अंक, मई जुलाई 1956, परिषद् और उसका प्रकाशन, पृष्ठ 15।

अधिकांश शोधपत्र अंग्रेजी में आते थे जिनके अनुवाद की व्यवस्था की जाती थी किन्तु धीरे-धीरे 50% से अधिक लेख अब हिन्दी में ही लिखे जाते हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने 1965 से वार्षिक अनुदान बढ़ाकर 5000) कर दिया जिससे कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। बीच में आर्थिक संकट के समय एक वर्ष कोई अनुदान नहीं मिला, किन्तु बाद में फिर पूर्ववत स्थिति हो गई। 1970 ई० में डा० आत्माराम (तत्कालीन सी० एस० आई० आर० के महा निदेशक) ने अनुसन्धान पत्रिका के लिये 5000) वार्षिक का अनुदान स्वीकृत किया तो लगातार मिलता रहा। इस वर्ष यह अनुदान बढ़कर 10000) हो गया है। फलस्वरूप परिषद् ने इसके पृष्ठों की संख्या में वृद्धि कर दी है। सन्तोष की बात यही है कि पिछले 18 वर्षों में पत्रिका के प्रकाशन में कोई अनियमितता नहीं आने पाई और यह भारत की शोध पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना सकी है। उसके कई विशेषांक भी छपे हैं।

यह विदेशी शोधपत्रों के विनिमय में विदेशों में भेजी जाती है। आज भी 80 संस्थाओं के साथ इसका विनिमय हो रहा है। इसमें प्रकाशित शोध पत्रों का संक्षिप्तीकरण प्रारम्भ से ही "केमिकल ऐब्सट्रैक्टस", मैथमेटिकल रिव्यूज, काम्प रेडूं आदि में होता रहा है।

पुरस्कार

1959 ई० में स्वामी हरिशरणानन्द ने वैज्ञानिक लेखकों को प्रोत्साहित करने के लिये 2000, 1000 तथा 5000 रुपये के तीन पुरस्कारों (क्रमश: मौलिक वैज्ञानिक कृति, जनोपयोगी वैज्ञानिक कृति तथा बाल साहित्य पर दिये जाने की) योजना बनाई और परिषद् को आवश्यक धन दिया। परिषद् इस प्रकार योजना को कई वर्षों तक अनवरत चलाता रहा। अन्त में स्वामी जी ने यह योजना बंद कर दी तो परिषद् ने उस धन से जो बचा रह गया था, स्वामी हरिशरणानन्द जी के नाम पर "स्वर्ण पदक" प्रदान करने की योजना चालू की। यह पदक प्रति वर्ष विज्ञान के विविध विषयों में तीन वर्षों के अन्तर्गत प्रकाशित हिन्दी पुस्तकों पर प्रदान किया जाता है।

परिषद् द्वारा एक अन्य स्वर्ण पदक, डा० रत्नकुमारी की पुण्य स्मृति में प्रदान किया जाता है। यह अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशित सर्वोत्कृष्ट शोधपत्र पर प्रति दूसरे वर्ष प्रदान किया जाता है। इसके लिये आवश्यक धन डा० सत्य प्रकाश जी ने परिषद को दिया है।

पुस्तकालय

परिषद् के पास पुस्तकालय भी है जिसमें हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों से प्राप्त पुरस्कार के लिये आई अथवा विज्ञान में समीक्षा के लिये आई हिन्दी पुस्तकें हैं। साथ ही अनुसन्धान पत्रिका के विनिमय में 1958 से लेकर आज तक लगभग 80 विदेशी पत्रिकाओं के जिल्द किये अंक हैं। इसमें 'विज्ञान' की फाइलें, अनुसन्धान पत्रिका के सभी अंक तथा विनिमय में प्राप्त हिन्दी की वज्ञानिक पत्रिकायें हैं। यह पुस्तकालय विज्ञान संकाय के

शोधार्थियों के लिये परमोपयोगी हैं। यहां पर वे आकर विदेशी जर्नलों का अध्ययन करते हैं।

गत वर्ष से एक सार्वजनिक वाचनालय भी खोला गया है जिसमें से विज्ञान के विद्यार्थियों को घर ले जाने अथवा पढ़ने के लिये पुस्तकें दी जाती हैं।

उपसंहार

विज्ञान परिषद् ने आरम्भ में जो छोटी छोटी पुस्तकें निकालीं वे उस समय के लिये बहुत बड़ी चीज थीं। सन्तोष की बात है कि ऐसी पुस्तकें तो अब अन्य प्रकाशक भी छाप रहे हैं। परिषद् का काम अपने समय से आगे का है। वह आगे के लिये क्षेत्र तैयार करता रहा हैं। लेखकों तथा ग्रन्थकारों ने परिषद् पर कृपा की क्योंकि कभी कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, सम्पादकों ने निःस्वार्थ भाव से काम किया। सच बात तो यह है कि सबों के बल पर ही इतना कार्य सम्भव हो सका है। डा० सत्यप्रकाश जी ने विज्ञान परिषद् के हित को सदैव ध्यान में रखा है। एक प्रकार से उनके जीवनकाल की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है।

विज्ञान परिषद के सभापति

1913-17	डा० सर सुन्दरलाल
1911-20	राजा सर रामपाल सिंह
1920-21	श्रमती डा० ऐनी बीसेण्ट
1921-22	जस्टिस गोकुल प्रसाद
1922-25	श्री सी० वाई० चिन्तामणि
1925-27	बाबू शिवप्रसाद गुप्त
1927-30	डा० गंगानाथ झा
1930-33	डा० नीलरत्न धर
1933-35	डा० गणेश प्रसाद
1935-38	डा० कर्मनारायण बहल
1938-40	प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा
1940-47	डा० श्रीरंजन
1947-51	जस्टिस हरिश्चन्द्र
1951-57	श्री हीरालाल खन्ना
1957-60	केशवदेव मालवीय
1960-61	डा० गोरख प्रसाद
1961-67	डा० सत्यप्रकाश
1967-69	डा० रामधर मिश्र
1970-74	डा० बाबूराम सक्सेना
1974	डा० डी० एस० कोठारी
1974...	श्री राम सहाय

विज्ञान के सम्पादक

1915-16	श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम
1916-17	श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम
1917-26	प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव
1926-30	प्रो० ब्रजराज
1927-33	डा० सत्यप्रकाश तथा प्रो० ब्रजराज
1933-37	श्री रामदास गौड़
1937	डा० गोरखप्रसाद
1937-41	डा० सत्यप्रकाश
1-41-44	डा० गोरखप्रसाद
1944-46	डा० सन्तप्रसाद टंडन
1947-49	डा० रामचरण मेहरोत्रा
1950-56	डा० हीरालाल निगम
1956-57	डा० देवेन्द्र शर्मा
1957-59	डा० देवेन्द्र शर्मा तथा सम्पादक मंडल
1959-71	डा० शिवगोपाल मिश्र
1971-73	डा० हरिमोहन

1973 से सम्प्रति डा० शिवप्रकाश

परिषद द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सूची

1. विज्ञान प्रवेशिका भाग 1, रामदास गौड़ तथा सालिगराम भार्गव, 1914 ।)
2. विज्ञान प्रवेशिका भाग 2* महावीर प्रसाद श्रीवास्तव 1917 १)
3. मिफ्ताहुउल-फनून अनु० सैयद मोहम्मद अली नामी 1915 ।)
4. ताप प्रेमवल्लभ जोशी 1915 ।=)
5. हरारत अनु० प्रो० मेंहदी हुसैन नासिरी 1916 ।)
6. पशु पक्षियों का श्रृंगार सालिगराम वर्मा 1917 –)
7. केला गंगाशंकर पंचौली 1917 –)
8. सुवर्णकारी गंगाशंकर पंचौली 1917 ।)
9. चुम्बक सालिग राम भार्गव 1917 ।–)
10. गुरुदेव के साथ यात्रा अनु० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव 1917 ।–)
11. क्षय रोग अनु० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव 1917 –)
12. दियासलाई और फास्फोरस रामदास गौड़ 1918 –)
13. शिक्षितों का स्वास्थ्य व्यक्तिक्रम गोपाल नारायण सेन सिंह 1918 ।)
14. पैमाइश मुरलीधर तथा नन्दलाल 1919 १)
15. कपास तेजशंकर कोचक 1920 =)
16. आलू गंगाशंकर पंचौली 1920 =)
17. कृत्रिम काष्ठ गंगाशंकर पंचौली 1920 =)
18. हमारे शरीर की रचना बी० के० मित्र 1920 –)॥
19. जीनत वहश व तयर अनु० प्रो० मेंहदी हुसेन नासिरी 1921 –)
20. मनोरंजक रसायन गोपाल स्वरूप भार्गव 1923 १॥)
21. सूर्यसिद्धान्त-विज्ञान भाष्य महावीर प्रसाद श्रीवास्तव मध्यमाधिकार 1924 ॥=)
    स्पष्टाधिकार 1925 ॥।)

		त्रिप्रश्नाधिकार 1927	१॥)
		चन्द्रग्रहणाधिकार से भूगोलाध्याय तक 1929	२।)
22.	फसल के शत्रु	शंकर राव जोशी	।–)
23.	ज्वर निदान और सुश्रूषा	बी० के० मित्र 1921	।)
24.	मनुष्य का आहार	गोपीनाथ गुप्त वैद्य 1922	१)
25.	वर्षा और वनस्पति	शंकर राव जोशी 1923	।)
26.	सुन्दरी मनोरमा की करुण कथा	डा० सत्य प्रकाश 1925	–)।
27.	कार्बनिक रसायन	डा० सत्यप्रकाश 1929	२॥)
28.	वैज्ञानिक परिमाण	डा० निहालकरण सेठी तथा डा० सत्यप्रकाश 1929	१॥)
29.	साधारण रसायन	डा० सत्यप्रकाश 1929	२॥)
30.	सर चन्द्रशेखर वेंकटरमन	युधिष्ठर भार्गव 1930	=)
31.	समीकरण मीमांसा भाग 1	सुधाकर द्विवेदी 1931	१॥)
	2	सुधाकर द्विवेदी 1931	॥=)
32.	वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द भाग 1	सत्यप्रकाश 1930	॥)
33.	निर्णायक	गोपालकेशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री	॥)
34.	उद्भिज का आहार	एन० के० चटर्जी 1931	॥)
35.	रसायन इतिहास सम्बन्धी लेख	आत्माराम	॥।)
36.	प्रकाश रसायन	वा० वि० भागवत 1932	१॥)
37.	डा० गणेश प्रसाद का स्मारकांक	1935	४)
38.	बीजज्यामिति	डा० सत्यप्रकाश 1931	१।)
39.	उद्योग व्यवसायांक	1936	१॥)
40.	फल संरक्षण	डा० गोरख प्रसाद 1937	१)
41.	व्यंग्य चित्रण	अनु० रत्नकुमारी 1938	१)
42.	स्व० रामदास गौड़ का स्मृति अंक	1938	।)

43. उपयोगी नुसखे — सम्पादक : डा० गोरख प्रसाद तथा डा० सत्यप्रकाश 1940 — २॥)
44. मिट्टी के बरतन × — प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा 1940 — १)
45. विज्ञान का रजत जयंती ग्रंक 1938 — १)
46. वायुमंडल — डा० के० बी० माथुर — १॥)
47. लकड़ी पर पालिश — डा० गोरख प्रसाद तथा श्री रामयत्न भटनागर — १॥)
48. कलम पेवंद — शंकर राव जोशी — १॥)
49. जिल्दसाजी — श्री सत्यजीवन वर्मा — १॥)
50. त्रिफला — रमेश बेदी — २।)
51. तैरना — डा० गोरख प्रसाद — १)
52. अंजीर — डा० रामेश वेदी — ॥)
53. सरल विज्ञान सागर भाग 1 — डा० गोरख प्रसाद — ६)
54. वायुमण्डल की सूक्ष्महवायें — डा० सन्तप्रसाद टंडन — ॥।)
55. खाद्य और स्वास्थ्य — ओंकार नाथ पर्ती — ॥।)
56. फोटोग्राफी — डा० गोरख प्रसाद — ४)
57. शिशुपालन — मुरलीधर बौड़ाई — ४)
58. मधुमक्खी पालन — दयाराम जुगडान — ३)
59. फसल के शत्रु — शंकर राव जोशी — ३॥)
60. सांपों की दुनिया — रमेश बेदी — ४)
61. पोर्सलीन उद्योग — प्रो० हीरेन्द्रनाथ बोस — ॥।)
62. राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएं — २)
63. गर्भस्थ शिशु की कहानी — प्रो० नरेन्द्र — २॥)
64. भारतीय कृषि का विकास — डा० शिवगोपाल मिश्र 1960 — ६)
65. डा० गोरखप्रसाद स्मृति अंक — 1961
66. रेल इंजन परिचय तथा संचालन — ओंकारनाथ शर्मा 1957 — ६)

---

* अप्राप्य

वैज्ञानिक शिक्षण का आरम्भ

(विज्ञान १९५६ शिलन्यास अंक से साभार)

देश में 1874-75 में अनेक साहित्यिक और वैज्ञानिक समितियाँ विद्यमान थीं—यथा साइंटिफिक सोसायटी, अलीगढ़, रूहेलखंड लिटररी सोसायटी (बरेली), ब्रिटिश इंडियन एशोशियेशन, मुरादाबाद और सर सैयद अहमद की गाजीपुर की साइंटिफिक सोसायटी।

सर्वप्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय में 1871-75 ई० में तर्कशास्त्र के साथ मनोविज्ञान के विकल्प रूप में रसायन (केमिस्ट्री आफ मेटैलाइड्स) के अध्ययन की व्यवस्था की। 1878 ई० में गणित के द्वितीय प्रश्न-पत्र के विकल्प के रूप में वनस्पति विज्ञान स्वीकृत हुआ। फिर पंजाब, मद्रास, बम्बई विश्वविद्यालयों ने गणित के एक अंगस्वरूप आरम्भिक विज्ञान चालू किया। 1898 ई० में मद्रास में उच्च माध्यमिक परीक्षा की स्थापना हुई, बम्बई में युनिवर्सिटी स्कूल फाइनल परीक्षा बनी और पश्चिमोत्तर (उत्तर प्रदेश) और अवध में प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा स्कूल फाइनल परीक्षा की स्थापना हुई। वैकल्पिक विषयों का समावेश भी इसी समय हुआ। विविधता के फलस्वरूप स्कूल फाइनल परीक्षा बहुत लोकप्रिय हुई।

इंगलैंड में भी पाठ्यक्रम का सुधार 1851 के पश्चात् हुआ। विदेशों में परिवर्तनों का प्रभाव उत्तर प्रदेश की शिक्षा नीतियों पर भी पड़ा। कारण कि प्रशासक और नीति निर्धारक विदेशी थे। 1882-85 के भारतीय शिक्षा आयोग और 1902 के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग दोनों की ही सिफारिशें ऐसे ही झुकावों की अनुवर्तिनी थीं। प्रयाग विश्वविद्यालय ने, जिस पर माध्यमिक शिक्षा के निर्देशन और सुधार का भार था, ऊपर की सिफारिशों के पालन के लिये निम्नलिखित कार्य किये :

(1) 1894 में स्कूल फाइनल परीक्षा स्थापित की

(2) 1892 में इन्टरमीडिएट परीक्षा (कला) दो विभागों (क) और (ख) में खंडित हुई।

(3) 1890 ई० में इन्टर परीक्षा स्तर पर भौतिकी का अध्ययन संचालित हुआ।

(4) पृथक् विज्ञान विभाग स्थापित हुआ।

(5) भौतिकी (1898) के स्थान पर भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान करने के लिये संशोधन हुआ।

(6) दिसम्बर 1894 में गणित, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के साथ बी-एस० सी० उपाधि की स्थापना हुई। कला में (ख) वर्ग भी रहने दिया गया।

(7) महाविद्यालयों में विज्ञान के शिक्षण की स्वीकृति देने के लिये निश्चित नियम निर्धारित किये गये।

(8) इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने इंटर परीक्षा स्तर पर वाणिज्य प्रमाण पत्र परीक्षा संचालित की (1904-5)।

(9) 'ख' वर्ग से, जिसमें गणित, भौतिक और रसायन विज्ञान या, प्राचीन भाषाएं निकाल दी गईं।

संस्थायें, जिनके हम ऋणी हैं

राष्ट्रभाषा परिषद् (बिहार), नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), हिन्दुस्तानी एकेडमी (प्रयाग), विज्ञान परिषद् (प्रयाग), हिन्दी समिति (लखनऊ), विविध हिन्दी ग्रन्थ अकादमियाँ (बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा हरियाणा) आदि प्रमुख संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत प्रकाशनों एवं संस्थानों ने हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य सृजन में जो योग दिया है वह श्लाघनीय है। वैज्ञानिक जगत् एवं हिन्दी प्रेमी अत्यन्त कृतज्ञ हैं और ऋणी भी। इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। विज्ञान परिषद् का विवरण छोड़ दिया गया है।

हिन्दी समिति

सन् 1947 में उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी में उच्च कोटि के ग्रन्थों के प्रणयन के लिए लेखकों एवं प्रकाशकों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रकाशित ग्रन्थों पर पुरस्कार देने की योजना बनायी और एक समिति का भी गठन किया।

1956 में उक्त पुरस्कार समिति ने पुस्तकों के प्रकाशन का जिम्मा स्वयं लिया और उसका नाम बदल कर 'हिन्दी समिति' कर दिया गया। 1961 में समिति का पुनर्गठन किया गया और विश्वविद्यालीय स्तर पर पुस्तकों के प्रकाशन (मौलिक एवं अनूदित) का कार्य प्रारम्भ किया गया।

समिति द्वारा प्रकाशित मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थों की कुल संख्या 237 है।

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

वैज्ञानिक अनुसंधानों की जानकारी जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए आज से लगभग 8 वर्ष पहले भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र तथा टाटा आधारभूत संस्थान से सम्बद्ध वैज्ञानिकों के प्रयास से 'हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई।

साथ ही परिषद् ने 'वैज्ञानिक' नामक त्रैमासिक विज्ञान मासिक का प्रकाशन आरंभ किया। कुछ मौतिक पुस्तकें भी प्रकाशित कीं और प्रति वर्ष अखिल भारतीय स्तर पर परिषद् द्वारा हिन्दी विज्ञान लेख प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है जिसमें लगभग 600-700 रुपये के पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं।

हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी कक्ष)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी की यह संस्था विश्वविद्यालीय स्तर की हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशनार्थ अगस्त 1963 में स्थापित की गई। इसके डाइरेक्टर डॉ० नन्दलाल सिंह हैं। इनके निर्देशन में भौतिकी विषय पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जनवरी 74 से एक षट्मासिक पत्र 'भौतिकी' का भी प्रकाशन इस समिति ने आरंभ किया है।

नागरी प्रचारणी सभा

हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार का व्रत लेने वाली यह प्राचीनतम संस्था है जिसके संस्थापकों में बाबू श्याम सुन्दर दास तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे साहित्य मनीषी थे। इनकी ही सूझबूझ से इस संस्था ने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने का कार्य अपने हाथों लिया और विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन किया।

सभा ने 1960 से 'हिन्दी विश्वकोश' के सम्पादन-प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया जो 10 खण्डों में पूरा हो चुका है।

कृषि संचार केन्द्र

गो० व० पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पंतनगर की इस संस्था से खेती सम्बन्धी जानकारी पहुंचाने के लिए 'किसान-भारती' नामक मासिक पत्रिका सन् 1970 से प्रकाशित हो रही है।

कृषि संचार केन्द्र ने विश्वविद्यालीय स्तर की 31 पाठ्य पुस्तकें तथा कुछ सामान्य कृषि संबन्धी पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

भारतीय भाषा यूनिट

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली की भारतीय भाषा एकक द्वारा राष्ट्रभाषा हिंदी में विगत 25 वर्षों से रोचक विज्ञान मासिक 'विज्ञान प्रगति' का प्रकाशन हो रहा है। रोचक विज्ञान की कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित की गई हैं।

'वेल्थ ऑफ इन्डिया' का 'भारत की सम्पदा' नाम से हिन्दी अनुवाद 10 खन्डों और 2 पूरक खन्डों में प्रकाशित होना है जिसमें से प्रथम 4 खन्ड तथा दोनों पूरक खंड प्रकाशित हो चुके हैं।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा एवं समाज कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार ने पुस्तकों के मौलिक लेखन एवं अनुवाद में आयी शब्दों की परेशानियों

को हल करने के लिए केन्द्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना की है। ग्रन्थ प्रकाशन के अतिरिक्त निदेशालय ने पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण कराया है जिससे पुस्तकों के अनुवाद एवं लेखन में उक्त शब्दावली का सर्वमान्य रूप में प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न हिंदी ग्रंथ अकादमियाँ निदेशालय के अन्तर्गत कार्य कर रही हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

नई दिल्ली स्थित उक्त परिषद से 1955 से कृषि संबन्धी मासिक पत्र 'खेती' प्रकाशित हो रहा है। अभी कुछ दिनों से एक और पत्र 'कृषि चयनिका' का भी प्रकाशन परिषद् ने आरम्भ किया है। परिषद् द्वारा हिंदी में कृषि सम्बन्धी अनेक मौलिक तथा अनूदित ग्रन्थ छपे हैं।

हिन्दी ग्रन्थ अकादमियाँ

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए 1968 में एक योजना बनायी थी। इसी योजना के अन्तर्गत 1970 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग और केन्द्रीय हिंदी निदेशालय की देखरेख में पाँच हिंदी प्रदेशों—हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार में विश्वविद्यालीय स्तरीय हिंदी पुस्तकें एवं मानक ग्रन्थ तैयार करने के लिए हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी। इस योजना के अधीन अब तक विज्ञान तथ मानविकी विषयों की हिंदी में लगभग 800 पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

ग्रन्थ अकादमियाँ नियमित रूप से कुछ पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करती हैं। विवरण निम्न है :

1- वानस्पतिकी	अर्ध वार्षिक	उ० प्र० हि० ग्रन्थ अकादमी
2- इंजीनियरी	त्रैमासिक	,,
3- भौतिकी	अर्ध वार्षिक	उ० प्र० हि० ग्रन्थ अकादमी के तत्वावधान में भौतिकी कक्ष वाराणसी से
4- आयुर्विज्ञान पत्रिका	अर्धवार्षिक	बिहार हि० ग्र० अ०
5- रसायनी	अर्द्धवार्षिक	हरियाणा हि० ग्र० अ०
6- रसायन समीक्षा	त्रैमासिक	राजस्थान हि० ग्र० अ०

हिन्दी में वैज्ञानिक पत्र पत्रिकायें

अनुसन्धान पत्रिका :	विज्ञान परिषद इलाहाबाद (1957)
आविष्कार	दिल्ली
आपका स्वास्थ्य	वाराणसी
किसान भारती	पन्तनगर (1969)
कृषि और पशुपालन	लखनऊ (1948)
कृषि चयनिका	नई दिल्ली
खाद पत्रिका	दिल्ली
खाद्य विज्ञान	मैसूर
खेती	नई दिल्ली (1954)
चिकित्सा सेवा	दिल्ली
जर्नल आफ इंजीनियर्स	दिल्ली
पशुपालन	दिल्ली (1968)
भौतिकी	वाराणसी
रसायनी	कुरुक्षेत्र
रसायन समीक्षा	जयपुर
लोक विज्ञान	उदयपुर
वानस्पतिकी	वाराणसी (1970)
विज्ञान	इलाहाबाद (1915)
विज्ञान प्रगति	दिल्ली (1951)
विज्ञान लोक	आगरा
विज्ञान जगत	इलाहाबाद (अब बन्द)
विज्ञान डाइजेस्ट	पन्तनगर (1975)
वैज्ञानिक (त्रैमासिक)	बम्बई (1968)
विज्ञान और उद्योग जगत	लखनऊ (1973)

⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙

वैज्ञानिक साहित्य खण्ड

निबन्ध

⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙⊙

हिन्दी के माध्यम से विज्ञान का शिक्षण

● डा० ब्रज मोहन, नन्द नगर, वाराणसी

मान लीजिए छत पर एक ईंट रक्खी हुई है और कोई पूछता है कि उस ईंट में कितनी सक्षमता है। तो प्रगट रूप से उस ईंट में कोई सक्षमता नहीं है। किन्तु यदि वह ईंट छत पर से गिरा दी जाय और किसी के सिर पर आ कर गिरे तो उसका सिर फूट जायगा।

सड़क पर एक पत्थर पड़ा हुआ है। कोई यह प्रश्न करता है कि उस पत्थर में कितनी सक्षमता है। आप पत्थर को उठा कर किसी के ऊपर फेंकिए। तुरन्त पता चल जायगा कि उसमें कितनी सक्षमता है।

अब एक भिन्न प्रकार का उदाहरण लीजिए। आपके घर में एक बन्दूक रक्खी हुई है जिसे आपने वर्षों से प्रयुक्त नहीं किया है। उस पर धूल जम गई होगी, सम्भव है जंग लग गई हो। यदि कोई पूछता है कि उक्त बन्दूक में क्या सक्षमता है तो आप उसका तात्कालिक प्रदर्शन नहीं कर सकेंगे। किन्तु आप प्रश्नकर्ता से यह कह सकते हैं कि "भाई, जरा ठहर जाओ। मैं इस बन्दूक को झाड़-पोंछ कर साफ कर लूं और इसकी जंग छुड़ा लूं तथा इसमें कारतूस भर दूं। तब मैं तुम्हें दिखा सकूंगा कि इसमें कितनी सक्षमता है।"

इसी ढंग के प्रश्न भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में किए जाते हैं : उनमें उच्च भाव प्रदर्शित करने की क्षमता है या नहीं ? उनमें वैज्ञानिक शब्दावली-निर्माण की क्षमता है या नहीं ? उनमें नए-नए विज्ञानेतर शब्द बनाने की क्षमता है या नहीं ?

वैज्ञानिक शब्दावली की समस्या तो बहुत कुछ हल हो चुकी है। केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में लाखों नए वैज्ञानिक शब्द बन चुके हैं। अधिकतर वैज्ञानिक विषयों में बी० एस-सी० के स्तर तक के, और कुछ विषयों में एम०एस-सी० के स्तर के सभी शब्द तैयार हो चुके हैं।

किसी भी भाषा की समृद्धि उसके शब्द-भंडार पर निर्भर होती है। भारतीय भाषाओं (उर्दू को छोड़ कर) की आकर भाषा संस्कृत है। जो भी नए शब्द बनाए जाते हैं, अधिकतर संस्कृत धातुओं से। इन धातुओं में हम उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर शब्द-निर्माण करते हैं।

एक बार एक यूनानी सज्जन मुझसे बात कर रहे थे। उन्होंने कहा, "क्या आप जानते हैं कि हमारी यूनानी भाषा में कितनी क्षमता है? हम एक-एक शब्द से चार-चार पाँच-पाँच, और कभी-कभी दस-दस शब्द निकाल सकते हैं। क्या आपकी संस्कृत में इतनी क्षमता है?"

मैंने उत्तर दिया, "हमारी संस्कृत में 20 उपसर्ग हैं और 80 प्रत्यय। यदि किसी शब्द में एक उपसर्ग और एक प्रत्यय लगाया जाय तो 1600 नए शब्द बन जायेंगे और यदि 2 उपसर्ग और 2 प्रत्यय लगाए जायें तो हमारे नए शब्दों की संख्या

$$20 \times 20 \times 80 \times 80$$

हो जायगी।

अभी तो हमने केवल 2 उपसर्गों और 2 प्रत्ययों से ही काम लिया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से तो हम एक शब्द से इतने शब्द बना सकते हैं :

$$20^{20} \times 80^{80}$$

इतना सुनते ही उक्त सज्जन को काठ मार गया।

यह तो रही कोरी सैद्धान्तिक बात। हम यह मानते हैं कि व्यावहारिक रूप से तो हम इतने लम्बे-लम्बे शब्द नहीं बना सकते। किन्तु फिर भी प्रत्येक संस्कृत धातु से इतने शब्द तो आसानी से बन सकते हैं :

(क) एक उपसर्ग लगाकर : 20

(ख) एक प्रत्यय लगाकर : 80

(ग) एक उपसर्ग और एक प्रत्यय लगाकर 1600

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक संस्कृत धातु से 1700 शब्द तो सरलता से बन सकते हैं। हमारे पास तो संस्कृत-रूपी ऐसी कामधेनु है जिसका कोष कभी खाली हो ही नहीं पाएगा। हम यहाँ दो-एक छोटे-छोटे उदाहरण देते हैं। हमने 'शासन' शब्द में उपसर्ग लगाकर तीन नए शब्द बनाए हैं :

प्रशासन	Administration
अधिशासन	Execution
अनुशासन	Discipline

हमारा एक पुराना शब्द 'पत्र' है जिसका मौलिक अर्थ था 'पत्ता।' प्रयोग से इस का अर्थ कागज और चिट्ठी भी हो गया है। इसी शब्द में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर हमने दो नए शब्द बनाये हैं :

प्रपत्र	Form
पत्रक	Card

यदि आवश्यकता हो तो 'प्र' उपसर्ग और 'क' प्रत्यय एक साथ लगाकर हम एक नया शब्द 'प्रपत्रक' भी बना सकते हैं।

ऊपर हमने 'क' प्रत्यय लगाया है जो 'छोटेपन' अर्थात् 'लघुत्व' का द्योतक है। किन्तु 'क' प्रत्यय से एक और अर्थ भी सूचित होता है : 'करने वाला' जैसे

रजक=धोबी

रंजक=रंगने वाला

पाचक=पचाने वाला

यदि हमें cooler के लिए नया शब्द बनाने की आवश्यकता पड़ी तो हम संस्कृत की 'शीत' धातु लेकर, डा० रघुबीर की पद्धति के अनुसार नया शब्द 'शीतक' बना लेंगे।

इसी प्रकार, डा० रघुबीर ने refrigerator के लिए 'प्रशीतक' शब्द बनाया है जो स्वीकार्य है।

संस्कृत में तो शब्द बनाने की क्षमता है जितनी संसार की कदाचित् किसी भी अन्य भाषा में नहीं है। संस्कृत देश की आदि भाषाओं में से है और देश की अधिकतर भाषाओं से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो शब्द संस्कृत के आधार पर बनेंगे, वे देश की प्रायः सभी भाषाओं में प्रचलित हो जायेंगे।

अतएव, यदि कोई कहे कि भारतीय भाषाएँ उच्च शिक्षा का माध्यम इसलिए नहीं बन सकतीं कि उनमें उच्च साहित्य-सृजन की क्षमता नहीं है, तो यह बिल्कुल लचर दलील है।

अगले प्रश्न ये हैं :

(1) शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही को क्यों बनाया जाय ?

(2) यदि बनाया भी जाय तो इसकी जल्दी क्या है ?

हम इन प्रश्नों का क्रमानुसार उत्तर देते हैं।

प्रश्न यह है कि देश में हिन्दी के अतिरिक्त दर्जन भर भाषाएं और भी तो हैं। फिर हिन्दी ही को शिक्षा का माध्यम क्यों बनाया जाय ?

30

हिन्दी बोलने वालों की संख्या कितनी है, वह बताना तो कठिन है, क्योंकि हिन्दी की कई उप भाषाएँ हैं : बुन्देलखंडी, भोजपुरी, पूर्वी आदि। सन् 1971 की गणना में इन उप-भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार कर ली गई है। इस प्रकार हिन्दी को मातृभाषा मानने वालों की संख्या जान-बूझ कर घटा दी गई है। तिस पर भी निर्विवाद सत्य है कि अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी भाषियों की संख्या सबसे अधिक है।

इसके अतिरिक्त देश की कई भाषाएँ ऐसी हैं जिनको मातृभाषा के रूप में बोलने वालों में से अधिकतर हिन्दी समझ लेते हैं, जैसे बंगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू। इनमें कुछ ऐसे अवश्य होंगे जो हिन्दी नहीं समझते। इसके विपरीत कुछ दक्षिण भाषा-भाषी ऐसे भी हैं जो हिन्दी समझ लेते हैं।

स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि देश के प्राय: 70 प्रतिशत निवासी हिन्दी समझ लेते हैं। इतना ही नहीं; पर्यटक हमें बताते हैं कि वे कश्मीर से कन्याकुमारी तक, और आसाम से गुजरात तक हिन्दी से काम चला लेते हैं। केवल दूर दक्षिण में कहीं-कहीं पर कठिनाई पड़ती है। ऐसी स्थिति में हिन्दी के अतिरिक्त कौन सी भाषा होगी जो शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए उपयुक्त हो ?

जिन लोगों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वे बहुधा इस प्रस्ताव का विरोध करते हैं और कहते हैं कि हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने से अन्य प्रान्तों के लोग उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में नहीं आ सकेंगे, हमारे विश्वविद्यालयों का क्षेत्र संकुचित हो जायगा। ऐसे व्यक्तियों से मैं दो-एक प्रश्न करना चाहता हूँ। आज मद्रास का एक विद्यार्थी आठ वर्ष स्कूल में अंग्रेजी पढ़कर इस योग्य बनता है कि कॉलिज की शिक्षा प्राप्त कर सके। अंग्रेजी का जितना ज्ञान उस आठ वर्ष में होता है, हिन्दी का उतना ज्ञान तीन-चार वर्ष में हो सकता है। यदि वह उच्च शिक्षा के हेतु अंग्रेजी पर आठ वर्ष व्यय कर सकता है, तो क्या भविष्य में, जब शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जायगी, तो इन आठ वर्ष के बदले वह हिन्दी पर इससे आधा समय भी व्यतीत करना न चाहेगा ? क्या एक स्वदेशी भाषा से आपको इतना भी प्रेम नहीं है जितना विदेशी भाषा से है ? अंग्रेजी के भरोसे मत बैठे रहिये। एक दिन आपको भाई चारा हिन्दी से ही निभाना पड़ेगा, चाहे आज करें या पचास वर्ष बाद।

आज हमारे सम्मुख यह प्रस्ताव आता है कि "कॉलिजों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना चाहिये" तो लोग कहते हैं कि आखिर ऐसी जल्दी क्या है ?

सच पूछिए तो यह प्रस्ताव वर्षों पहले स्वीकृत हो जाना चाहिये था। केवल स्वीकृत ही नहीं, कार्य रूप में परिणत हो जाना चाहिये था।

जितने भी पारिभाषिक विषय हैं, विशेषकर वैज्ञानिक-गणित, भौतिकी, रसायन,

भौतिकी···हम आज भी अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही अपने कॉलिजों में पढ़ते हैं। इसका कुफल यह है कि आजकल विद्यार्थी एक वाक्य भी विना अंग्रेजी के शब्द मिलाए नहीं बोल सकता। किसी आधुनिक विद्यार्थी या अध्यापक के लिए शुद्ध अंग्रेजी में व्याख्यान देना सरल है, किसी शुद्ध भारतीय भाषा में भाषण देना कठिन है। इससे बढ़कर हमारी दासता का और क्या प्रमाण हो सकता है? कोई दिन ऐसा भी आएगा या नहीं जब हम अपनी ही भाषा में उच्च से उच्च शिक्षा देंगे?

हमारे विद्यार्थियों का आधा समय अंग्रेजी पढ़ने में बीतता है। यदि शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाय तो देश के युवकों की कितनी शक्ति बच रहेगी जो ज्ञान वर्धन के काम आएगी। आज इस देश में आठ-दस एफ० आर० एस० हो गये हैं तो हम फूले नहीं समाते। इंग्लैंड में एफ० आर० एस० गली-गली लुढ़कते हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि वहाँ उच्च से उच्च शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा अंग्रेजी है। अपनी मातृ-भाषा में शिक्षा दीजिये तो जहाँ आज आप एक सी० वी० रमन पर गर्व करते हैं, वहाँ दर्जनों सी० वी० रमन दिखाई देंगे। जहाँ के विद्यार्थी आज विदेश में शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं, वहाँ विदेशों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आया करेंगे। जहाँ एक डा० राधा कृष्णन इंग्लैंड के एक विश्वविद्यालय के अध्यापक रहे हैं, वहाँ किसी दिन राधा कृष्णनों की बाढ़ आ जायगी।

एक समय था जब हमारे तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालयों में अमेरिका तक के अध्यापक शिक्षा के लिए आया करते थे और एक समय आज का है जब हमारे देश के अध्यापक इंग्लैंड और अमेरिका शिक्षा लाभ के लिए भेजे जाते हैं। यदि देश को शिक्षा के उसी उच्च शिखर पर पहुँचाना है जिस पर पहले था, यदि दर्शन-शास्त्र का स्तर उतना ही ऊँचा उठाना है जितना वेदों के समय में था, यदि भारत में फिर से स्वर्ण-युग की स्थापना करनी है तो हिन्दी को अपनाइये, निम्न से निम्न और उच्च से उच्च शिक्षा का माध्यम उसी को बनाइये।

हिन्दी के कृषि-कोश

● डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सर्जन के समय विभिन्न विषयों के कोशों की ओर दृष्टि जानी स्वाभाविक है। कृषि हमारे देश की अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। आर्यों के आगमन से आज तक कृषि में जो भी परिवर्तन-परिवर्धन हुये हैं वे लोक मानस में जैसे के तैसे अंकित हैं। देश की विभिन्न बोलियों का लोक साहित्य इसका प्रमाण है। हिन्दी प्रदेशों की विभिन्न बोलियों में कृषि सम्बन्धी जितनी उक्तियाँ हैं अथवा कृषि सम्बन्धी शब्दावली है उसकी ओर हमारे विद्वानों का ध्यान गया है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी कृति 'पृथिवीपुत्र' में लोक प्रचलित शब्दावली के यथार्थ मूल्यांकन पर बल दिया है। उनसे प्रेरित होकर अम्बादत्त सुमन ने कृषक शब्दावली पर शोधकार्य किया। विहार के ग्राम्य जीवन पर डॉ० ग्रियर्सन ने जो शोध प्रस्तुत किया उससे प्रोत्साहित होकर बिहार राष्ट्र भाषा परिषद ने 'कृषक शब्दावली' का संग्रह कराया। वस्तुतः यह भोजपुर तथा विहार की जन बोलियों में प्रचलित शब्दों का कोश है। सुमन जी ने ब्रजभाषा (अलीगढ़) में प्रचलित शब्दों का मूल्यांकन किया है। अवधी क्षेत्र के शब्दों का भी संकलन हुआ है (अवधी कोश)। श्री विद्या निवास मिश्र ने बनारस के आसपास प्रचलित शब्दों का संकलन एवं प्रयोग किया है। मधु-संचय करके उसे खड़ी बोली में प्रस्तुत करके उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि जनजीवन में व्याप्त शब्दावली कितनी सार्थक, सशक्त एवं उपयोगी है।

भारत सरकार ने पारिभाषिक शब्दावली तैयार कराने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसमें कृषि शब्दावली के अवलोकन से लगता है कि उपलब्ध कृषि कोशों से बिल्कुल सहायता नहीं ली गई—फलस्वरूप काफी महत्वपूर्ण शब्दावली से आज का प्रबुद्ध समाज वंचित रह गया है। मेरा विश्वास है कि इस शब्दावली का सांगोपांग अध्ययन एवं विश्लेषण होना चाहिए। उसके कुछ शब्द बड़े ही अर्थपूर्ण हैं। यदि इनका प्रयोग किया जाय तो कृषि-साहित्य की श्रीवृद्धि हो सकेगी। यदि विभिन्न बोलियों में प्राप्त शाब्दावली का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो अत्यन्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

आगे कृषि विज्ञान के विविध पक्षों से सम्बन्धित शब्दावली दी जा रही है

मिट्टियों के रंग

लील : श्वेत + कृष्ण   कविशा : भूरा (काला + पीला)

बैंगनी : हल्का लाल

पिंडोर : पीली मिट्टी

पड़ुआ : लाल मिट्टी

सुरमई : लाल

कैरा : सर्वांग श्वेत

कबरा (<कर्वुर :) चितकबरा तुलनार्थं कबरा, काबर

धूसर : मटमैला

गैरू (गिरि : गैर) : गेरू के रंग की

करइल : करैंगा (तुलनार्थं करायल)

कृष्णमृत्तिका : काली मिट्टी

इन रंगों का उपयोग अंग्रेजी के grey, brown, red, laterite, chestnut, chernozem, mottled, gley आदि विविध मिट्टियों के लिये उपयुक्त शब्दों का चुनाव करते समय किया जा सकता है।

मिट्टियों के प्रकार

ऊपर : रेह, पटपर : नोनी

अनूषर : जिसमें ऊसर न हो

खादर (<खाता=तालाब) : नीची जमीन

दीयर, दियार : कछार : तरी

टाँड : कंकरीली, उपरहार

राँकड : कंकरीली

चर : चौर। चारागाह : चहल=दलदल (<अनूप)

मागड : नीची जमीन

बांगर : नदी प्रभाव से दूर, पानी पड़ने पर नरम

भूड : रेत : धूसर

जीगर : उर्वर तुलनार्थं टनक (अवधी)

झूस : अनुर्वर, ठस, सीन (अवधी)

पड़ती : परती, अफार

पही : दो तीन वर्ष से परती

खिल, खील : वृक्षहीन पडती

बंजर : पड़ती

अंग्रेजी में Fallow, Dryland, Saline, Acid Soils आदि के लिये उपयुक्त शब्दों की खोज उपर्युक्त में से की जानी चाहिए।

भूसंरचना, गठन सम्बन्धी शब्द

वलसुंदरी : बालू मिली मिट्टी

मटियार : दुमट

चीप : Clod, मिट्टी का बड़ा ढ़ेला

फरियार : जिसमें पानी अधिक देर न रुके

सिगई, सींगो : हल्के वयन की

खसुआ : शीघ्रता से जुतने वाली

मरवा (तुलनार्थ मार या मालवा)

चोपना : चिपकने वाली

शस्य सम्बन्धी शब्द

चौमस : पलिहर

स्यारी : जाड़े की फसल

क्यारी :

आगासी खेती : बारानी खेती Dry farming

निपनियाँ

पनदहनी : पानी डालकर खेत तैयार करना

दुपतिया : Dicot

तेलहन : Oilseeds

बन : कपास

छोआ : शीरा

बनौरा : बिनौली, कपास के बीज

बेझड़ : चना+जौ मिश्रित अन्न

गोजई : यव, जौ

लमेरा : अपने आप उग आने वाली फसल

दौजी : ईख, बाजरे तथा तम्बाकू में अधिवृद्धि Tillers

अंगोला : ईख की ऊपरी पत्तियों का रोग

पेडी : Ratoon

जुताई सम्बन्धी शब्द

दोहरावन : दुबारा जुताई

तेहरावन : तिबारा जुताई

पाही, पही : किसान जिसको मारूसी हक न हो

सीरदार : भूमिधर किसान

चास : जोत, बाह

ओठ उठाना : खेत जुतने योग्य होना

पशुओं से सम्बन्धित शब्द

ओसर : वयस्क बाछी कलोर

अंडू : जो बधिया न हो

बहिला : गर्भ न धारण करने वाली

बधिया : जिसकी उर्वर शक्ति नष्ट कर दी गई हो

गोरू : पशु (भैंस को छोड़कर > गोपशु)

कटरा : जवान पाड़ा

रेवड : झुंड

बरसायन : प्रतिवर्ष गर्भ धारण करने वाली

उपर्युक्त शब्दों में से अनेक शब्दों को किसी बोली की मौलिक शब्दावली स्वीकृत किया गया है अथवा ऐसे अर्थ दिये गये हैं जो अन्य बोलियों में कुछ भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि :

1. जिन्हें संग्रहकर्ता मौलिक शब्द कहता है, वे वास्तव में सार्वजनीन भी हैं—व्रज, अवध, भोजपुर, मिथिला सर्वत्र बोला जाता है जिससे यह सिद्ध है कि इन सभी प्रदेशों में कृषि का विकास समान रूप से हुआ।

2. संग्रहीत शब्दों का विश्लेषण करके आवश्यकतानुसार चयन एवं उपयोग। इससे न केवल निरर्थक शब्दों के गढ़ने से बचा जा सकेगा वरन् सशक्त शब्दों के उपलब्ध हो जाने से सर्वग्राह्य शब्दावली प्रस्तुत की जा सकेगी।

3. प्रचीन कृषि पद्धति में युगान्तर हुआ है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं जिनके लिये न तो शब्द हैं, न ही उनके समानार्थी उपयुक्त शब्द दृष्टिगत होते हैं। उदाहरणार्थ कार्बनिक पदार्थ (Organic matter), बौनी या ठिगनी जाति (Dwarf varieties), संकर (Hybrid), नस्ल (Breed), हरितक्रांति (Green revolution), बहु फसली खेती (Relay cropping) इत्यादि।

प्राचीन भारत के औषधीय पादप

• प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव
सी० एम० पी० डिग्री कालेज
इलाहाबाद

मानव सभ्यता के आदि काल से ही वनस्पतियाँ के जीवन का अभिन्न अंग रही हैं। सृष्टि के प्रारंभ से ही पेड़-पौधे सदा से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व निभाते चले आ रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ औषधि के रूप में प्रयुक्त होने वाले पौधों की संख्या बढ़ती ही गई और तब उनके वर्गीकरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। शुरू में उनका वर्गीकरण उपयोगिता के आधार पर किया गया।

साधारणतया हमारे बीच ऐसी भ्रांति फैली हुई हैं कि वेदों में केवल धार्मिक, आध्यात्मिक उपदेश एवं प्रार्थनाएँ ही पाई जाती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि वेदों में बहुत सा वैज्ञानिक साहित्य भी भरा हुआ है। यूँ वेद न तो कालक्रम से रचित इतिहास हैं न विज्ञान-विषयक पुस्तकें हैं फिर भी विज्ञान से संबंधित सामग्री इनमें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। चिकित्सा विज्ञान, भौतिक विज्ञान; रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, गणित शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र एवं तकनीकी ज्ञान आदि सभी वैज्ञानिक विधाओं का उल्लेख वेदों में पाया जाता है।

यहाँ हम प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित पौधों एवं उनके औषधीय गुणों की चर्चा करेंगे।

वेदों से लगभग 120 पौधों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इनमें से सबसे प्राचीन ऋग्वेद में छिटपुट पौधों और उनके औषधीय गुणों का वर्णन मिलता है किन्तु उन्हें किसी वर्ग विशेष में नहीं रखा गया है।

अथर्ववेद में कुछ ऐसी ऋचाएं हैं जो पौधों और उनके पारिस्थितिक वर्गीकरण पर प्रकाश डालती हैं। इन ऋचाओं के रचनाकारों ने पौधों को 1. जल में उगने वाले (Hydrophytes), 2. पृथ्वी पर उगने वाले (Terrestrial), और 3. जल और स्थल दोनों स्थानों पर पाये जाने वाले (Amphibious) तीन वर्गों में विभाजित किया।

"पंचराज्यानि वीरुधां सोम श्रेष्ठानि ब्रूमः"

दर्भो भंगों यवो सहस्तनमुञ्चत्वंहसः"

(11/3/612, अथर्व०)

"अवकोल्वा उद्कात्मान् ओषधयः

(8/4/7/17.)

"या रोहन्त्यांगिरसीः पर्वतेषु समेषुच"

(8/4/47/17)

अथर्ववेद में सर के गंजेपन या बाल गिर जाने के रोग का उपचार भी उल्लिखित है। इस औषधि को जमदग्नि नामक ऋषि ने बनाया और उसका प्रयोग उन्होंने अपनी पुत्री के उपचार के लिए किया। जमदग्नि ने औषधि का निर्माण नितत्नी या छोटी मकोय (Solanum nigrum) पौधे से किया था।

"यां जगदग्निरखनद दुहित्रे केशवर्द्धिनीम्"

(6/13/137/1 अथर्व.)

"यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।

इदं तं विश्व भेषज्याभिषिञ्चामि वीरुधा ।।"

(6/11/136/3 अथर्व.)

इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से पौधों का विवरण मिलता है जिनसे औषधियाँ बनाई जाती थीं।

उदाहरणार्थ अजश्रृंगी (Odina pinnata), अरटु (Colasanthus), अश्वत्थ या पीपल (Ficus religiosa), उदुम्बर या गूलर (Ficus glomerata), कुष्ट (Costus speciosus), खदिर या कत्था (Acacia catechue) इत्यादि। आज भी वैद्य इन औषधियों का प्रयोग करते हैं।

गठिया (Gout) का उपचार पीपल या पिप्पली (Ficus religiosa) से करने का उल्लेख अथर्ववेद में उपलब्ध है :—

"पिप्पली · · · वातीकृतस्य भेषजीमथोक्षिप्तस्य भेषजीम्"

(6/11/109, अथर्व.)

ऋतावरी का उपयोग स्वरतंत्री के दोषों को दूर करके स्वर को मधुर बनाने में किया जाता था।

'ऋतुजात ऋतावरी मधुला मधु मे कर"

(5/4/15/11, अथर्व.)

लटजीरा या अपामार्ग (Acharyrenthus aspera) भूख और प्यास का दमन करने में उपयोगी था। आज भी भारत की ग्रामीण जनता इसका उपयोग करती है।

सहदेवी का प्रयोग गायों के दुग्ध को बढ़ाने और गायों के सामान्य रोगों के उपचार में करते थे।

इनके अतिरिक्त पौधों में विष भी तैयार किए जाते थे (1/24'194 अथर्व.)। पौधों से नपुसंकता को उत्पन्न करने वाली दवा भी बनाई जाती थी।

यजुर्वेद में इस बात का वर्णन मिलता है कि सोम नामक पौधे से सोमरस (एक प्रकार की शराब) बनाने में भारतीय ऋषि निपुण थे। ऋग्वेद में सोम का लगभग 1000 बार उल्लेख हुआ है। सोम को पौधों का राजा कहा गया है। इसमें औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में प्राप्य था (ऋग्वेद 1/84; 8/48/64; 9/85/109; 10/25)।

ऐसी धारणा थी कि सोम में मनुष्यों को दीर्घजीवी बनाने की क्षमता है, यह देवताओं का प्रिय था और बीमार मनुष्यों के उपचार की औषधि थी। इसके उपोग से अंधे को दृष्टि मिलती है और लंगड़े को अपने पैरों से चलने की शक्ति प्राप्त होती है। इससे अपच दूर होता है, यह हृदय को उत्तेजित करता है और शक्तिदायक है। स्वर और वाणी को तीव्र करने में यह सहायक माना जाता था और मानसिक तनावों को यह दूर करता है तथा चित्त को स्फूर्ति प्रदान करता है।

"पंचराज्यानि वीरुधां सोम श्रेष्ठानि ब्रूमः"

(11/3/6/12; अथर्व.)

वीरेश्वर गुप्त (1952) ने सोम के पौधे का नाम एफिड्रा (Ephedra) बताया है। किंतु इधर हुए अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि सोम 'फ्लाइ अगरिक' (Amarita muscaria) नाम से जाना जाने वाला एक कवक (Fungus) है। यह मत एक अमरीकी शोधकर्ता आर० गॉर्डन वासन का है। वासन ने अपनी पुस्तक 'सोम, दि डिवाइन मशरूम ऑफ इम्मार्टेलिटी' में इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋग्वेद में वर्णित सोम आजकल पाया जाने वाला कवक अमानिता मस्कारिया ही है। किंतु अभी इस दिशा में और अनुसंधान की आवश्यकता है।

वेदों के बाद बहुत से प्राचीन भारतीय विद्वानों ने पौधों का वर्णन किया है। इसमें आत्रेय, भेला, अग्निवेश्य, कश्यप, जातुकर्ण, पराशर हरित वैतर्ण, और पोषकलावत इत्यादि

हैं। इनकी खोज का श्रेय हर प्रसाद शास्त्री (1901) को है जिन्होंने नेपाल के राज्य दरबार की लाइब्रेरी से इसे उपलब्ध किया।

ऋषि पराशर द्वारा रचित 'आयुर्वेद और वृक्षायुर्वेद' ग्रंथों में भी पौधों से संबंधित ज्ञान संचित है। धन्वन्तरि ने अथर्ववेद के आधार पर 'आयुर्वेद' की रचना की। तत्पश्चात् आत्रेय, भरद्वाज, अग्निवेश्य आदि ने भी इस विषय के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। वाराहमिहिर ने भी चौथी या छठी शताब्दी में अपने ग्रंथ बृहत् संहिता में भी पौधों का उल्लेख किया है। वनस्तपति विज्ञान को सही रूप गुरु शुक्राचार्य द्वारा रचित 'शुक्रनीति' नामक ग्रंथ से प्राप्त हुआ। शुक्राचार्य ने भारत की वनस्पतियों का अध्ययन मुख्य रूप से उनकी उपयोगिता के आधार पर किया। उन्होंने पौधों के कृषि संबंधी, वन संबंधी और औषधि संबंधी गुणों का उल्लेख किया है। यहीं नहीं उनकी रचनाओं में उस समय के लोगों पर और उनके सामाजिक जीवन पर पौधों का क्या प्रभाव है, इसका भी उल्लेख किया गया है।

पौधों के औषधीय गुणों से सम्बन्धित भारत का प्राचीनतम ग्रंथ चरक संहिता है। चरक ने अपने ग्रंथ में इस बात की पुष्टि की है कि उन्होंने "अग्निवेश्य तंत्र" की भी सामग्री का अपने ग्रंथ में उपयोग किया है। यह पूरा ग्रंथ 6 भाग और 24 अध्यायों में विभक्त है।

संभवतः सुश्रुत का समय भी चरक के ही निकट का है या शायद सुश्रुत चरक से सौ वर्ष पश्चात् हुए थे। इन्होंने प्रसिद्ध "सुश्रुत संहिता" की रचना की है। इन्होंने शल्य-चिकित्सा पर विशेष बल दिया है। इन्होंने भी अपने ग्रंथ को 6 भागों में विभाजित किया है। इसमें लगभग सात सौ औषधियों के नाम हैं जो 37 गणों में विभक्त हैं। हर वर्ग (गण) के प्रथम पौधे के नाम पर वर्ग का नाम है। जैसे अर्कादि गण (मदार या अर्क=Calotropis procera), एलादिगण (यला=Elettaria cardamomum), इत्यादि। कुछ वर्ग हैं जैसे 'पंच-मूल' (लघु पंच मूल, महापंच-मूल इत्यादि)। पौधों द्वारा प्राप्त भोजन और पेय पदार्थ का वर्णन भी मिलता है। औषधीय पौधों की वृद्धि पर मिट्टी के प्रभाव पर भी थोड़ा साहित्य मिलता है।

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जाततानि विरेचन द्रव्याप्याददीत अग्न्याकाशमारुत गुण भूयिष्ठायां वमन द्रव्याणि उभय गुण भूयिष्ठायमुभयतो भागानि, आकाश गुण भूयिष्ठायां संशमनानि एवम् बलवत्तराणि भवन्ति ।। 6 ।। (सुश्रुत 1/36/6)

पी० रे (1956) के अनुसार सुश्रुत संहिता के चरक-संहिता से अच्छा होने का कारण यह है कि इस ग्रंथ का सम्पादन नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य नागार्जुन नामक महान वैज्ञानिक ने किया था जो महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। चरक और सुश्रुत ने पौधों का विभाजन चार वर्गों में किया :

1. **वनस्पति**—जो पुष्पित नहीं होते किन्तु फलते हैं ।
2. **वृक्ष**—जिनमें पुष्प और फल दोनों निकलते हैं ।
3. **वीरुध**—जो पृथ्वी पर रेंगते हैं या कुंडलीकार धागे जैसे होते हैं ।
4. **औषधीय**—एकवर्षीय एवं छोटे हरे पौधे ।

"तासां स्थावराश्चतुर्विधाः—वनस्पतयो, वृक्षा, वीरुध, ओषधय इति, तासु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः, पुष्प फलवन्ती वृक्षाः,प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधाः, फलया कनिष्ठा इति ।।"

(सुश्रुत, 1/1/29)

औषधियों में प्रयुक्त पौधों के भागों के विषय में यह लिखा है कि औषधीय पौधों की छाल, पत्तियाँ, पुष्प, फल और मूल, भूमिगत तना (rhizome), स्राव, अर्क, तेल और राख इत्यादि सभी उपयोगी हैं ।

"तत्र स्थावरेभ्यस्तवक् पत्रपुष्पफल
मूल कन्द नियसिवरसादयः प्रयोजनवन्तः"

(सुश्रुत, 1/1/31)

चरक एवं सुश्रुत से पूर्व का भी कुछ साहित्य उपलब्ध है जो आज भी ग्रन्थ के रूप में प्राप्य है । इसमें वागभट्ट प्रथम का 'अष्टांग संग्रह' प्रमुख ग्रंथ है । संभवतः वागभट्ट प्रथम का समय ईसा से भी पहले का है । नागार्जुन ने, जिनका उल्लेख पहले भी किया है, सुश्रुत संहिता के संपादन के अतिरिक्त कुछ अन्य पुस्तकों की रचना भी की है जिसमें पौधों का वर्णन मिलता है । इनमें 'सिद्ध नागार्जुन' और रसेन्द्र-मंगल प्रमुख हैं । इसका विवरण पी० रे (1956), जूलियस जॉली (1951) और जी० पी० श्रीवास्तव (1954) की रचनाओं में मिलता है । एक और महत्वपूर्ण ग्रंथ 'अष्टांग हृदय संहिता' वागभट्ट द्वितीय ने संभवतः सातवीं या आठवीं शताब्दी में लिखा । इन्होंने अपनी पुस्तक को आठ खंडों में विभाजित किया और प्रथम खंड में औषधीय पौदे और औषधियों का वर्णन किया । पाँचवे और छठे अध्याय में कुछ अन्य पादपों और उनके प्रभावों के विषय में लिखा है जिन्हें कई वर्गों में विभाजित किया है । उदाहरणार्थ 'दुग्ध वर्ग', 'इक्षु वर्ग', 'तैल वर्ग', 'धान्य वर्ग', 'शाक वर्ग', 'फल वर्ग' इत्यादि । औषधीय पौधों का मुख्य वर्गीकरण पन्द्रहवें अध्याय में है जिसमें तैंतीस गण हैं । इन गणों का विभाजन उनके औषधीय प्रभावों अथवा उस गण के प्रथम पौधे के नाम पर है । उदाहरण के लिए 'वातनाशक गण' या 'पद्मकादि गण' ।

इसके बाद के ग्रंथकारों में चक्रपाणि दत्त, बंगसेन और सारंगधर की रचनाएँ मिलती हैं । चक्रपाणिदत्त द्वारा रचित 'द्रव्य-गुण-संग्रह' (ईस्वी सन् 1060) को आधार मान कर बाद के रचनाकारों ने औषधि संबंधी ग्रंथों की रचना की है ।

सारंगधर ने, जो 'सारंगधर-संहिता' के लेखक हैं, अपनी पुस्तक को तीन खण्डों, बत्तीस अध्यायों और 2,600 श्लोकों में विभाजित किया है। इस ग्रंथ का समय पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जाता है। इसी के साथ प्राचीन काल समाप्त हो जाता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत में वनस्पति विज्ञान के ज्ञान का आधार वैदिक साहित्य, 'शुक्रनीति', वाराहमिहिर की 'बृहत् संहिता', मुनि चरक की 'चरक संहिता', 'सुश्रुत संहिता', पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', वाल्मीकि की 'रामायण', वेद व्यास की 'महाभारत', 'जातक' कथाओं, पुराणों और तंत्रों, मनु की 'मनुसंहिता', कालिदास के 'मेघदूत', 'सारंगधर-संहिता', भाव मिश्र की 'भाव प्रकाश' और 'गुण-रत्न-माला' इत्यादि हैं। संस्कृत भाषा की इन पुस्तकों में वनस्पति विज्ञान संबंधी ज्ञान के भंडार दिये हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के विभिन्न शैक्षणिक-स्तरों पर विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा में प्राप्त प्राचीन भारतीय विज्ञान का अध्ययन अनिवार्य कर दिया जाए। इस दिशा में किया गया अनुसंधान अवश्य ही देश के लिए हितकारक प्रमाणित होगा।

संदर्भ

1. शास्त्री, विजयेन्द्र रामकृष्ण (1963) 'साइन्स इन दी वेदाज' बुलेटिन ऑफ दि नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ इन्डिया न० 21, पृष्ट 94-104.

2. विश्वास, के० (1963). हिस्ट्री ऑफ बाटनी ऑफ अर्ली एण्ड मेडिवल पीरिएड्स' (0—1200 एण्ड 1200-1800) वही, पृष्ट189-195.

3. कुण्डू, वी० सी० एण्ड गुप्ता, वी० (1963)' फार्माकागनास्टिक क्लैसीफिकेशन ऑफ ड्रग्स इन एन्शिएन्ट इण्डिया', वही, पृष्ट 244-250.

4. जॉली, जूलिअस (1951). 'इण्डियन मेडिसिन' (अनुवादक - काशीकर, सी० सी० पूना).

5. गुप्त, बीरेश्वर (1952). 'सोम-लता ऑफ ऋग्वेद', जर्नल ऑफ दि साइन्स क्लब, कलकत्ता, न० 6, पृष्ठ 20-24.

6. रे, पी० (1956). 'हिस्ट्री आफ केमिस्ट्री इन एनशिएन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया', कलकत्ता

7. श्रीवास्तव, जी० पी० (1954). 'हिस्ट्री आफ इन्डियन फार्मेसी', (सेकेन्ड एडीशन, कलकत्ता)

8. 'सुश्रुत संहिता' (संपादक-गुप्त, अत्रि देव, बनारस, 1950)

9. रे, पी० एण्ड गुप्त, हीरेन्द्र नाथ (1965) 'चरक संहिता', नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ साइन्सेज ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली

10. रे, पी० सी० (1920–25). हिस्ट्री आफ हिन्दू केमिस्ट्री, 2 भाग चक्रवर्त्ती, चटर्जी को०, कलकत्ता

11. चितमपल्ली, मारुती (1975). 'स्वर्ग से पृथ्वी पर सोम लाने वाला पक्षी श्येन' धर्मयुग, 9 फरवरी, 19-20.

हमारी वैज्ञानिक संस्थायें एवम् उनके कार्यकलाप—

लड़ते हैं...मगर, हाथ में तलवार ही नहीं

श्यामसरन 'विक्रम'

श्री श्यामसरन अग्रवाल 'विक्रम' विज्ञान-प्रसारण के कठोर व्रती, एकल सिपाही के रूप में अब तक सात सौ से अधिक सरल वैज्ञानिक निबन्धों, आधा दर्जन मौलिक तथा दो दर्जन उपरान्त अनूदित बाल-विज्ञान पुस्तिकाओं के प्रणेता रह चुके हैं, ये इसी में सुख मानते हैं और समर्थ सजग प्रहरी की भाँति सचेष्ट भी रहते हैं कि कहीं कोई वैज्ञानिक संस्था अथवा वैज्ञानिक पत्रिका कुसुम कलीवत् अकाल ही झर न जाये, स्वयं के महारथी मानने वाले किसी भी विज्ञान प्रसारक व्यक्ति अथवा संस्था को विक्रम जी का व्यक्तित्व तथा कृतित्त्व दिशादर्शन देने में सक्षम है।

—सम्पादक

भारत में वैज्ञानिक संस्थायें नहीं हैं, यह कहा नहीं जा सकता।

संस्थायें 'हमारी' हैं, यह भी तो नहीं कहा जा सकता !

'हम' माने दस-बीस, सौ-दो सौ या हद है हजार-दो हजार अदद विज्ञान वेत्ताओं, प्राध्यापकों, शोधार्थियों आदि ही से गरज़ हो तो हम अपना यह शिकायतनामा खोलने की भी जरूरत नहीं समझते यह इसलिये कि विज्ञान के लोक प्रसारण को जिसकी आज सर्वतोमुखी आवश्यकता है, अछूता छोड़ते हुए मात्र अनुसंधान के क्षेत्र में तो बहुत कुछ क्यों, सभी कुछ हो रहा है। इस अत्यन्त सीमित क्षेत्र में कार्यरत जिन कुछ दो-चार संस्थाओं के नाम अपना अस्तित्व जस-तस बनाये हुए हैं उनमें कुछेक निम्नांकित हैं—

इंडियन सायन्स कांग्रेस	कलकत्ता
विज्ञान परिषद	इलाहाबाद
हिन्दी विज्ञान परिषद	बम्बई
राज्य विज्ञान शिक्षण संस्थान	उदयपुर
विज्ञान समिति	उदयपुर
अ० भा० विज्ञान शिक्षक संघ	दिल्ली
वैज्ञानिक एवम् औद्योगिक अनुसन्धान परिषद	दिल्ली
विज्ञान मंडल	आगरा

अन्तिम को छोड़कर शेष सातों संस्थायें, चुनीदाओं के लिये, चुनीदाओं द्वारा संचालित ये संस्थायें 'हमारे' याने जनता जनार्दन के लिये कितनी दूर, अगम्य, अनजानी, अश्रुत और अज्ञात हैं, इसका नजारा देखना हो तो कभी यूंही राह चलते-चलते डुग्गी बजा कर दो-चार सौ का मजमा इकट्ठा कर लीजिये और इन संस्थाओं के नाम पुकार कर पूछ लीजिये, कोई जरा भी परिचित हो तो हाथ उठा दे ... एक भी हाथ नहीं उठेगा। कारण स्पष्ट है कि सफेद कालरबाजों को प्रयोगशाला की चहार-दीवारियों से फुर्सत नहीं और इस जानित्र सम्पर्क के अभाव में जनता को दिलचस्पी क्यों? यही क्या कम है कि साइन्स कांग्रेस और विज्ञान शिक्षक संघ जैसी संस्थायें साल में एक बार कान्फ्रेन्स के नाम पर विज्ञान का मेला-झमेला आयोजित करके अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री पा जाते हैं!

इनसे अलग-अलग अपवाद स्वरूप, विज्ञान मंडल आगरा की शृंखला में दो संस्थायें और उल्लेखनीय हैं। वे हैं कलकत्ता और बैंगलोर के क्रमशः बिड़ला और विश्वेश्वरैया वैज्ञानिक संस्थान और सायन्स म्यूजियम। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि घर-घर और द्वारे-द्वारे विज्ञान की जन-जन में अलख जगाने का श्रेय केवल इन्हीं तीन संस्थाओं को है। इनमें बड़ी दोनों संस्थायें तो सर्व साधन सम्पन्न हैं और विज्ञान मन्डल है कि—लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार ही नहीं! उन दोनों बड़ी सायन्स म्यूजियम संस्थाओं ने ऐसी अदभुत बसें तैयार की हैं जो प्रत्येक बस 20-22 विद्युत-चालित माडलों से सज्जित तथा वाहन चालक एवम् 3-4 कार्यकर्त्ताओं की आवास-सुविधाओं सहित ईद के चांद की तरह दिल्ली में झलक दिखा जाती हैं। तब तो विज्ञान मन्डल उन्हें मथुरा-आगरा भी खींच लाता है। ईद का चांद तो फिर भी साल में एक बार दरस दिखा जाता है, ये बसें तो दो-तीन बरस तरसा-तरसा जाती हैं। प्रत्येक बस के समस्त माडल एक-एक विषय को ही लिये होते हैं, यथा—जल ही जीवन है, ऊर्जा के नैसर्गिक—अनैसर्गिक स्रोत . . . आदि आदि। इन म्यूजो-बसों का दर्शन-प्रदर्शन किसी फिल्म प्रदर्शन से कम मनोरंजक नहीं होता, विज्ञान

मन्डल इन साधनों के अभाव में भी—"बढ़ा जाता है हँसता, खेलता, मौजे हवा दिस में ..." और जनोपयोगी, छात्रोपयोगी सरल लोकप्रिय और सचित्र विज्ञान वार्त्ताएँ,—ताज़ातर—अपोलो-सोयूज़ गगन-मिलन जैसे विजय पर आयोजित करता रहता है। इस मन्डल की एक यह चुनौती आज भी अनुत्तरित है कि आर्कमिडीज ने कहा था—"मुझे खड़े होने की जगह बता दीजिये, मैं पृथ्वी को उठाकर दिखा दूंगा",—उसी भाँति मन्डल को केवल एक एपिडायोस्काप-चित्र प्रदर्शक; एक टेपरिकार्डर, माइकसेट, म्यूज़ोबस (चाहे मिनी बस ही हो) दिला दीजिये, तीस दिन में तीस हजार नागरिकों को विज्ञान रसिया न बना दिया तो नाम बदल देना।

चलते-चलते एक पुछल्ला और . . . हमारे देश की एक भी विज्ञान-संस्था इस बात का महत्त्व नहीं समझ पा रही कि विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक तरफ सरल, सुसाध्य लोकोपभोगी विज्ञान-मासिक पत्र निष्ठा से निकालते रहना; दूसरी तरफ त्रैमासिक शोधपत्रिकायें एक सरल मासिक पत्र का प्रयोजन कदापि सिद्ध नहीं कर सकतीं। अंग्रेज़ी में अवश्य मासिक साइन्स टुडे और साइन्स रिपोर्टर अनुकरणीय कार्य कर रहे हैं। दुर्भाग्य तो बेचारी हिन्दी का है जो ले-देकर वैज्ञानिक अनुसन्धान परिषद दिल्ली की एकमात्र हिन्दी मासिक पत्रिका 'विज्ञान प्रगति' भी तीव्रता से अस्तोन्मुख है, शीघ्र ही एक भूली कहानी बन जाने के लिये, याने कि—

ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना, अफसाना था।

काश, हम अपनी पात्रता इस स्तर तक ला सकें कि विज्ञान प्रसारक अन्य संस्थाओं की खाके कदम, चरन धूलि तो बन सकें!

हमें इन्तजार है उस खुश नसीब साइत का।

भारत में वैज्ञानिक शिक्षा का औचित्य

• डा० सद्‌गुरुशरण निगम,
अध्यक्ष रसायन विभाग,
सागर विश्वविद्यालय

आजकल हम लोग एक महान वैज्ञानिक युग में रह रहे हैं। वैज्ञानिक शिक्षा का विश्व में सर्वत्र अधिक महत्व है, अथवा अधिकतर इसी पर हर देश व जाति की उन्नति निर्भर है। वैज्ञानिक शिक्षा के केन्द्र विश्वविद्यालय हैं। अतएव देश की उन्नति के लिए हमें वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर अधिक ध्यान देना होगा। क्या हमारी शिक्षा उचित है? नहीं। हम लोग सीख अधिक देते हैं। यदि हम, विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से विचार करना सिखलायें और उनको वैज्ञानिक विषयों के मूल तत्व समझाकर पुस्तकों के महासागर में छोड़ दें तो उनको कठिन परिश्रम से बारीकियों का पता लगाने का अवसर प्राप्त होगा और उनको विषय की गहराई ज्ञात होगी। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय ही ऐसे महासागर हैं। इनमें प्रत्येक वैज्ञानिक विषय की नई पुस्तकें, शोध पत्र और पत्रिकायें सरलता से उपलब्ध होनी चाहिये, जिससे विद्यार्थी को विश्व के हर कोने की वैज्ञानिक उन्नति का ठीक ठीक अनुमान हो सके। विद्यार्थियों को आरम्भ से ही नई से नई और कठिन से कठिन वैज्ञानिक खोज और उसके नियम सिखलाये जाना चाहिये और साथ ही उनके उपयोग तथा उनकी जांच का अवसर देना चाहिए। यह कार्य प्रयोगशालाओं में हो सकता है। इसलिये आवश्यकता है कि हमारी प्रयोगशालायें हर प्रकार के नये से नये वैज्ञानिक यंत्रों से पूर्ण हों तथा विश्वविद्यालय में निजी यंत्र बनाने की पूर्ण सुविधा हो। इससे अधिकतर यंत्र प्रयोगशाला में ही सस्ते बन सकें और कोई भी नया से नया यंत्र जो संसार के किसी भी कोने में पहली बार निकला हो विद्यार्थियों को तुरन्त प्राप्त हो सके और साथ ही उनको नये यंत्र बनाने का प्रोत्साहन भी मिले। विज्ञान में व्याख्यानों का महत्व अवश्य है पर प्रयोगों का अधिक। हमारे देश में विज्ञान की शिक्षा में इसकी कमी है। प्रयोगों की सुविधा प्रत्येक विद्यार्थी को इतनी होनी चाहिये कि स्वयं नियमों को जांच सके। सिनेमा स्लाइडों का प्रयोग भी हमारे देश में कम किया जाता है। इससे विषयों को रुचिकर बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के, ब्रिटेन जैसे संग्रहालय (म्यूजियम) स्थापित किये जाने चाहिये। यह भी वैज्ञानिक शिक्षा का एक माध्यम है।

वैज्ञानिक विचार धारा की उन्नति के लिये विश्वविद्यालय के हर विभाग में साप्ताहिक अथवा मासिक ऐसे परिसंवाद भी आयोजित होने चाहिये जिनमें विद्यार्थियों को वाद-विवाद का अवसर प्राप्त हो सके। परिसंवाद का प्रारंभ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा होने

चाहिये और यदि वह स्वयं न उपस्थित हो सकें तो उनके व्याख्यानों को रिकार्ड करके उपलब्ध किया जाना चाहिए।

वार्षिक प्रदर्शनियों का भी वैज्ञानिक शिक्षा में अधिक महत्व है। इनमें बड़ी बड़ी वैज्ञानिक औद्योगिक संस्थाओं को भाग लेना चाहिये और अपने नये नये यंत्र दिखलाने चाहिये और इनके विषय में पुस्तकें और पत्रक वितरण करना चाहिये जिससे विद्यार्थियों को अपने देश के उन क्षेत्रों का पता चले जिनमें उपकरण उपलब्ध नहीं हैं और वह उस ओर अपना ध्यान आकर्षित कर सकें।

एक महत्वपूर्ण विषय विद्यार्थियों के चयन का भी है। केवल उत्तम श्रेणी के ही विद्यार्थियों को उच्च वैज्ञानिक शिक्षा के लिये प्रवेश देना चाहिये जिससे उन सबको आर्थिक सहायता दी जा सके और वह अपना पूरा समय वैज्ञानिक अध्ययन में लगा सकें। आर्थिक सहायता के लिये औद्योगिक संस्थाओं का सहयोग भी आवश्यक है तथा विश्व-विद्यालयों और औद्योगिक संस्थाओं में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होना चाहिये जिससे विद्यार्थियों को लम्बी छुट्टियों में औद्योगिक संस्थाओं में जाकर अपनी वैज्ञानिक शिक्षा को कार्य रूप देने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

वैज्ञानिक शिक्षा में अनुसंधान का अधिक महत्व है। इसको विद्यार्थियों को हृदयंगम कराना चाहिये। विद्यार्थियों को खोज का मार्ग छोटी योजनाओं में कार्य द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। यदि विद्यार्थियों को अपने शिक्षा के कार्य काल में कुछ समय के लिये उद्योगों में भेजा जा सके तो वे अपनी रुचि ज्ञात कर सकेंगे तथा उद्योगों की कठिनाइयों को भी समझ सकेंगे और वे देश के निर्माण की कठिनाइयों की कल्पना कल्पना कर सकेंगे और उनका समाधान ढूंढ़ सकेंगे। उपर्युक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि हमको अपनी वैज्ञानिक शिक्षा में कुछ परिवर्तन करने होंगे और उसको समय के अनुसार आधुनिक उपलब्धियों से परिपूर्ण करना होगा तब ही हम योग्य वैज्ञानिकों को जन्म दे सकेंगे।

जैन आगम साहित्य में रासायनिक मान्यतायें

● नंदलाल जैन

जैन धर्म संसार का एक प्राचीनतम धर्म है जो अनेकान्त वाद, अपरिग्रहवाद और विश्व के विवरण से संबंधित बहुद्रव्यवाद के लिये प्रसिद्ध है। इसका ईसा पूर्व सदियों से लेकर 1617 वीं सदी तक का उपलब्ध साहित्य धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों के साथ भौतिक विश्व के संबंध में भी पर्याप्त वर्णन करता है। जे० सी० सिकन्दर, जी० आर० जैन, एल० सी० जैन और मुनि महेन्द्र कुमार आदि विद्वानों ने जैनों के परमाणुवाद, विश्वविज्ञान, गणित और ज्योतिष के संबंध में स्फुट लेख लिखे हैं। इन लेखों को विषयवार संकलित कर प्रकाशित करने की आवश्यकता है जिससे जैनागमों में वर्णित वैज्ञानिक मान्यताओं के सर्वांगीण रूप का पता चल सके। यह प्रयत्न जैन-साहित्य-उद्धारक और प्रकाशक संस्थाओं द्वारा किया जाना चाहिये। इसका एक सुफल भी संभावित है। आजकल धार्मिक आचार-विचारों के प्रति लोगों में पर्याप्त अनास्था बढ़ रही है। नई पीढ़ी में यह भ्रान्ति घर कर गई है कि पुराने विचारों में सत्यता का अभाव है। उक्त प्रकार के साहित्य से पुरानी मान्यताओं का मूल्यांकन हो सकेगा और इस पीढ़ी की आस्था बलवती होगी। अपने इस लघु-निबंध में जैन आगमों में वर्णित कुछ प्रमुख रासायनिक मान्यताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

(अ) पदार्थ की परिभाषा : सामान्य-विशेष गुण

वर्तमान रसायन विज्ञान में पदार्थ की परिभाषा, संरचना, उनका संयोग-वियोग और व्यक्तिगत पदार्थों का वर्णन किया जाता है। जैनागमों में पदार्थों को स्थूलतः और मौलिकतः परिभाषित किया गया है। आलाप पद्धति में पदार्थ के आठ (अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व/अचेतनत्व और मूर्तत्व/अमूर्तत्व) सामान्य गुण मानते हैं। ये सहभावी धर्म हैं, पदार्थ में सदैव रहते हैं। पदार्थों में कुछ क्रमभावी गुण रहते हैं जो परिवर्तनशील होते हैं। रूप, रंग और स्वाद के परिवर्तनों से सभी परिचित हैं। इस प्रकार सहभावी और क्रमभावी गुणों से युक्त वस्तु द्रव्य या पदार्थ कहलाती है। इस सर्वतोमुखी परिभाषा के बदले आधुनिक रसायन की भार-स्थानी परिभाषा पर्याप्त स्थूल प्रतीत होती है। यही नहीं, इस परिभाषा की एक विशेषता और है। भार पदार्थों का मूल गुण नहीं है। इससे ऊर्जायें भी पदार्थ के अन्तर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार जैनों में भार ऊर्जा का संरक्षण नियम मान्य है, केवल भार या केवल ऊर्जा का

नहीं, जैसाकि पहले वैज्ञानिक मानते थे। साथ ही, ऊर्जा ही भारात्मक पदार्थ का रूप ग्रहण करती है और अन्योत्र परिवर्तित होती है। इस तथ्य से आज के विज्ञान की कई समस्याओं का समाधान होता है। इस विषय में मुनि महेन्द्र कुमार का लेख द्रष्टव्य है।

सामान्य जैनागमों में छह मूल द्रव्य माने जाते हैं। इनमें एक दृश्य और मूर्त-पुद्गल है। अन्य पाँच अमूर्त हैं। रसायन का विषय मूर्त पदार्थ ही है। इन्हें द्रव्य पुद्गल और भाव पुद्गल के रूप से दो प्रकार का माना जाता है। जिन पदार्थों से अन्य पदार्थ बनते हैं, वे द्रव्य कहलाते हैं। विभिन्न निर्मित पदार्थ भाव पुद्गल कहलाते हैं। आगमों में दृश्य पदार्थ के लिये पुद्गल शब्द का उपयोग अत्यन्त पारिभाषिक है जो पदार्थों के संयोग-वियोग की क्षमता को प्रदर्शित करता है। यही नहीं, परिणामिनित्यता भी इनका एक अनिवार्य गुण है। यह गुण पदार्थ की अविनाशिता की दो हजार वर्ष पुरानी पीठिका है और कार्य-कारणवाद या सत्यकार्यवाद की प्ररूपक है।

मूर्त पदार्थों में छह प्रकार के विशेष गुण होते हैं: रूप, रस, गंध, स्पर्श, मूर्तत्व और अचेतनता। ये भेदक गुण माने जाते हैं। यह भी माना जाता है कि रूप, रस, गंध और स्पर्श में से एक भी विशेष गुण के इन्द्रियगोचर होने पर अन्य तीनों की सहवर्तिता अवश्यंभावी है। न्यायकुमुदचन्द्र में इस तथ्य को अनुमान से सिद्ध किया गया है। इनके वीस अवान्तर भेद होते हैं: स्पर्श के आठ, रस के पांच, गंध के दो और रूप के पांच। स्पर्श के गुणों में अवस्थागत गुण (नरम, कठोर), भारात्मक गुण (हल्का-भारी), ऊष्मीया गुण (शीत-उष्ण), एवं विद्युत तथा क्रिस्टलता के गुण समाहित हैं। इनका परिमाणात्मक वर्णन आगमों में उपलब्ध नहीं होता। रस के पाँच भेदों में खट्टा, मीठा, तीखा, कटु व कसैला रूप समाहित हैं। इनमें नमक के विशिष्ट रस की गणना नहीं है। हरिभद्रसूरि के ग्रन्थ की टीका में 'लवणो मधुर इत्येके' कहकर इसका समाधान किया गया है। आगमों में रस-अनुभूति की प्रक्रिया का वर्णन नहीं मिलता। वर्तमान वैज्ञानिकों ने मूलतः चार रस माने हैं जिनके अगणित रूपों को दस हजार रस-मुकुलों में विद्यमान कोशिकायें अनुभव कराती हैं। गंध के सुगंध और दुर्गन्ध दो भेदों को माना गया है। विज्ञानी जगत्, यद्यपि गंध के विभाजन को अब भी स्वैच्छिक ही मानता है, फिर भी अब उसके नौ भेद माने जाते हैं। विभिन्न पदार्थों की गन्धमयता उनकी रासायनिक संरचना से संबंधित की गई है। यही नहीं, व्यक्तियों की गंध गुणवत्ता के लिये एक यंत्र का भी उपयोग किया जाने लगा है। आगमों में रूप के कृष्ण, श्वेत, नील, पीत और लोहित नामक पाँच मूल भेद बताये हैं। अन्य रंग इन्हीं के अवान्तर मिश्रण हैं। वैज्ञानिक इन्द्रधनुष के सात रंगों को प्रमुख मानते हैं। वे इनमें सफेद और काले रंग को नहीं मानते। नवीन शोधों से तीन मूल रंग सिद्ध हुए हैं और वर्ण की अनुभूति का सिद्धान्त भी स्पष्ट हुआ है। इस विषय में अन्यत्र प्रकाश डाला गया है।

मूर्तत्व का अर्थ आकृति है। यह नियमित और अनियमित के रूप में दो प्रकार

की मानी गई है। नियमित आकृति के वृत, त्रिभुज, चतुर्भुज, आयत और विन्दुमात्र-पाँच भेद हैं। वट वृक्ष, साँप की वामी, कूवड़ा, वामन और विषमकोटि के भी संयुक्त आकार होते हैं। भावप्राभृत में हीरे का पटफलकी वताया गया है। आकृति विज्ञान का अब पर्याप्त विकास हो गया है और इसके सात प्रकार के रूपों के बत्तीस उपभेद और दो सौ इकतीस प्ररूप माने जाते हैं। यहाँ मनोरंजक तथ्य यह है कि इसके अंतर्गत भी हीरा षट्फलकी माना जाता है।

पदार्थों के असहवर्ती गुणों में सूक्ष्मता-स्थूलता, बंध तथा नियोजन क्षमता के गुण मुख्य हैं जो परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं। स्थूलता-सूक्ष्मता दो-दो प्रकार की होती है। निरपेक्ष और सापेक्ष। निरपेक्ष सूक्ष्मता परमाणु में और स्थूलता महास्कंध विश्व में पाई जाती है। पदार्थों की भेदन क्षमता उत्का, चूर्णन, खंड, चूर्णिका, प्रतर व अणु-चरन के रूप में छह प्रकार की बताई गई है। पदार्थों की बद्ध क्षमता उनके स्निग्ध-रूक्ष गुणों की प्रकृति और परिमाण पर निर्भर करती है। यह तीन प्रकार से संभव होती है जिसका वर्णन आगे किया गया है।

वर्तमान रसायन में विशेष गुणों की संख्या बढ़ती जा रही है। विलेयता, जलवायु प्रभाविता, यांत्रिक सामर्थ आदि के गुणों का आगमों में विशेष उल्लेख नहीं है। यह माना जा सकता है कि आगमकाल में संभवतः ये गुण महत्वपूर्ण न रहे होंगे।

(ब) पदार्थों का वर्गीकरण एवं संरचना : परमाणुवाद

पच्छिम के विद्वानों ने जैनों को वर्गीकरण विशारद माना है। उनकी यह धारणा मूर्त पदार्थों के वर्गीकरण पर पूर्णतः लागू होती है। इसका आधार वर्तमान रसायन की तुलना में अधिक तीक्ष्ण प्रतीत होता है। क्योंकि पुद्गल के सूक्ष्मतम संरचना-यूनिट-परमाणु के विषय में अधिक विचार करता है, उसके स्थूल रूप-स्कंध पर कम। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि जैनागमों में वर्तमान परमाणुओं के लिये 'अणु' और अणुओं के लिये स्कन्ध शब्दों का प्रयोग किया गया है। कुछ विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं और वे आगमोक्त परमाणु को एक विलगित श्रेणी में रखना चाहते हैं जो अविभाज्यता की चरम सीमा है और जिसे अभी संभवतः विज्ञान नहीं प्राप्त कर सका है। सभी स्कंध परमाणुओं के संधान या अन्य स्कन्धों के भेदन से प्राप्त होते हैं।

आगमों के अनुसार, पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। परमाणु और स्कंध परमाणु अविभागी, अविनाशी, अदृश्य और अदाहय होते हैं। वे गोलाकार और रिक्त होते हैं। उनमें संकोच और विस्तार होता है। ये भारहीन होते हैं और समान होते हैं। इनकी प्रकृति स्निग्ध या रूक्ष होती है जिसके कारण ये एक दूसरे से संयोग करते हैं और अगणित प्रकार के स्कंध बनाते हैं। परमाणु अशब्द, विन्दुरूप और इन्द्रिय-अग्राह्य होते हैं। इनमें मूल रूप में एक रस, एक रूप और दो स्पर्श (शीत-उष्ण एवं स्निग्ध-रूक्ष में से एक-एक)

पाँच गुण होते हैं। ये निरंतर गतिशील होते हैं जो प्राकृतिक या बलाधानों से भी हो सकता है। इनकी गति इतनी तेज होती है कि एक ही समय में वे लोकान्त तक जा सकते हैं। यह गति स्थानान्तरणी या अ-स्थानान्तरणी हो सकती है जिसमें कंपनादि क्रियायें भी समाहित हैं। भगवती सूत्र में विभिन्न गतियों एवं क्रियाओं का वर्णन है। इनकी सामान्य क्रिया अप्रतिहत या अप्रत्यास्थ होती है।

जैनागमों के उक्त परमाणुवाद की अभिगृहीतियों की तुलना में डेमोक्रतु और डाल्टन का परमाणुवाद पर्याप्त हीन लगता है। यह तो गत्यात्मक परमाणुवाद है, स्थैतिक नहीं। इसमें वर्तमान परमाणुवाद के तत्वों के साथ गत्यात्मक सिद्धान्त के तत्व भी समाहित हैं। यह दुर्भाग्य की बात है कि दो हजार वर्ष पूर्व विकसित ऐसे प्रगतिशील सिद्धान्त के विषय में तनिक भी जानकारी विज्ञान-जगत् को प्राप्त नहीं हो सकी।

बीसवीं सदी में वैज्ञानिकों को अपने प्रचलित परमाणुवाद की प्रायः सभी अभिगृहीतियों में परिवर्तन करना पड़ा है क्योंकि उनका विभाजन लगभग दो दर्जन अवयवों में हो चुका है। उनके भार ज्ञात हो गये हैं। केलिफोर्निया के विद्वानों ने शक्तिशाली परमाणु विखंडकों की सहायता से 'क्वार्क' (quark) नामक ऐसे कण का पता चला है जो विभाजन की सीमा मानी जा सकती है। ऐसा सोचा जाता है कि तीन क्वार्क एक प्रोटान के बराबर होते हैं। कुछ जैन विद्वान संभवतः क्वार्क को ही आगमोक्त परमाणु का रूप मानने की सोचते हैं। इसके पूर्व वे इलेक्ट्रान और पोजिट्रान को परमाणु मानने लगे थे। ये मूलकण ठोस पिंड होते हैं, खोखले नहीं। इस दृष्टि से यह मान्यता समुचित प्रतीत नहीं होती। वैज्ञानिक जगत में, समकक्षता बनाये रखने के लिए परमाणु का कोई निश्चित अर्थ हमें स्वीकार करना होगा जो सम-सामयिक ही होना चाहिये। परमाणुवाद के विकास के युग में किसी भी सिद्धान्त की अपेक्षा जैनागम वर्णित परमाणु कई गुना अधिक विकसित होगा। पार्टिंगटन के समान रसायनज्ञ इतिहासकारों ने इस परमाणु को पर्याप्त विकसित माना है। त्रिलोक प्रज्ञप्ति में परमाणु के विस्तार की चर्चा करते हुए दृश्य परमाणु का विस्तार लगभग 10^{-14} सेमी० माना है जो आज के परमाणु-विस्तार के समरूप है। प्रयोग और उपकरण-विहीन युग में परमाणु और उसके विस्तार के सम्बन्ध में इतना सूक्ष्म कथन जैनाचार्यों की तीक्ष्ण अन्तः निरीक्षण एवं चिन्तनशक्ति का प्रतीक है।

सामान्यतः परमाणु दो प्रकार के होते हैं—कार्य परमाणु और कारण परमाणु। कारण परमाणु मूलतः निरपेक्ष परमाणु है। यह धातु चतुष्क का मूल है। भगवती सूत्र में परमाणुओं को चार प्रकार का माना गया है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। इनमें क्षेत्र और काल के परमाणुओं को विज्ञान ने मान्यता नहीं दी है। चतुस्पर्शी परमाणुओं को रूप, रस और गंध की अपेक्षा से वर्गीकृत करने पर उनकी संख्या दो सौ तक पहुंचती है। आधुनिक विज्ञान में यह संख्या अभी 105-6 तक ही पहुंची है। जैनागमवर्णित संख्या उनके भावी अन्वेषण की गति को तीव्र करने के लिए उत्साह प्रदान करती है।

(स) स्कन्ध और उनका निर्माण : परमाणु-बन्ध का सिद्धाँन्त

परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहते हैं। ये अगणित प्रकार के होते हैं और इनका वर्गीकरण एक समस्या ही है। सामान्यतः ये दो प्रकार होते हैं—दृश्य और अदृश्य। अदृश्य स्कन्धों में विभिन्न में प्रकार की ऊर्जायें-ऊष्मा, ध्वनि और प्रकाश समाहित हैं जिनसे इनकी कणमय प्रकृति का भान होता है। अदृश्य परमाणुओं के संयोग से, दृष्टिगोचर स्कन्धों के भेद, अपघटन या विद्रूपण से अथवा भेद-संघात की मिश्रित प्रक्रिया से स्कन्धों का निर्माण होता है। दो, तीन या चार परमाणुओं के अथवा सूक्ष्म परिणामी आठ परमाणुओं तक के संयोगों से बने स्कन्ध प्रायः अचाक्षुष माने जाते हैं। इसके उत्तरवर्ती परमाणुओं के संयोग से दृश्य स्कन्ध बनते हैं।

स्कन्धों का एक स्थूल वर्गीकरण पंचास्तिकाय में पाया जाता है : परमाणुओं से प्रदेश बनते हैं, प्रदेश से देश और देश से स्कन्ध बनते हैं। इस प्रकार स्कन्ध की सीमा द्व्यणुक तक जाती है। नियमसार में इससे कुछ सूक्ष्मतर वर्गीकरण किया गया है जो उत्तरोत्तर सूक्ष्मता के आधार पर है। इनमें स्थूल-स्थूल (सर्वेन्द्रिय ग्राहक), स्थूल (द्रव), स्थूल-सूक्ष्म (प्रकाश आदि ऊर्जायें), सूक्ष्म-स्थूल (वायु आदि गैस), सूक्ष्म (कर्म वर्गणायें) और सूक्ष्म-सूक्ष्म (द्वयणुक स्कन्ध) कोटि के स्कन्ध समहित हैं। इस वर्गीकरण में भी ऊर्जाओं को परमाणुमय माना गया है। शास्त्रों में चतुस्पर्शी और अष्टस्पर्शी स्कन्धों का वर्णन आता है जिससे यह ज्ञात होता है कि अदृश्य परमाणु (जिन्हें ऊर्जात्मक माना जा सकता है) विभिन्न परिस्थितियों में अष्टस्पर्शी स्कन्धों में परिणत हो जाते हैं जिनमें द्रव्यमान या भार होता है। इस प्रकार भारविहीन ऊर्जायें निरन्तर भारयुक्त कणों में परिवर्तित होती रहती हैं जिससे विश्व का समग्र भार निरन्तर बढ़ रहा है लेकिन द्रव्यमान +ऊर्जा की मात्रा स्थिर बनी हुई है। इस वर्गीकरण की एक और विशेषता है। इसमें जैनों के प्रसिद्ध कर्मवाद की कर्मवर्गणाओं के स्कन्धों को भी समाहित किया गया है। ऐसा माना जाता है कि इन वर्गणाओं को द्वयणुक से तो बड़ा होना ही चाहिये। परा-विज्ञान और मस्तिष्क लहरों के अस्तित्व से एवं इनके प्रभावों के प्रयोगगम्य होने से इन वर्गणाओं के अस्तित्व का एक साक्ष्य प्राप्त होता है। इस विषय में गहन और चिन्तनशील अनुसंधान की आवश्यकता है। इन विशेषताओं के बावजूद भी, इस वर्गीकरण की एक विसंगति की ओर सहसा आश्चर्य होता है। आज यह माना जाता है कि गैसीय कण निश्चित रूप से ऊर्जाओं के कणों से वृहत्तर होते हैं। लेकिन यहाँ इनकी कोटि गैसीय पदार्थों से ऊपर रखी गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह वर्गीकरण दृष्टिगोचरता को ध्यान में रखकर किया गया है। यह स्पष्ट है कि वायु आदि गैसों की अपेक्षा तल, प्रकाश आदि ऊर्जायें अधिक अनुभवगम्य होती हैं। ऐसा भी लगता है कि इस काल में चुम्बक और विद्युत ऊर्जा का नगण्य ही ज्ञान रहा होगा।

गोम्मट सार में स्कन्ध के तेईस भेद बताये गये हैं जिनके अंतर्गत आहार, शरीर,

माया, मन, कर्म और महास्कन्ध समाहित हैं। यह वर्गीकरण उत्तरोत्तर स्थूलता के आधार पर किया गया है। एक अन्य वर्गीकरण में 'परिस्थूर न्याय' से स्कन्ध के 530 भेद बताये गये हैं। इन और अन्य वर्गीकरणों पर ध्यान देने से पता चलता है कि यह वाह्य रूपों के आधार पर ही किया गया है, इनमें आन्तरिक संरचना का महत्व नहीं है। संस्थानगत चर्चा कहीं-कहीं आई है।

यह कहा जा चुका है कि स्कन्ध निर्माण के लिए परमाणुओं का संयोग या वन्ध आवश्यक है। यह संयोग उनकी वैद्युत प्रकृति के आधार पर होता है। शास्त्रों में वताया गया है कि परमाणुओं में वन्ध का मूल कारण उनकी विषम वैद्युत प्रकृति है। दो अधिक विद्युत गुणी परमाणुओं में भी वन्ध होता है। शून्य विद्युती परमाणुओं में बन्ध नहीं होता। (वर्तमान में अक्रिय गैसों में यह बन्ध देखा गया है, पर उसकी व्याख्या किसी न किसी प्रकार की विषमता के आधार पर ही की जाती है)। सम-विद्युत-गुणी परमाणुओं में प्राचीन अम्लों के अनुसार वन्ध नहीं होता। उत्तरवर्ती व्याख्याकारों ने विषम-स्थितिक समगुणी और सम स्थितिक विषम-गुणी परमाणुओं में बन्ध को संभव बताया है। वर्तमान में भी यह माना जाता है कि हाइड्रोजन के समान समगुणी परमाणुओं का वन्ध विरुद्ध चक्रण की दशा में ही होता है। फलतः उत्तरवर्ती मत अधिक तथ्यपूर्ण प्रतीत होता है। इस प्रकार परमाणुओं का वन्ध तीन प्रकार से होता है जो वर्तमान तीन प्रकार की बन्धकताओं के समकक्ष है। वन्ध की यह प्रक्रिया जैनाचार्यों ने ईसा की प्रथम सदियों में प्रतिपादित की थी जिसका विकास वैज्ञानिकों ने बीसवीं सदी के द्वितीय-तृतीय दशक में ही कर पाया। इन वन्धों के फलस्वरूप जो नया अणु बनता है, उसके गुणों को अधि-परिणामी अवयवी के अनुरूप बताया गया है। यह तथ्य वर्तमान प्रयोगों से अंशतः ही सत्यापित होता है। दो विषैले परमाणुओं के संयोग से नमक के समान खाद्य स्कन्ध बनता है। वस्तुतः यह स्कन्ध की प्रकृति वन्ध की दशाओं पर निर्भर करती है।

परमाणुओं में घटित होने वाला बन्ध जब सर्वदेशी होता है, तभी नया स्कन्ध बनता है। यह बन्ध अप्रत्यास्थ संघट्टन से होता है। यह भी बताया गया है कि कभी-कभी बन्ध धात्वीय उत्प्रेरकों की उपस्थिति एवं वाह्य वातावरण के प्रभाव से भी होता है। इस प्रकार परमाणुओं में बन्ध प्रायोगिक तो होता ही है, स्वतः भी होता है। कर्म-परमाणुओं का जीवन-तत्व से बन्ध स्वतः ही माना गया है। बन्ध और उसके सम्पन्न होने की प्रक्रिया का यह गुणात्मक रूप आधुनिक संघट्टन सिद्धान्त से काफी मिलता-जुलता है। शास्त्रों में बन्ध की जो दशायें वर्णित हैं, वे आज भी दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती हैं। शास्त्रों में उपरोक्त रासायनिक कोटि के बन्ध के अतिरिक्त न कर्म बन्ध के समान भौतिक संयोगों का वर्णन भी किया गया है जिसका विस्तार अन्यत्र किया गया है।

(द) कुछ स्कन्ध-विशेषों का निरूपण

प्रवचनसार के अनुसार, यह विश्व नाना प्रकार के सूक्ष्म और स्कन्धों से भरा हुआ है। ये स्कन्ध अपने गुणों के आविर्भाव-तिरोभाव के कारण पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु का रूप ग्रहण करते हैं। इस प्रकार शास्त्रों में मूलतः चार प्रकार के स्कन्ध विशेषों का विवरण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी आदि स्कन्धों से पदार्थ विशेष द्योतन अभीष्ट नहीं रहा है, अपितु पदार्थों की अवस्था-विशेष का द्योतन अभीष्ट रहा है। इस आधार पर सामान्यतः पृथ्वी ठोस, जल, द्रव, वायु, गैस और तेज अग्नि आदि ऊर्जा का द्योतन है। इसका समर्थन पृथ्वी के 36/40 भेदों से मिलता है जो सभी ठोस हैं। इनमें कुछ तत्व (सोना, चाँदी, हीरा आदि), रांगा के समान मिश्रधातु, नमक व तूतिया के समान यौगिक, सुरमा और मिट्टी-पत्थर के समान मिश्रण और सोलह प्रकार के मणि समाहित हैं। पृथ्वी का नाम 'रत्नगर्भा' या उत्तम वस्तु देने वाली कहा गया है जिससे सप्त धातु, सूती-ऊनी वस्त्र, औषध एवं गन्ध द्रव्य, हस्तिदन्त, हीरा और ऐसे ही अन्य पदार्थ मिलते हैं। सामान्य जीवन में काम आने वाली धातु स्वर्ण थी। इसकी प्राप्ति और शोधन की विधियाँ तथा लोहे पर पानी चढ़ाने की विधि का शास्त्रों में कई स्थानों पर उल्लेख है। ठोस सम्बन्धी विवरण आज की तुलना में नगण्य लगता है लेकिन इससे यह संकेत मिलता है कि शास्त्रीय युग में क्या ज्ञात रहा है? इससे यह तुलना भी की जा सकती है कि उस युग से अब तक हमने अपने ज्ञान में कितनी प्राप्ति की है।

जल को द्रव-जाति का प्रतिनिधि मानकर उसके तीन भेद किये गये हैं—घृत, जल और तेल। जल जाति के द्रव जल, पान (मदिरा) और पानक (औषध) के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। द्रवता या प्रवाहशीलता इनका मुख्य गुण है। सामान्य जल दो प्रकार का होता है—भूमिगत और अन्तरिक्षगत। भूमिगत जल कूप, तड़ाग, सरोवर, नदी, झरना और औद्भिज आदि के रूप में सात प्रकार का होता है। अन्तरिक्षी जल वर्षा, ओला, हिम और तुषार के भेद से चार प्रकार का होता है। प्रज्ञापना में जल के सत्रह भेद बताये गये हैं। जल में दो प्रकार के जीव पाये जाते हैं—वायु योनिक और उदयोनिक। इसे उबालकर या फिटकरी से शुद्ध किया जा सकता है। इसे खुला रखने पर यह 12-24 घन्टों में सजीव हो जाता है। यव, तुष और सौवीर से प्राप्त होने वाले जल अम्लीय होते हैं। इन्हें अधिक दिन तक रखने से इनकी अम्लता बढ़ जाती है। इनका सेवन निषिद्ध है। जल के विविध रूपों का उपरोक्त वर्णन आधुनिक निरूपणों से कुछ अधिक ही है। यहां यह दृष्टव्य है कि ऊपर जल के ठोस और द्रवरूप ही बताये गए हैं, भाप या गैसीय रूप का वर्णन नहीं मिलता। शोधन की प्रक्रिया से पता चलता है कि यह लगभग दो हजार वर्ष से यथावत् चल रही है, यद्यपि आज शोधक पदार्थों की संख्या में काफी वृद्धि हो गई है।

अम्लीय जलों में पान और पानकों का वर्णन-विशेष ऊष्मों में तो नहीं मिलता, पर पुरुषार्थ सिद्धमुपाय में मद्य का कुछ वर्णन आया है। मद्य और मक्खन में सूक्ष्म जाति

के जीव उत्पन्न होते हैं । यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि इन प्रक्रियाओं में सूक्ष्मजीवों की भूमिका के विषय में आंशिक ज्ञान जैनाचार्यों को था । जल के विषय में अन्य सूचनायें नगण्य मिलती हैं ।

वायु गैसीय अवस्था का द्योतक पदार्थ है । इस अवस्था के पदार्थों में तिर्यक गतिशीलता पाई जाती है । ये चक्षु से नहीं दिखते, पर इनके प्रवाह का ज्ञान अन्य इन्द्रियों द्वारा होता है । आगमों में वायु के अतिरिक्त अन्य गैसों का वर्णन नहीं मिलता । संभवतः वे उस काल में ज्ञात न रहे हों । वायु सात प्रकार का बताया गया है । सामान्य वायु लकड़ी के जलने में सहायक होता है, पर आँधी उसमें बाधक होती है । वायु में सूक्ष्म जीव भी रहते हैं । वायु प्रसरित और संकुचित भी होती है । वर्तमान में इन सभी गुणों का ज्ञान 18वीं सदी के बाद ही हुआ है जो जैनाचार्यों को दसवीं सदी के पूर्व ही ज्ञात था ।

वायु के समान ही तेजोमय स्कन्धों का विवरण भी केवल अग्नि के रूप में ही प्राप्त होता है । ये मुख्यतः ऊर्जामय स्कन्ध हैं जो चक्षुषा दिखते हैं पर इनका अनुभव अन्य इन्द्रियों से मुख्यतः नहीं होता । ये स्कन्ध तीन प्रकार के होते हैं—आतप, उद्योत (प्रकाश) और शब्द । सूर्य की किरणें और अग्नि तेजस होते हैं । इनमें ज्वाला सुज्ञात पदार्थ है जिसका आगमों में वर्णन है । ज्वालाओं के तेजस स्कन्ध अग्नि, अंगार, मुर्मुरी, अर्चि, आभास, शुद्ध अग्नि (इंधन रहित अग्नि) और उल्का से प्राप्त होते हैं । इनमें इंधन रहित अग्नि को वाह्यस्रोती उत्तापन के रूप में माना जा सकता है । रक्ततप्त लौह पिण्ड इसका उदाहरण है । उल्का तेजस स्कन्ध वैद्युत ऊष्मा का प्रतीक है । प्रज्ञापना में अग्नि के ग्यारह भेद बताये गये हैं जिनमें संघर्षजन्य अग्नि भी समाहित है । इस प्रकार तेजस अग्नि के विभिन्न दृश्य रूपों का ही विवरण आगमों में उपलब्ध होता है । इनका विशेष विवरण अन्यत्र दिया गया है ।

उपरोक्त प्रकार के स्कन्ध जीवों के शरीर, मन, वाणी और श्वासोच्छ्वासों का निर्माण करते हैं । ये मानव की विभिन्न उद्वेगों की अनुभूति में कारण होते हैं जो विभिन्न कर्म स्कन्धों के भौतिक परिवेश के स्पन्दनों और उनकी प्रतिवर्ती संवेदनों से उत्पन्न होती हैं । विभिन्न स्कन्ध परस्पर के संयोग-वियोग द्वारा विविध भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तनों को भी जन्म देते हैं । फिटकरी से जल शोधन, दूध से मक्खन का उत्पादन, सुवर्ण का सुहागादि से शोधन आदि क्रियाओं के उल्लेख इन परिवर्तनों के उदाहरण हैं । वस्तुतः वर्तमान रसायन ऐसी ही अनेकानेक क्रियाओं के विकास का पात्र है जिससे हमें भौतिक जगत की सुख-सामग्री प्राप्त हुई है । क्या ये सामग्रियां हमें आध्यात्मिक जीवन का आनन्दी-नुभव कराने की दिशा में समर्थ नहीं हैं ?

उपसंहार

जैनागम-साहित्य के उपरोक्त संक्षिप्त अनुशीलन से उसमें वर्णित रासायनिक विषयों के वैचारिक अंश (परमाणुवाद, बंधकता, बन्धदशायें आदि) का आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रयोग-पोषण किया है। इन विचारों की सर्जना ही दो हजार वर्ष पूर्व के प्रयोग-विहीन युग में हमारे आचार्यों की विलक्षण प्रतिमा, तीक्ष्ण निरीक्षण शक्ति और गहन अन्तर्दृष्टि का परिचय देती है। इनकी गुणात्मकता की कोटि इनके परिणामात्मक साक्ष्य के अभाव की पर्याप्त प्रतिपूर्ति करती है। लेकिन जब हम रसायन के चक्षुग्राह्य रूपों पर ध्यान देते हैं, तब हमें लगता है कि उपलब्ध-विवरण आज की तुलना में अत्यन्त अल्प, स्थूल और अपूर्ण हैं। कहीं-कहीं पर्याप्त विसंगति भी दिखती है। इन विसंगतियों का समाधान और नवीन तथ्यों का समाहरण हमारी धार्मिक आस्था को बलवती बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

प्राचीन भारत में उज्जयिनी के आचार्य व्याडि का रसायन विभाग के क्षेत्र में योगदान

● डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री

मानद महासचिव
भारतीय विज्ञानीय इतिहास एवं दर्शन परिषद्

अत्यन्त प्राचीन काल से ही विविध विद्याओं की केन्द्र उज्जयिनी नगरी, न केवल सान्दीपनि जैसे आचार्य, कालिदास जैसे कविकुल गुरु एवं शृंगार-नीति-वैराग्य-शतकत्रयकार भर्तृहरि जैसे राज-योगियों की साधनास्थली रही है वरन् यह सारस्वत-पुण्य-भूमि विज्ञान की रसायन तथा ज्योतिष शाखाओं के, अपने युग के श्रेष्ठतम शास्त्रज्ञ, रसायनाचार्य व्याडि एवं ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की भी कर्म-स्थली रही है। प्रस्तुत लेख में हम उज्जयिनी के आचार्य, व्याडि के सम्बन्ध में मुख्यतः, ग्यारहवीं शताब्दी के विदेशी प्रवासी विद्वान् अल-बैरूनि द्वारा दिये गये विवरण के आधार पर विवेचन करेंगे।

महान रसायनाचार्य व्याडि

भारतीय रसायन के इतिहास से सम्बन्धित देशी एवं विदेशी विद्वानों के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों का सावधानीपूर्वक किया गया अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि इन ग्रन्थों में उज्जयिनी के रसायनाचार्य व्याडि को उनका उचित स्थान एवं सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कई स्थलों पर व्याडि के नाम का उल्लेख आता है, जिनके सम्बन्ध में हम विचार करेंगे, किन्तु कहीं भी उनके ग्रन्थ तथा जीवनी एवं उनकी देन के सम्बन्ध में व्यवस्थित तथा व्यापक जानकारी प्राप्त नहीं होती। अलबैरूनी ने अवश्य ही तीन सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ भानुयशस्, नागार्जुन एवं व्याडि के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थ में लिखते हुए व्याडि के सम्बन्ध में सर्वाधिक विवरण दिया है तथा उनको अधिकतम महत्व वाला तथा शताब्दियों तक सपत्नीक जीवित रहने वाला (यशः शरीर से ?) विद्वान बताया है, किन्तु व्याडि की रसायन सम्बन्धी रचना के प्रति वह भी मौन हैं।

सत्ताईस वरेण्य रस सिद्धों की शृंखला में व्याडि का भी नाम लेते हुए रस-रत्न समुच्चयकार ने लिखा है—

> इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलि व्याडिरेव च ॥ . . . .
> . . . . सप्तविंशति संख्याका रससिद्धि प्रदायकाः ॥

किन्तु इससे अधिक जानकारी व्याडि के सम्बन्ध में, रस-रत्न समुच्चय में नहीं है। गुणाढ्य की बृहत्-कथा में तथा किंचित परिवर्तित रूप में सोमदेव के कथा सरित्सागर में व्याडि का नाम उज्जयिनी के विक्रमादित्य के समकालीन सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ के रूप में आया है तथा सम्बन्धित लघु कथा अथवा किंवदन्ति भी दी गई है। पतञ्जलि ने व्याडि का संदर्भ देते हुए लिखा है।

"अपिशल पाणिनीय व्याडिय गौतमीया:"

इस रत्न प्रदीप में जोकि रामराजा द्वारा विरचित ग्रन्थ है, व्याडि के सम्बन्ध में कई संदर्भ मिलते हैं। आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने रसराज लक्ष्मी नामक ग्रन्थ का आधार लेते हुए, व्याडि की प्रशंसा के सन्दर्भ में गरुड पुराण का निम्न श्लोकांश उद्धृत किया है :

"व्याडिर्जगाद: जगतो हि महा प्रभाव:, सिद्धो विदग्ध—हित तत्परया दयाल."

शब्द कल्पद्रुम में व्याडि को कोषकार बताया गया है। हेमचन्द्र ने व्याडि को विन्ध्य-वासी एवं नन्दिनी तनय बताया है। दाक्षी के पुत्र पाणिनी एवं दक्ष के सबसे छोटे प्रपौत्र व्याडि बतलाये जाते हैं। राजशेखर के 'काव्य मीमांसा' के इस उद्धरण से कि पाणिनी, पिंगल, व्याडि, वररुचि तथा पतञ्जलि ने पाटलीपुत्र में ही अपनी काव्यशास्त्रीय परीक्षाएँ दी थीं, व्याडि साहित्यकार भी प्रतीत होते हैं। व्याडि के संग्रह से पतञ्जलि एवं भर्तृहरि ने कई उद्धरण दिये हैं। नागेश ने महाभाष्य पर कैयट की समालोचना पर अपने आलोचना ग्रन्थ "उद्योत" में व्याडि के सम्बन्ध में लिखा है कि उनके संग्रह में एक लाख श्लोक हैं। व्याडि का एक ग्रन्थ उत्पलिनि भी माना गया है, जिसके उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। इस सब विवरण से सहज ही यह प्रश्न उठता है कि साहित्यिक एवं वैज्ञानिक व्याडि, भिन्न भिन्न व्यक्ति तो नहीं थे ? दोनों को एक ही दर्शाने वाला स्पष्ट संदर्भ प्राप्य नहीं है। चूंकि यह कहा जाता है कि व्याडि का चमत्कार महाराजा विक्रमादित्य ने अपनी आँखों से देखा था, व्याडि के सम्बन्ध में विक्रमादित्य के समकालीन होने की धारणा परिपुष्ट होती है, किन्तु फिर भी निश्चयात्मक रूप से व्याडि के काल का निर्णय एक समस्या ही मानी जानी चाहिए।

व्याडि के सम्बन्ध में अलबैरूनी

अलबैरूनी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "अलबैरूनी का भारत" के आधार पर हम व्याडि के सम्बन्ध में उनकी जानकारी तथा उनके द्वारा वर्णन की गई किंवदन्ती का विवेचन करें। अलबैरूनी लिखते हैं कि, "राजा विक्रमादित्त के समय में, जिसके शक का उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे, उज्जैन नगर में व्याडि नामक एक मनुष्य रहता था। उसने इस विद्या (रसायन) पर पूरा ध्यान दिया था और इसके कारण अपना जीवन और सम्पत्ति दोनों

नष्ट कर डाले थे। परन्तु उस के सारे परिश्रम से उसे इतना भी लाभ नहीं हुआ कि वह ऐसी चीजें ले सके, जिनका लेना साधारण अवस्थाओं में भी बहुत सुगम होता है। हाथ के तंग हो जाने से उसे उस विषय से घृणा हो गई, जो इतने समय तक उसके सारे उद्यम का उद्देश्य बना रहा था, और वह एक नदी (शिप्रा ?) के तट पर बैठकर शोक और निराशा से विश्वास (निश्वास ?) छोड़ने लगा। उसने अपने हाथ में वह भेषज संस्कार ग्रन्थ पकड़ लिया जिसमें से वह अपनी औषधियों के लिए व्यवस्था पत्र लिया करता था, और उसमें से एक-एक पत्र फाड़कर जल में फेंकने लगा। उसी नदी के किनारे, नीचे की तरफ कुछ अन्तर पर वेश्या बैठी थी। उसने पत्रों को बहते देख कर पकड़ लिया, और रसायन सम्बन्वी कुछ एक पत्रों को बाहर निकाल लिया। व्याडि की दृष्टि उस पर उस समय पड़ी जबकि पुस्तक के सारे पत्र उसके पास से जा चुके थे। तब वह स्त्री उसके पास आई और पुस्तक को फाड़ डालने का कारण पूछा। इस पर उसने उत्तर दिया, "क्योंकि मुझे इस से कुछ लाभ नहीं हुआ मुझे वह चीज नहीं मिली जोकि मुझे मिलनी चाहिए थी। मेरे पास प्रचुर धन था, पर इससे मेरा दिवाला निकल गया। इतनी देर तक सुख प्राप्ति के आशा में रहने के अनन्तर अब मैं दुखी हूं।" वेश्या बोली, 'उस व्यापार को मत छोड़ो, जिसमें तुमने जीवन व्यतीत किया है, उस बात के सम्भव होने में सन्देह मत करो जिसको तुम्हारे पूर्ववर्ती कवियों ने सत्य बताया है। तुम्हारी कल्पनाओं की सिद्धि में जो बात है, वह शायद नैमित्तिक है, जो अकस्मात् ही दूर हो जावेगी। मेरे पास बहुत सा नकद रुपया है, आप इसे ले लीजिए और अपनी कल्पना सिद्धि में लगाइए।" इस पर व्याडि ने फिर अपना काम शुरू कर दिया।

परन्तु इस प्रकार की पुस्तकें पहेलियों के रूप में लिखी हुई हैं। इसलिए उससे एक औषधि का व्यवस्थापत्र का एक शब्द समझने में भूल हो गई। उस शब्द का अर्थ यह था कि तेल और नर रक्त दोनों की इसके लिए आवश्यकता है। यह रक्तामल लिखा था जिसका अर्थ लाल आमलक समझा। जब उसने औषधि का प्रयोग किया तो उसका कुछ भी असर न हुआ। अब वह विविध औषधियाँ पकाने लगा, परन्तु अग्निशिखा उसके सिर से छू गई और उसका मस्तक जल गया। इसलिए उसने अपनी खोपड़ी पर बहुत सा तेल डाल कर मला। एक दिन वह किसी काम के लिए भट्टी से बाहर ऊठकर जाने लगा। ठीक उसके सिर के ऊपर छत में एक मेख बाहर को निकली हुई थी। उसका सिर उसमें लगा और रक्त बहने लगा। पीड़ा होने के कारण वह नीचे की ओर देखने लगा। इससे तेल के साथ मिले हुए रक्त के कुछ बिन्दु खोपड़ी के ऊपरी भाग से देगची में गिर पड़े, पर उसने इन्हें गिरते हुए नहीं देखा। फिर जब देगची पक चुकी तो उसने और उसकी स्त्री ने क्वाथ की परीक्षा करने के लिए उसे अपने शरीरों पर मल लिया। इसके मलते ही वे दोनों वायु में उड़ने लगे। विक्रमादित्य इस घटना को सुन कर अपने प्रासाद से बाहर निकला और अपनी आँखों से उन्हें देखने के लिये चौक में गया। तब उस मनुष्य ने उसे आवाज दी, मुंह खोल ताकि उसमें मैं थूकूं। राजा को इससे घृणा आई और उसने मुंह न खोला। इसलिए थूक दरवाजे के पास गिरा। इसके गिरते ही डेवढ़ी सोने से भर गई। व्याडि और उनकी स्त्री जहाँ

चाहते थे उड़ कर वहाँ चले जाते थे। उसने इस विद्या पर प्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। लोग कहते हैं कि वे दम्पति अभी तक जीवित हैं (अलबैरूनी के जमाने तक)।"

अब हम यह देखें कि नागार्जुन के सम्बन्ध में अलबैरूनी ने क्या लिखा है। अलबैरूनी लिखते हैं :

"इस कला का एक प्रसिद्ध प्रतिनिधि नागार्जुन था। यह सोमनाथ के समीपवर्ती दहक कोट का रहने वाला था। उसने इस कला (रसायन) में निपुणता प्राप्त की थी और एक पुस्तक रची थी जिसमें कि इस विषय के सारे ग्रन्थों का सार है। यह पुस्तक बहुत दुर्लभ है। वह हमारे समय से कोई एक सौ वर्ष पूर्व हुआ है।"

समीक्षा

अलबैरूनी के उपर्युक्त वर्णन एवं व्याडि के सम्बन्ध में किये गये विवेचन के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं—

नागार्जुन का नाम आजकल प्राचीन भारत के प्रसिद्धतम रसायनवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठित है किन्तु नागार्जुन से लगभग एक शताब्दि बाद के प्रवासी अरब-विद्वान अलबैरूनी ने नागार्जुन के सम्बन्ध में कुछ ही पंक्तियाँ लिखी हैं जबकि व्याडि के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक वाक्य लिखते हुए उन्होंने विस्तृत विवरण दिया है। यह तथ्य सिद्ध करता है कि व्याडि यद्यपि नागार्जुन से कई शताब्दि पूर्व हुए थे किन्तु अलबैरूनी के समय तक भी भारतीय-जन मानस में उनका बहुत उच्च स्थान था तथा उनकी रासायनिक उपलब्धियों का दबदबा था जिनके बारे में समग्र भारत की सामान्य जनता में भी किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं।

व्याडि को अवश्य ही कुछ विशिष्ठ रासायनिक उपलब्धियाँ हुई होंगी जोकि किंवदन्तियों के रूप में सामान्य जनता में प्रचलित हो गईं। सामान्य जनता अवश्य ही रसायनज्ञों को आदर-मिश्रित भय से देखती होगी; तभी उनके सम्बन्ध में इस कथन की परिचायिका किंवदन्तियाँ प्रचलित हो जाती थीं।

सौराष्ट्र के दैहक दुर्ग के समान ही विक्रमादित्य से लेकर अलबैरूनी के युग तक उज्जयिनी भी रसायन विद्या का केन्द्र रही होगी। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि, अलबैरूनी के वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि मालव का एक और स्थल, धार, भी रसायन विज्ञान का केन्द्र था। आज भी धार में बिना जंग खाया हुआ बृहत् धातु (लौह ?, मिश्र धातु ?) स्तम्भ पड़ा हुआ इस कथन की कुछ अंशों तक परिपुष्टि करता है।

व्याडि के युग में भी प्रयोगों एवं प्रेक्षणों का व्यवस्थित विवरण पुस्तकों के रूप में रखने की परिपाटी थी।

यहाँ यह प्रेक्षणीय है कि न तो उपर्युक्त समस्त विवरण में तथा न ही रस साहित्य

में व्याडि रचित ग्रन्थ का स्पष्ट उल्लेख आता है। अतः आचार्य व्याडि का वैज्ञानिक के नाते उचित एवं शुद्ध मूल्यांकन तभी सम्भव हो सकेगा जब रस सम्बन्धी उनकी रचना की खोज एवं शोध हो सकेंगे।

व्याडि का काल तथा यह प्रश्न कि रसायनज्ञ व्याडि एवं साहित्याचार्य व्याडि एक ही अथवा भिन्न व्यक्ति थे ये भी ऊहापोह के मुख्य विषय हैं। इन समस्याओं पर शोध करना, व्याडि के ग्रन्थ की खोज कर उसे प्रकाशित, सम्पादित एवं प्रचलित करना, उसकी व्याख्या करना, आदि अपने आप स्वतन्त्र शोध के विषय हो सकते हैं। इस दिशा में निष्ठा-पूर्वक सतत परिश्रम की आवश्यकता प्रतीत होती है ताकि व्याडि, उज्जयिनी एवं मालव को रसायन के क्षेत्र में योगदान की दृष्टि से उनका उचित स्थान प्राप्त हो सके।

निर्देश

1. डा० विजयेन्द्र रामकृष्ण शास्त्री : केमिस्ट्री इन अलबैरूनीज इंडिया, (शोध-लेख) इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी, इंटर-नेशनल सिम्पोजियम व्हाल्यूम (1971) (मुद्रित होना है)
2. पी० सी० राय : हिस्ट्री आफ केमिस्ट्री इन एन्शिएंट एन्ड मेडियेवल इंडियन 1956, इंडियन केमिकल सोसाइटी कलकत्ता
3. सत्यप्रकाश : प्राचीन भारत में रसायन का विकास, 1960 प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, लखनऊ (उ० प्र०)
4. (सम्पादक) सू० ना० व्यास, मूलचन्द एवं गोपाल व्यास : उज्जयिनी दर्शन, (1957) संचालक सूचना तथा प्रकाशन, म० प्र०, भोपाल
5. वाग्भट्टाचार्य : रस रत्न समुच्चय, चौखम्भा संस्कृत सिरीज ऑफिस, बनारस
6. ऐडवर्ड सचाऊ : अलबैरूनीज इंडिया, आर० के० शर्मा का अनुवाद, 1967, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद।

विज्ञापन तथा सहाय्य

हम आभारी हैं उन प्रकाशकों, व्यक्तियों एवं संस्थाओं के जिन्होंने स्वामी जी के अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु अपना आर्थिक सहाय्य पहुंचाया है।

निम्नांकित व्यक्तियों ने स्वामी जी के अभिनन्दन ग्रंथ की सफलता के लिये निजी सहयोग दिया है। इनमें स्वामी जी के कुछ शिष्य तथा अफ्रीका, मारीशस आदि के भक्तजन हैं। इनके नाम हैं

डा० शोभा लक्ष्मी
डा० सोम प्रकाश श्रीवास्तव
डा० राजेन्द्र प्रसाद
डा० ऊषा ज्योतिष्मती
डा० वद्री विशाल अग्रवाल
श्री रामनाथ बुकवाइंडर
श्री अम्बेलाल के० भगत जी, पोर्ट एलिजाबेथ, द० अफ्रीका
श्री कल्याण जी वालाजी, प्रेटोरिया, द० अफ्रीका
राम भरोसे जी (शिशुपाल), डर्बन, द० अफ्रीका
एच० ई० जूसब, प्रिटोरिया, द० अफ्रीका
श्रीमती प्रभावती नानकचंद, डर्बन, द० अफ्रीका
अमृत आल देसाई, प्रेटोरिया, द० अफ्रीका

प्रकाशकों के नाम हैं :

राम प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
साहित्य भवन ”
विनोद पुस्तक मन्दिर ”
शिवलाल एण्ड सन्स ”
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ”
एस० चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
भारत की सम्पदा, पी० आई० डी०, नई दिल्ली
विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
प्रसाद मुद्रणालय, इलाहाबाद
अग्रवाल बुक बाइंडर ”
नारायन पब्लिशर्स ”

स्वामी जी शतायु हों

स्वामी जी शतायु हों

स्वामी जी शतायु हों

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

के

अन्यतम प्रकाशक

एस० चाँद एन्ड कम्पनी प्राइवेट लि०

रामनगर, दिल्ली

डा० शिवगोपाल मिश्र की साहित्यिक कृतियाँ

- मृगावती (कुतुबन कृत)
- भीमकृत डंगवै कथा तथा चक्रव्यूह

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

कृषि विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये अनुपम भेंट

उत्तर प्रदेश हिन्दीग्रंथ अकादमी

द्वारा प्रकाशित
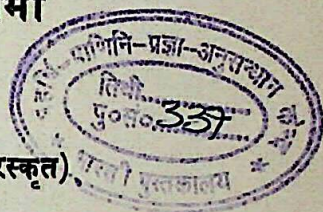
- फास्फेट (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत)
- सूक्ष्ममात्रिक तत्व
- अम्लीय मृदायें

लेखक : डा० शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान परिषद, इलाहाबाद

द्वारा प्रकाशित

(स्वामी हरिशरणानन्द पुरस्कार प्रदत्त)

भारतीय कृषि का विकास

लेखक : डा० शिवगोपाल मिश्र

हिन्दी में वैज्ञानिक विश्वकोष

भारत की संपदा

प्राकृतिक पदार्थ

भारत के प्राकृतिक पदार्थों—वनस्पतियों, खनिजों, प्राणियों के बारे में वैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण प्रामाणिक जानकारी के लिए वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का सचित्र वैज्ञानिक हिन्दी विश्वकोश। हिन्दी अकारादि क्रम में 10 खण्डों और दो पूरक खण्डों में प्रकाशित होने वाले इस विश्वकोश के 3 खण्ड और दो पूरक खण्ड 'पशुधन और कुक्कुट पालन' तथा 'मत्स्य और मात्स्यिकी' प्रकाशित हो चुके हैं।

चतुर्थ खण्ड प्रेस में है।

प्रथम खण्ड (अंकोल—औरेटिया : लेख : 723; पृष्ठ 404, चित्र 150; मूल्य : 38.00 रु० कुछ प्रमुख लेख : धान, काजू, मूंगफली, शकरकंद, कटहल, सुपारी, इलाइची, लोकाट, तुलसी, अस्थियां, एस्बेस्टास, अभ्रक, आमला, आर्सेनिक, अयस्क, ऊंट, कत्था, रीठा, घुंघची।

द्वितीय खण्ड (ककाओ—क्षारीय मिट्टियां) : लेख : 650; पृष्ट : 446, चित्र : 124 मूल्य 36 रु० कुछ प्रमुख लेख : चाय, काफी, कोयला, क्वार्ट्ज और सिलिका, कवक, कांच, काजू, जूट, भाँग, पपीता, सनाय, नारियल, कोबाल्ट, कोरंडम, क्रिसेन्थेमम, सन, क्रोमाइट, क्वरकस, क्षारीय-मिट्टियां।

तृतीय खण्ड (खनिज सोते—न्यूराकन्थस): लेख : 501; पृष्ठ 450; चित्र : 166; मूल्य : 36 रु० कुछ प्रमुख लेख : गार्सिनिया, कपास, ग्रीविया, ग्रेफाइट, सोयाबीन, चूना-पत्थर, जिप्सम, अखरोट, चमेली, झींगा, चिगट तथा महाचिगट, टिड्डियां, रतालू, तेंदू, सेम, शीशम, बांस, डोलोमाइट, तामड़ा, निकल अयस्क, तम्बाकू।

पूरक खण्ड (पशुधन और कुक्कुट पालन) : चित्र : 125; पृष्ठ : 298; मूल्य : 34, रु० कुछ प्रमुख लेख : गो-पशु तथा भैंसें, भेड़ें, बकरियां, सुअर, घोड़े, टट्टू, खच्चर, गधे ऊँट और याक तथा कुक्कुट।

पूरक खण्ड (मत्स्य और मात्स्यिकी) : चित्र : 107; पृष्ठ : 173 : मूल्य तय होना है, कुछ प्रमुख लेख: इलैस्मोब्रं क, टालिओस्ट, क्रस्टेशिया, मोलस्क, समुद्र तट, अपतट, गहरे सागर, ज्वारनद मुख, शुद्ध जल तथा विभिन्न राज्यों की मछलियों के वर्णन के साथ-साथ उनके परिक्षण, संशोधन, संघटन उपयोग तथा व्यापार के बारे में किया गया उल्लेख जन-साधारण के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

चतुर्थ खण्ड (पक्षी—प्लैकोनेला) ... ... (प्रेस में) कुछ प्रमुख लेख : पन्ना, परजीवी कृमि, चिल्गोजा, चीड़, अफीम, पोस्त, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस पान, काली मिर्च, लौंग, ईसबगोल, प्लेटिनम, खनिज, बादाम जर्दालू, अनार, पशु-मांस मक्षी, पशुवसा, मटर, पिस्ता, प्रवाल, पत्थर इमारती।

- विश्वकोश की कुछ विशेषतायें
  - वनस्पति विषयक लेख लैटिन नामों के अकारादि क्रम में।
  - वनस्पतियों के अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचलित नाम।
  - जन्तु और खनिज विषयक लेख प्रचलित हिन्दी नामों के अकरादि क्रम में।
  - भारतीय भाषाओं के नामों की अनुक्रमणिका।
  - अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने हेतु संदर्भ ग्रन्थ सूची।

वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों, जनसाधारण, विद्यार्थियों, शिक्षण और अनुसंधान संस्थानों, विकास अधिकारियों, पुस्तकालयों आदि के लिए समान रूप से उपयोगी।

बिक्री और वितरण अधिकारी
प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (पी० आई० डी०)
हिलसाइड रोड, नई दिल्ली–110012